इतनेही में बाहर आंगनसे क्षितीशने पुकार करकहा—मां मेरा जूता छाता कहां है ? भिजवा दो।

तन्नू की मां ने पूछा—जूता छाता क्या होगा ?

क्षितीश—एक काम से जाना है।

तन्नू की मां—अब जाओगे, खा पी कर जाना।

क्षितीश—नहीं, सन्ध्या को लौटेंगे, यहां से तीन कोस जगह है।

सास ने कहा—जल्दी हो तो घूम आओ, नीचे विराज है उस से पूछलो।

क्षितीशचन्द्र ने विराज से अपना जूता छाता मांगा। उस ने उनका स्थान बताकर पूछा—अब कहां जाओगे ?

क्षितीश—नन्द ग्राम जाऊंगा।

विराज—इस समय ? पहले खा पी तो लो।

क्षितीश—जिसके पास पैसा नहीं, बीबीजी, उस का खाना पीना क्या ? पहले यह कर आऊंफिर देखा जायगा।

विराज—तो जल्दी क्या पड़ी है ?

क्षितीश—डाक्टर को एक पैसा भी नहीं दिया। उनको न देने से काम नहीं चलेगा।

विराज—वहां कौन है ?

क्षितीश—मेरा एक मित्र है उसकी आर्थिक अवस्था अच्छी है। ऐसे विपत के समय में वह कुछ न कुछ अवश्य उधार देदेगा।

प्रस्तावना

पाठक !

यह उपन्यास बङ्ग भाषा के सुप्रसिद्ध औपन्यासिक बाबू सुरेन्द्रमोहन भट्टाचार्य्य के "मिलन-मन्दिर" नामक उपन्यास का भाषान्तर है। इसमें यह दिखाया गया है कि घर की फूट का क्या परिणाम होता है, आपस का विरोध क्या रंग लाता है, कुसंग में पड़कर मनुष्य की क्या दुर्दशा होती है और घोर विपद आने पर भी सज्जन किसप्रकार अपने मान तथा धर्म्म की रक्षा करते हैं।

इस पुस्तक की भाषा तो बड़ी ही सरल तथा ललित है परन्तु वह सरलता तथा लालित्य अनुवाद में कहां तक [illegible] है इसको पाठक जानिए। अंत में मैं [illegible] प्रकाशक श्री गुरुदास चट्टोपाध्याय (कलक[illegible] दिये बिना नहीं रह सकता जिन्होंने मुझे अनुवाद करने की आज्ञा देकर अपनी उद[illegible] दिया है।

रखकर गम्भीरता
को वैसी आशा न
ा कि जिस बात के
ीत कुछ सोच रक्खा
समय तुम्हारे पिता स्वर्ग-
कितने दुःख तथा परिश्रम

बङ्गाली मुहाल — विश्वम्भर
[illegible]पुर अगस्त १९१६

मिलन-मन्दिर

प्रथम खण्ड

पहिला परिच्छेद.

बेटा! एक बात कहने के लिए तुम्हें बुलाया है—यह कह कर माता ने पास खड़े हुए युवा पुत्र जतीश चन्द्र के सिर पर प्रेम पूर्वक हाथ फेरा।

उस घर में कोई और नहीं था। रात एक पहर व्यतीत हो चुकी थी। पीतल के फ़तीलसोज़ पर मिट्टी का दीपक जल रहा था और एक छोटी घड़ी टिक २ कर रही थी।

जतीश चन्द्र ने माता के मुख की ओर देखकर गम्भीरता पूर्वक कहा "क्या"?

पुत्र ने जिस प्रकार उत्तर दिया, माता को वैसी आशा न थी। पुत्र के स्वर से उन्होंने समझ लिया कि जिस बात के लिए पुत्रको बुलाया है पुत्र ने उसके विपरीत कुछ सोच रक्खा है। इससे माता दुखित नहीं हुई—बोली—

"जब तुम बिल्कुल बालक थे, उसी समय तुम्हारे पिता स्वर्ग-लोक को पधार गये थे। उस समय कितने दुःख तथा परिश्रम

कितने मनुष्यों की सेवा करके, कितने दिनों तक विना खाये पिये तथा कितनी रातें जाग कर तुमको पाला और बड़ा किया—यह केवल भगवान ही जानते हैं।"

"नवीन हमें धोका देकर परम धाम को सिधारा अब तुम तीन चार आदमी हो—ईश्वर तुम्हें चिरायु करे—तुमसे मेरी विनती है कि जब तक मैं बैठी हूं तुम लोग जुदा मत होना।"

जतीश चन्द्र--"कौन जुदा होना चाहता है ? तुम्हारे पुत्र बैठे २ खायेंगे और यदि भाई भाई में कोई किसी को कुछ कहे सुनेगा तो वह रानियां जल मरेंगी—यह क्या कोई अच्छी बात है ?"

माता—(करुणा पूर्वक) "बेटा, अब तुम्हीं सबसे बड़े हो तुम्हीं सबके सर्दार हो तुम्हारे ठीक न होने से कोई ठीक न होगा। यह मैं जानती हूं कि खर्चा बहुत है। एक आदमी कमाकर घर नहीं चला सकता। परन्तु क्षितीश से खेती पानी करने के लिए कहा है और वह करने भी लगा है। यदि भगवान चाहेगा तो कुछ सहायता मिलेगी। दानीश अभी पढ़ता लिखता है—रहा पांचकौड़ी, वह सबका छोटा है तुम्हीं ने दुलार के मारे अभी तक उसे लिखाया पढ़ाया भी नहीं और न कोई काम काज ही करने दिया। इसलिए वह ऐसेही घूमता है। जहां अभी तक सहते आये हो और थोड़े दिन सहो वह लोग शीघ्र ही तुम्हारा हाथ बटावेंगे।"

जतीश—"नहीं माता जी, मैं रुपये पैसे के लिए सोच नहीं करता जैसे आवेगा वैसे खर्च होगा—परन्तु लड़ाई झगड़ा क्यों होता है ? किसी आदमी को इस प्रकार जलाते क्यों हैं ?"

किन्हीं आदमी का तात्पर्य जतीश चन्द्र की गृहिणी श्रीमती श्वेतांगिनी देवी है. माता ने यह बात समझ ली।

माता—"बड़ी बहू का स्वभाव भी चिड़चिड़ा है। जो जी में आता है कह चलती है, पराई बहू बेटी क्या यह सह सकती है?"

जतीश—"न सहेंगी तो काम कैसे चलेगा, जिसका स्वभाव चिड़चिड़ा है उसकी इच्छा से काम करने में दोष क्या है?"

माता—"बेटा! पांच आदमी और पांच मुख-फिर भला एक आदमी उन्हें कैसे समझा सकता है—जो हो, तुम विचलित न होना। स्त्रियां न जाने क्या २ कहती हैं। यदि तुम अलग हुए तो सब रसातल को पहुंच जायगा।"

जतीश—"मां! मैं तो घर भी नहीं रहता, और न तुम लोगों के झगड़ों ही से मुझे कुछ मतलब है। परन्तु घर आकर जब अनेक प्रकार की बातें सुनता हूं तो चित्तमें बड़ी अशान्ति होती है।"

माता—"यह मैं जानती हूं—परन्तु जब तक मैं बैठी हूं किसी के साथ अन्याय नहीं होगा। सब भार मेरे ऊपर डालकर तुम कमाई करो।"

जतीश—"यदि मझली बहू ने कुछ झगड़ा उठाया"?

माता-"उसके लिए मैं उपाय कर दूंगी, तुमको इन झगड़ों से कुछ मतलब नहीं।"

जतीश—"परन्तु सुनने से क्रोध आता है।"

माता—"स्त्रियों की सब बातें तो सच्ची हुआ ही नहीं करती इसलिए क्रोध करना उचित नहीं।"

जतीश—"तो क्या यह मैं नहीं जानता? मैं भी आदमी चराया करता हूं"

माता—"तो बेटा ऐसा काम करो जिससे मान-मर्यादा रहे। पांच आदमी "मनुष्य" कहें। तुमतो आप बुद्धिमान हो।"

जतीश—"तो मैं सहज में ही किसीकी बात नहीं मान लेता। खैर—अब मैं कल प्रातःकाल ही जाऊँगा। देखो, शचीश को किसी प्रकार का कष्ट न हो। सुना है कि लोगों के काम काज में लग रहने से वह मारा २ घूमता है।"

माता—"भला यहभी कोई बातहै? शचीशमारा २ घूमेगा? मेरे रहते वह मारा २ घूम सकता है? ना, बेटा तुम ऐसी बात मत कहो। एक तो बड़ी बहू ऐसा कुछ कामकाजही नहीं करती दूसरे शचीश सब का दुलारा है और पांचकौड़ी का तो वह प्राण है। पांचकौड़ी तो उसे कभी गोद से उतरने नहीं देता। हां—बेटा! कल जाये बिना नहीं बनता?"

जतीश—"ना मां, पराई नौकरी करके कोईकाम अपनी इच्छा के अनुसार नहीं करना होता।"
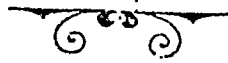
दूसरा परिच्छेद ।

निद्रा में चौंक कर बालक शचीश चन्द्र बोला—"छोंने काका के पाछ जाउँगा ।" उस समय रात बहुत बीत चुकी थी । सब लोग अपने अपने घरों में पड़े सो रहे थे । चारों ओर सन्नाटा था, केवल आमकी शाखा पर बैठा हुआ पपीहा कभी २ अपनी चीत्कार से उस सन्नाटे को क्षण मात्र के लिए तोड़ देता था ।

शचीशचन्द्र की धुन नहीं मिटती । वह बराबर यही कहे जा रहा है कि 'छोंने काका के पाछ जाउँगा' । स्वामी और स्त्री ने कितना ही बहलाया, खाने को दिया, खिलौने दिखाये परन्तु उसने अपनी हठ न त्यागी । अन्त में रोना आरंभ किया ।

जतीश चन्द्र—(विरक्त होकर) "ऐसा लड़का तो देखाही नहीं, क्या कभी २ ऐसाही करने लगता है" ?

श्वेताङ्गिनी—"कभी कभी क्या, रोज़ही करता है । कभी २ उनके पास ही सो रहता है ।"

जतीश—"तो फिर अब क्या किया जाय ?"

श्वेताङ्गिनी—"बुलाकर दे दो"

जतीश—"पांचकौड़ी क्या देवी-मन्दिर में सोता है ?"

श्वेताङ्गिनी—"हां"

जतीश चन्द्र द्वार खोलकर बाहर गये और पांचकौड़ी को बुलाया । पांचकौड़ी उस समय गाढ़ निद्रा में था, भाई का शब्द

सुनते ही उठबैठा और आंखें मलता हुआ जतीश के साथ आया। घर में चिराग़ जल रहा था, इस कारण काका को देखते ही शचीश का रोना हँसी में बदल गया, और दौड़ कर पांचकौड़ी से लिपट गया। पांचकौड़ी उसे गोद में लेकर बाहर चला गया।

जतीश चन्द्र शय्या पर बैठ कर मुसकराते हुए बोले "क्या अब शचीश यहां नहीं आवेगा ?"

श्वेताङ्गिनी—"नहीं"

जतीश—"चलो अच्छा हुआ। पांचकौड़ी भी शचीश को बहुत चाहता है"।

श्वेताङ्गिनी—"हां चाहता है"।

जतीश—"अब पांचकौड़ी का विवाह कर देना चाहिए। अट्ठारह उन्नीस वर्ष का होगया"।

श्वेताङ्गिनी—(गम्भीर होकर) "करदो"

जतीशचन्द्र वह स्वर पहिचानगये बोले 'कुछ बेमन से कहा'

श्वेताङ्गिनी-"फिर और कैसे कहूं ? तुम्हारे पास रुपया पैसा है-भाई का विवाह करोगे-उसमें मेरा क्या कहना सुनना'।

जतीश—"रुपया कहां है"।

श्वेताङ्गिनी—"तो फिर कर्ज़ काढ़ो"

जतीश—"यही करना पड़ेगा। कमसे कम चार सौ का तो गहना ही चाहिए। और जो कुछ मिलेगा उसी से किसी न किसी प्रकार काम निकाला जायगा"।

श्वेताङ्गिनी ने कुछ उत्तर नहीं दिया, परन्तु आषाढ़ के मेघ से ढके हुए आकाश की तरह नथ चक्र-विशोभित मुख भारी होगया।

जतीश—"जिस कामके न करने से नहीं बनता, वह करना ही पड़ेगा।"

स्वर्णाङ्गिनी—(अधिकतर गम्भीर होकर) "न करने से तो कुछ भी नहीं बनता। परन्तु यह जो लड़का हुआ है, इसका भी कुछ उपाय सोचते हो?"

जतीश—(हँस कर) "उसका उपाय क्या? उसका उपाय आठ पैसे का दूध और दो पैसे की मिठाई।"

स्वर्णाङ्गिनी—"वह सब जाना हुआ है। इस जेठ के महीने से वह तीसरे बरस (वर्ष) में पड़ा है। उसके लिए आज से कुछ २ जोड़ कर रखना होगा, इसके लिए चाहे बुरा कहो चाहे भला, मरना जीना आदमी के हाथ में नहीं, न जाने कैसा समय पड़े, तो क्या मेरा शचीश भीख मांगकर खायगा।"

जतीश—"भीख क्यों मांगेगा। यदि हम जीवित न रहें तो उसके काका उसका पालन पोषण करेंगे"।

स्वर्णाङ्गिनी—(मुंह बिचकाकर) "हूं, करेंगे। काका लोग जैसा करते हैं वह सबको मालूम है। तुम्हारे पांव पड़ती हूं—मैंने आज तक तुमसे गहने के लिए नहीं कहा, अच्छे कपड़े के लिए नहीं कहा—परन्तु अब—अपने लिए नहीं—तुम्हारे प्यारे शचीश के लिए कहती हूं कि अब से तुम्हें उसके लिए कुछ रुपया बचाना होगा। मेरे सिर पर हाथ रखके कसम खाओ कि जो मैं कहती हूं वह करोगे"।

जतीशचन्द्र कुछ देर तक सोचते रहे—उसके उपरांत यह प्रतिज्ञा की कि जो कुछ महीने में मिलता है उसका आधा भाग शचीश के लिए रक्खेंगे।

श्वेताङ्गिनी—"एक बात और है"।

जतीश—"वह क्या?"

श्वेताङ्गिनी—"ऋण कभी न लेना। ऋणकर्ता पिता शत्रु। मेरे शचीश के शत्रु न होना।"

जतीश—"नहीं, कभी ऋण नहीं लेंगे"।

आकाश मेघ-मुक्त हुआ—श्वेताङ्गिनी देवी के मुख पर प्रसन्नता आई। मुसकराकर प्रेम भरी दृष्टि से पतिकी ओर देखा।

तीसरा परिच्छेद।

घर के निकट ही रेल्वे-स्टेशन है। आठ बजे जतीशचन्द्र खा पीकर जाने के लिए प्रस्तुत होगये। साथ में एक घड़ा गुड़, दो कटहल और एक बेग जायगा।

पांचकौड़ी के ऊपर कुली बुलाने का भार था। पांच कोड़ी बुला भी आया था परन्तु गाड़ी जाने का समय निकट आगया जतीशचन्द्र ने पांचकौड़ी से कहा "अब ज़्यादा समय नहीं। कुली कहां है?"

पांचकौड़ी—"क्या जाने! मैं तो बेर २ कह आया था। आता होगा।"

जतीश—(अधीर होकर) "अब फिर कब आवेगा ? मालूम होता है गाड़ी स्टेशन पर आगई।"

पांच कौड़ी—"नहीं वह माल गाड़ी है।"

जतीश—"इस समय मालगाड़ी कहां ?"

स्वेनाङ्गिनी अर्थात् बड़ी बहू नाक भौं चढ़ाकर बोलीं—"जब पराई नौकरी करने जाना है तो आपही जाकर कुली बुलालाते। सब काम दूसरे ही पर रहता है।"

जतीशचन्द्र यह सोच कर कि, कहीं गाड़ी न मिले-बहुत अधीर होगये। बड़ी बहू की बात से अपनी भूल और पांचकौड़ी का अपराध समझा। झल्लाकर बोले—"तो मैं क्या जानता था कि इतने बड़े लूंबड़ से कुली भी न बुलाया जायगा। अब क्या करें बड़ी मुश्किल हुई—और तो कुछ नहीं परन्तु यह चीज़ें साथ न जा सकेंगी। नौकरी करके न जाने कितने लोगों का मन रखना होता है। मैनेजर साहब ने गुड़ मांगा था, यदि पहुंच जाता तो अच्छा ही था।"

इसी समय तीसरे भाई क्षितीशचन्द्र भी आगये। उन्होंने सब वृत्तान्त सुन, हँसकर कहा—"भला पांचकौड़ी कुली बुलायेगा। हमसे क्यों न कहा ?"

पांचकौड़ी बहुत दुःखित हुआ। कुली नहीं आया तो इसमें उसका क्या अपराध ? कुली कुछ उसका नौकर तो है ही नहीं। व्याकुल होकर सकुचाते हुए पांचकौड़ी ने जतीशचन्द्र से कहा—"चालिए, मैं गुड़ पहुंचा दूंगा।"

जतीश—(क्रोधित होकर) "क्या केवल गुड़ही है जो तुम पहुंचा दोगे ?"

पांचकौड़ी—(क्षितीश से) "दादा जी आप भी चलिए। मैं गुड़ का घड़ा और कटहल लेता हूं। एक कटहल आप ले लीजिए। बड़े दादा बेग लेलेंगे।"

जतीश—"अब यही करना पड़ेगा—गाड़ी आगई" पांचकौड़ी ने गुड़ की कलसी बाँये कन्धे पर रक्खी और दाहिने हाथमें एक कटहल लेकर चलने को तय्यार हुआ। उसी समय शचीश दौड़ता हुआ आया और उससे लिपट कर बोला—"मैं जाउंगा"। उसकी माता ने आकर उसे गोद में लेना चाहा परन्तु वह चिल्लाकर पृथ्वी पर लोट गया।

यह देखकर पांचकौड़ी ने हाथ का कठहल रखदिया और शचीश को गोद में लेलिया।

पांचकौड़ी—(बड़े दादा से) "कटहल रहने दीजिए, आप के गाड़ी पर चढ़ते २ मैं दौड़ कर इसे ले जाउंगा।"

क्षितीशचन्द्र ने हँसकर उस कटहल को भी उठा लिया। इसके बाद तीनों भाई स्टेशन पर पहुंचे।

पांचकौड़ी ने जो कहा था वही ठीक निकला। प्लेट फार्म पर एक मालगाड़ी खड़ी थी। जिस गाड़ी पर जतीश जाने वाले थे उस गाड़ी के आने में पूरे आध घण्टे की देर थी।

असबाब रखकर वे लोग खड़े थे, इसी समय एक कुली आया और पांचकौड़ी को सलाम करके बोला—"बाबू—क्या असबाब आगया? मैं घाट गया था—अभी आपके घरपर जाने को था। गाड़ी आने में तो देर है।"

पांचकौड़ी ने कुछ उत्तर नहीं दिया। उत्तर देनेकी सामर्थ्य ही न थी। आधमन गुड़की मटकी और शचीश को गोद में

लेकर आने से उसका बुरा हाल होगया था, समस्त शरीर से पसीना टपक रहा था और मुख तथा आंखें लाल होगईं थीं। अब भी शचीशचन्द्र उसकी गोद में था।

पांचकौड़ी की दशा देखकर जतीशचन्द्र का भ्रातृ-स्नेह उमड़ा। दुखित होकर बोले—"समय न जानने के कारण हमने इतना गोलमाल किया, पांचकौड़ी ने तो ठीक कहा था।"

क्षितीशचन्द्र भाई का पक्ष लेकर बोले—रेलगाड़ी का काम ही ऐसा है।"

जतीशचन्द्र—(पांचकौड़ी से) "अब तुम बड़े होगये, संसार का काम देख सुनकर करना चाहिए, परन्तु तुम ऐसा क्यों नहीं करते?"

पांचकौड़ी—"सझले दादा (अर्थात् क्षितीशचन्द्र) जो कहते हैं वह तो करता हूं।"

जतीशचन्द्र ने क्षितीशचन्द्र की ओर देखा। क्षितीशचन्द्र हँस पड़े। जतीशचन्द्र ने क्षितीश से कहा—"थोड़े दिन और ठहर कर, इसे काम काज में जुटा देना, अभी इससे विशेष कुछ करने के लिए न कहना।"

क्षितीश—कौन कहता है? गांवमें जब कोई रोगी होताहै तो वैद्य तथा साधू—महन्त ढूंढ़ता फिरता है। प्राणायाम सीखता है। सांस रोकने से कोई कठिन रोग होजावे। इन्हीं बातों के लिए मैं रोकता हूं।

इन्हीं बातों में गाड़ी आ पहुंची। पांचकौड़ी और क्षितीश चन्द्र ने असबाब गाड़ी में रख दिया। जतीशचन्द्र गाड़ी में बैठ गये।

पांचकौड़ी ने बड़े भाई से कहा—"कुछ पैसे हैं ?"

जतीशचन्द्र—"हैं—क्यों" ?

पांचकौड़ी—"दो पैसे दे दीजिए"

जतीशचन्द्र—"क्या करोगे" ?

पांचकौड़ी—"दीजिए तो"

जतीशचन्द्र ने जेब से निकाल कर दिये।

इसी समय घंटी बजी। गाड़ी ने सीटी दी। इसके बाद भक २ करके धुआं छोड़ती हुई चल दी।

पांचकौड़ी ने दो पैसे की मिठाई लेकर शचीश को दी और उसके साथ बातें करता हुआ घरकी ओर चल दिया।

चौथा परिच्छेद।
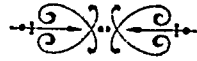
जशोहर ज़िलेमें शोनपूर नामक एक छोटा सा क़सबा है। इस क़सबे में राय--वंश पुराना तथा माननीय है। जिस कारण से बङ्गाल के बहुत से पुराने वंश निर्धन तथा हीन होगये, उसी कारण से राय--वंश की अवस्था भी हीन हो गई। वह कारण है मुक़द्दमाबाजी। थोड़ी भूमि के ऊपर ज़िमींदारों के साथ हाइकोर्ट तक लड़ते लड़ते यदूनाथ राय ऋण

जाल में फँसगये। परिणाम यह हुआ कि जो कुछ भू सम्पत्ति थी वह सब नीलाम होगई। अन्त में थोड़ी सी भूमि लगान पर ले तथा खेती करके यदुनाथ राय अपना निर्वाह करने लगे। सुख और दुःख चक्र की तरह बदलते रहते हैं। परन्तु जो एक समय राजराजेश्वर था, यदि वह सहसा भिखारी होजाय, तो यह अवस्था उसके लिए, अत्यन्त असह्य होजाती है।

पहले यदुनाथ राय का जो वैभव था उससे घर में बारह मास में तेरह पार्वण होते थे। अतिथिओं की सेवा की जाती थी। तीर्थ यात्रायें होती थीं। आने जानेके लिए अनेक प्रकारकी सवारियां थीं। दास दासियों की भी कमी न थी। परन्तु मुकद्दमें बाज़ी में वह सारा ऐश्वर्य धूल होगया। अब साधारण गृहस्थ की तरह संसार चलता है और वह भी कठिनता के साथ। इसी प्रकार के कारण तथा दुखों से यदुनाथ का शरीर टूट गया।

अन्त में उन्हें लग भग एक वर्ष तक रोग-शय्या भोगना पड़ी चिकित्सा के कारण खर्च भी बढ़ गया, तब विवश होकर ऋण लेना पड़ा—ऋण भी क्रमशः बढ़ता गया. यह सब कुछ होने पर भी यदुनाथ आरोग्य न हुए और पांच अल्प-वयस्क पुत्र छोड़ कर स्वर्ग सिधारे।

यदुनाथ की पत्नी के लिए इस समय त्रिलोक अन्धकार मय था। किन्तु सूद खाने वाले रुपये के दासों को उसकी अवस्था पर दया न आई। उन्हों ने अनाथिनी की हाहाकार पर ध्यान न दिया। दुष्टों ने छोटे २ बच्चों के मुख की ओर न देखा और नालिश करके रही सही सम्पत्ति भी नीलाम कराली।

इस संसार में कहने वालों की अपेक्षा करने वाले बहुत ही थोड़े हैं। यदुनाथ की पत्नी सहायता के लिए द्वार द्वार पर रोती फिरी। परन्तु उस आश्रय-हीना के आंसू पोछने के लिए कोई अग्रसर न हुआ।

नवीन बड़ा पुत्र था। रायग्राम के माधव घोष की कन्या जयन्ती के साथ उसका विवाह बहुत छोटेपन में ही होगया था।

नवीन के श्वसुर ख़बर पाकर आये और दशा देखकर अत्यन्त दुःखित हुए। परन्तु उनकी आर्थिक दशा भी बहुत अच्छी न थी तथापि जहां तक हो सका सहायता की। महाजन से भूमि लगान पर दिलवादी। जोतने बोने के लिए ख़र्चा दिया, कुछ रुपया नक़द रखने के लिए दिया और महीने २ भी कुछ देते रहे।

नवीन उस समय पन्द्रह वर्ष का था। जतीश, क्षितीश, दानीश और भी छोटे थे और पांचकौड़ी केवल तीन मास का था। खेती का कुल कार्य नवीन ही करता था। जतीश भी क्रमशः उसकी सहायता करने लगा। क्षितीश और दानीश बहुत छोटे होने के कारण खेलते फिरते थे।

इस प्रकार कुछ वर्ष बीत गये। परन्तु समय ने फिर करवट बदली। गांव में म्यलेरिया ज्वर फैला। गांव के बहुत से मनुष्य उस ज्वर के शिकार हुए। नवीन भी सबको रुलाकर अपने पिता से मिलने के लिए परम धामको सिधारा।

नवीन की मृत्यु से उस निस्हाय परिवार में बड़ा हाहाकार मचा। उनकी अवस्था और भी दीन होगई। नवीन के श्वसुर जो कुछ मासिक देते थे, उन्हों ने वह भी बन्द कर दिया और अपनी कन्या को घर लेगये।

पांचवां परिच्छेद।
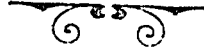
अब घर का समस्त भार जतीशचन्द्र पर पड़ा। परन्तु रुपया न होने के कारण केवल परिश्रम से काम नचला। नवीन के श्वसुर जो कुछ देते थे उससे खेती का काम चलाया जाता था, अब वह बन्द होगया था, इसलिए खेती का काम नहीं चल सका। निराश होकर जतीशचन्द्र ने माता से परामर्श किया और एक दिन शुभ घड़ी देखकर अर्थोपार्जन के लिए विदेश चल दिये।

दानीश उस समय बारह वर्ष का हो चुका था। पूजा की छुट्टी में गांव के भजहरि दत्त, जो कलकत्ते में एक सौदागर के यहां नौकर थे, घर आये। जतीश की माता उनके पास गई और विनय पूर्वक कहा कि "आपका अन्न न जाने कितने कुत्ते बिल्ली खाते होंगे, आप दानीश को लेजाइए और वहां इसके पढ़ने लिखने का प्रबन्ध कर दीजिए। भजहरि उसी दिन दानीश को अपने साथ कलकत्ते लेगये और एक स्कूल में फीस मुआफ़ कराके—पढ़ने बिठाल दिया। चितीश घरका काम काज देखने लगा। पांचकौड़ी कभी तो गांवकी पाठशाला में पढ़ने जाया करता और कभी केवल खेलाही करता।

जतीशचन्द्र एक ज़िमीदार के यहां कुछ दिनों तक शिक्षा पाते रहे इसके उपरान्त उन्हीं के यहां छः रुपये मासिक वेतन पर नौकर होगये।

अब जतीशचन्द्र पांच रुपये महीना घर भेजने लगे। वही पांच रुपये ख़र्च करके क्षितीश खेती का काम करने लगे। इसी प्रकार कुछ वर्ष और बीत गये।

जतीशचन्द्र क्रमशः उन्नति करते २ पचास रुपये महीने के नौकर होगये। इसके बाद कुछ काल व्यतीत होजाने पर उन्हों ने अपना विवाह किया—इसके उपरान्त क्षितीश का विवाह भी किया। दानीश के विवाह के लिए उन्हें विशेष कष्ट नहीं उठाना पड़ा। दानीश उस समय एफ़, ए, परीक्षा पास करके मेडिकेल कालेज में पढ़ता था, इस कारण एक विधवा ने अपनी कन्या शांति का विवाह दानीश के साथ सहर्ष कर दिया।

जतीशचन्द्र का संसार अब नित्तांत दरिद्र संसार नहीं रहा। खेत में यथेष्ठ अन्न पैदा होता है। बाग़ में फल फूल तथा शाक भाजी भी होती है। इन सब से उनका समय एक प्रकार से अच्छा कटता है। अब नवीन की स्त्री जयन्ती भी आगई और घर का काम काज करने लगी।

दरिद्रदेव तो एक प्रकार से जतीशचन्द्र के घर से विदाही होगये। परंतु उनका स्थान बहुत समय तक ख़ाली नही रहा। शीघ्रही उनके स्थान पर कलह देवी का आगमन हुआ।

पचास रुपये मासिक कमाने वाले स्वामी की स्त्री श्रीमती श्वेताङ्गिनी देवी समझती थीं, कि उनके समान सौभाग्यवती स्त्री संसार में मिलना असम्भव है। इसीलिए वह अपना अर्द्ध-गिनि विनिर्म्मित तथा विलायती मुक्ता-सुशोभित नथचक्र कभी कभी इस संसार पर भी चला दिया करती थीं।

तब जयन्तीने चेष्टा की परन्तु उसकी चेष्टा भी निष्फल हुई।

इतने में घर की दासी निस्तार आई। उसने भी मझली बहू को समझाया, परन्तु कोई फल न हुआ। वह भी हार मानकर अलग हुई, किन्तु न जाने का मूल कारण जान गई। उसने कहा कि—"अच्छा गहना, अच्छा कपड़ा नहीं है इससे बहू रानी नहीं जांयगी।"

जयन्ती—हे भगवान! यह कैसी बात, जिसके अच्छा कपड़ा, अच्छा गहना नहीं होता वह क्या निमंत्रण नहीं जाती। जा बहन, सदा दिन ऐसे नहीं रहेंगे, गहना भी होगा, कपड़ा भी होगा, और गहना कपड़ा सभी के पास थोड़ा ही होता है। साल भर का त्योहार है, ऐसा नही किया करते।

आग होकर मझली बहू निस्तार से बोली—तुझ से यह बात किसने कही, री? दिन बदिन तू सिर पे चढ़ती जाती है।

निस्तार न बोलना ही अच्छा समझ कर सन्नाटा खींच गई।

बड़ी बहू ने कहा—तो फिर क्यों नहीं चलती?

मझली—मेरी इच्छा।

बड़ी—तेरी इच्छा! भले घर की बहू अपनी इच्छा पर चलेगी, तो कैसे बनेगा?

मझली—न बनेगा, तो न बने।

बड़ी—वह सुनेंगे तो क्या कहेंगे।

मझली—कहेंगे क्या? कहेंगे तो सुनेंगे भी।

जयन्ती बोली—मझली बहू यह क्या? वह तेरे जेठ हैं, उन्हें कोई ऐसी बात कहता है।

मझली—हमें किसी का उपदेश नहीं चाहिए।

जयन्ती—क्यों नहीं चाहिए वहन ? तू क्या कोई दूसरी है। तू जो वात नहीं समझेगी वह हम सव समझा देंगे। तू जो कोई वुरा काम करेगी तो तुझे डाटेंगे भी। तू हमारी छोटी वहन के वरावर है।

मझली—मैं सव जानती हूं।

जयन्ती—जानती है तो फिर ऐसा क्यों करती है ?

मझली—क्या करती हूं ?

जयन्ती—पागलपन।

मझली—पागल हूं, इसलिए पागलपन करती हूं।

जयन्ती—खैर पागलही सही। जा कपड़े पहनले, जल्दी जा वे सव खड़ी हैं।

मझली—मैंने तो किसी को खड़े रहने के लिए कहा नहीं।

जयन्ती—तूने तो नहीं कहा पर वे तुझे छोड़कर कैसे चली जांय ?

मझली—अपने पैरों से।

छोटी वहू हंसपड़ी, हंसते हंसते वोली--और वड़ीवहू तुम्हारे कांधे पर चढ़के जाने के लिए खड़ी हैं।

छोटी वहू (शांति) की वात पर सव हँस पड़े, केवल बड़ी वहू क्रुद्धा सिंहनी की तरह गरज कर वोली—छोटे घर की लड़की और इतना घमंड, अभी तो खसम की नौकरी भी नहीं लगी। पत्थर पड़ जाँयगे पत्थर।

जयन्ती—(चौंककर) राम राम ! वहन कोई ऐसी वात कहता है। ईश्वर चाहेगा तो हम सव सुखी होंगे।

बड़ी बहू—जो होगा, सो होगा, पर मैं किसी का घमंड नहीं सह सकती।

जयन्ती—तो गाली देना हो तो उसी को दे।

इतनी देर में शचीश सहित चारों भाई निमंत्रण खाकर लौट आये। जतीशचन्द्र ने निस्तार से कहा—सब अभी खड़ी क्यों हैं जाती क्यों नहीं ?

निस्तार—मझली बहू नहीं जाती, इसीसे कोई नहीं जाता

जतीश—वह क्यों नहीं जाती ?

निस्तार—क्या जाने बाबू, हम गरीब आदमी, हम यह सब क्या जानें।

जयन्ती बोली—आज कल की बहू बेटियों की माया जानना बड़ा कठिन है।

क्षितीश चन्द्र घरके अंदर गये, मझली बहू भी उनके पास पहुंची। जतीशचन्द्र बाहर चले गये।

शचीश चन्द्र पांचकौड़ी की गोद में था। जयन्ती ने शचीश को प्यार करके कहा—मुन्ने ! निमंत्रण खा आया, ठाकुर जी देखे थे, कैसे ठाकुर देखे बेटा ?

शचीश ने अपने छोटे छोटे दांत बाहर निकाल कर आंख चढ़ालीं। सब हंस पड़े।

जयन्ती ने पुकार कर कहा—क्षितीश, बहू को भेजदो, बड़ी देर हो गई।

क्षितीश ने उत्तर दिया—वह नहीं जायगी।

जयन्ती—हे भगवान ! अष्टमी के दिन सधवा बहू प्रसाद नहीं खायगी।

क्षितीश—(क्रुध होकर) सधवा विधवा होजाय तो ठीक है। हमारा भी पिंड छूटे और उसे भी छुट्टी मिले।

जयन्ती— राम राम ! कोई ऐसी बात कहता है।

अंत को विवश होकर बड़ी बहू और छोटी बहू निस्तार के साथ चली गईं। जयन्ती घर के काम में लगी। पांचकौड़ी शचीश को लेकर बाहर के कमरे में चला गया।

सब के चलेजाने पर क्षितीश चन्द्र ने अपनी स्त्री से कहा —जो हो, परन्तु तुम भी भली नहीं हो।

मझली बहू का मुख क्रोध के मारे लाल होरहा था, पति की यह बात सुनकर कुछ क्रन्दन स्वर में बोली—हां ! भली नहीं हूं, घर भर में मैं ही बुरी हूं। मुझे मैके भेजदो, तुम अच्छों को लेकर रहो।

क्षितीश—मैं कहां भेजदूं तुम्हारी जो इच्छा हो करो।

मझली—मेरे भाग ही फूटे हैं जो सब मुझे देख देख कर जलते हैं राम करे मैं मरजाऊं। हे भगवान ! तुम मुझे उठालो।

मझली बहू की बड़ी २ आंखों से आंसू बहने लगे। प्रियतमा के आंसू देख क्षितीश का हृदय व्यथित हुआ कुछ नरम होकर बोले "तुम बड़ी नासमझ हो।"

मझली बहू—जिसके भाग (भाग्य) फूटे होते हैं उसकी समझ में कुछ भी नहीं आता।

क्षितीश—निमंत्रण में सब गये, तुम क्यों नहीं गईं ?

मझली—क्या में निस्तार से भी गई गुज़री हूं।

क्षितीश—यह क्या? इसका क्या अर्थ?

मझली—निस्तार अच्छा कपड़े पहनकर आई और मेरे पास एक भी अच्छा कपड़ा नहीं।

क्षितीश—तो इससे क्या, उसका विलायती है तुम्हारा देशी।

मझली—और बड़ी, छोटी के पास भी तो अच्छे कपड़े हैं।

क्षितीश—दादा ने इसमें थोड़ी भूल की। तुम्हारे और छोटी बहू के लिए एक तरह का कपड़ा लाते और बड़ी बहू के लिए किसी और तरह का। खैर—कपड़े का क्या? कपड़े तो सब बराबर हैं।

मझली—मेरे हाथों में तीन चूड़ी रह गईं, और वे भी टूटी हुई, किसी ने आंख फेर कर भी नहीं देखा। परन्तु छोटी बहू के पास नई चूड़ियां थीं. फिर भी एक सेट और आगया।

क्षितीश—वह तो बड़े दादा नहीं लाये, बड़ी बहू ने दी हैं।

मझली—किसी ने दी हों, परन्तु जानते हो क्यों दी हैं?

क्षितीश—ना

मझली—उसका पति पढ़ा लिखा है और डेढ़ सौ का नौकर होगया है, इसी से।

क्षितीश—उस से तो हमारा ही भला है।

मझली—हूं, भला है, कैसे भला है?

क्षितीश—महीने २ बहुत से रुपये भेजेगा उससे हमारा संसार अच्छी तरह चलेगा।

मझली—हूं, भेजेगा, और तुम्हारी कमाई क्या ऐसे ही चली जाया करेगी। रात दिन परिश्रम करके, और कमा के जो देते हो उसे विना मुह विचकाये नहीं लेते।

चितीश—ऐसी ही क्यों चली जाया करेगी ? क्या अवकी धान कम हुए हैं ? उस दिन हिसाब लगाया था सब खर्च निकाल कर सौ रुपये बचे हैं।

मझली—फिर उससे तुम्हें क्या ? रात दिन हाड़ तोड़ कर जो खेती करते हो उससे कौन सा बड़ा नाम पाया। और उन धानों में से तुम्हें भी एक पैसा मिला जिनके लिए तुमने खून पानी कर दिया। विदेश से कितना रुपया आया, कितना खरच हुआ, कितना संदूकों में गया, यह किसी ने न जाना, किसीने न पूछा। और तुमसे कौड़ी कौड़ी का हिसाब पूछा जाता है और फिर भी एक पैसा खर्च को नहीं मिलता। तिस पर सबके नकतोड़ सहते सहते जान जाता हैं। इस घर में निस्तार और मुझ में कोई भेद नहीं।

वसन्तऋतु के मेघ-शून्य निर्मल आकाश में सहसा काले बादलों की झलक दिखाई पड़ी। क्षितीश के रक्तोज्ज्वल गालों पर कुछ कुछ कालिमा की छाया पड़ी—परन्तु मझली बहू को वह छाया दिखाई नहीं पड़ी। चितीश चन्द्र गम्भीरता तथा नम्रता पूर्वक बोले—सब मालूम है, किन्तु दिन सदा एक से नहीं रहते। भगवान की इच्छा हुई तो सुविधा होने से कुछ कुछ संस्थान करने की चेष्टा करेंगे।

मझली बहू मुँह फुला कर बोली—मजूर को कभी सुविधा नहीं होती।

दसवां परिच्छेद ।
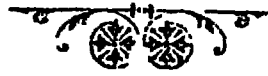
"अभी तो सवेरा नहीं हुआ, तुम उठ क्यों बैठे ?

बड़े बड़े उदास तथा करुण नयन युगल से स्वामी के मुख को निहारते हुए छोटीवहू ने यह बात कही ।

दानीशचन्द्र बोले—तो तुम क्यों उठ बैठीं ?

प्रातः काल निकट होने के कारण दीपक की ज्योति हीन हो गई थी । शीतल वायु के झोंके आरहे थे । कोयल पपीहा आदि पक्षियों के बोलने से इस बात का पता लगता था कि प्रभात निकट है ।

छोटी वहू उस समय बड़े काम में लगी हुई थी । क्या काम करती थी ? यह कुछ स्थिर नहीं था । सुबह की गाड़ीसे दानीश पश्चिम जायंगे । उनका असबाब आदि शामही को बंध चुका है परन्तु फिर भी छोटी वहू के लिए बहुत सा काम शेष रह गया है । कितनी रात रहे वह उठी थी इसका पता दानीशचन्द्र को नहीं । वह, इधर का वेग उधर हटाकर रखती है, उधर का असवाब उठाकर इधर रखती है । कभी स्वामी के जूते कपड़े से झाड़ती है । कभी फूंक मारकर जूते परकी मिट्टी उड़ाती है । पतिके लिए जो खाने की वस्तु रक्खी थी, उसे चींटियों से बचाने की चेष्टा कर रही है । घर भर में निःशब्द

घूम घूम कर वह यह सब काम कर रही है क्योंकि उसको भय है कि कहीं पति की निद्रा भङ्ग न होजाय। परन्तु इतना कुछ करने पर पति महाशय सुबह के पहले ही जाग पड़े। शांति को बड़ा दुःख हुआ—उसने सोचा कि उसी के चलने फिरने के शब्द से पति की नींद उचट गई। दानीश की बात के उत्तर में शांति ने कहा—मेरे उठने से क्या, कुछ मैं विदेश थोड़ा ही जाती हूं, जो राह में नींद से कष्ट होगा।

दानीश—(मुसकरा कर) गाड़ी में सिवा सोने के और काम ही क्या है। सोते चले जांयगे।

शांति का हृदय धड़कने लगा, आंखें जलपूर्ण होगईं। वह शीघ्रता से बाहर गई और आंसू पोछ कर फिर लौट आई। दानीशचन्द्र के हृदय से विरह कविता की आशा उठ कर हृदय ही में विलीन हो गई—हाय! उनकी स्त्री सम्पूर्ण अशिक्षिता।

दानीशचन्द्र घड़ी देख कर बोले—भोर हो गया, गाड़ी आने में केवल एकही घंटे की देर है।

ऐं! केवल एकही घंटा! शांति का हृदय कांप उठा।

दानीश उठकर बाहर गये और नित्य कर्म से छुट्टी पाकर कुछ जलपान करने बैठे।

क्षितीशचन्द्र यह जानकर कि गाड़ी आने में अब विलम्ब नहीं, दो कुली बुला लाये और दानीश को पुकार कर बोले—दानीश! गाड़ी में देर नहीं है, तय्यार हो गये?

अपने कमरे के भीतर से ही दानीश बोले—हां, खाचुके हैं, तैयार होने में देर नहीं है, कुली आगये क्या?

क्षितीश—हां दो कुली आये हैं।

दानीश—तो अभी आते हैं।

शान्ति कुछ लेने के लिए झपट कर चली थी, कि असबाब की ठोकर लगने से गिरते गिरते बची। दानीश बोले—तुम बड़ी जल्दबाज़ हो। शान्ति की आंखों में पानी भर आया। वह मन ही मन बोली—मैं जल्दबाज़ नहीं तुम्हीं जल्दबाज़ हो। तुमसे इतनी जल्दी जाने को किसने कहा था? तुम पहले कितनी आशाएँ देते थे कि डाक्टरी सीख कर देश ही में डाक्टरी करोगे। अब उन आशाओं का मेट कर विदेश क्यों जाते हो। शान्ति यह सब मन ही मन कह गई किन्तु मुख से कुछ न कहा। इसका मात्र कारण था—"लज्जा"

चा पीकर दानीश ने असबाब बाहर निकाला। क्षितीश-चन्द्र ने उन्हें कुलियों पर लदवाया। दानीश ने कपड़े बदले, इसके बाद शान्ति के फूल से गालों पर हाथ फेर कर कहा—अच्छा तो अब जाते हैं।

छलछलाती हुई आंखों से पति की ओर देख कर शान्ति बोली—कब आओगे।

छि! छि! इस बात का क्या यही उत्तर? वह विरह सूचक रस भरी कविता कहां है?

दानीश ने रुखाई से कहा—जब छुट्टी मिलेगी।

किन्तु हाय! अब भी शान्ति ने यह न कहा कि—प्राण-नाथ मैं तुम्हारी राह देखूंगी, शीघ्र आना।

नितांत से—मन से दानीश कमरे के बाहर हुए। बाहर माता, भाई, और कई आदमी खड़े थे। दानीश ने माता तथा बड़े भाइयों के चरण छुए। सबने छल छल नेत्रोंसे दानीश को आशीर्वाद दिया। दानीश घर के बाहर हुए। क्षितीश उन्हें स्टेशन तक पहुँचाने गये। दानीश के चलेजाने पर शान्ति अधीर होकर शय्या पर गिरपड़ी। उसको मालूम होता था कि कोई उसके प्राण निकाले लिये जाता है। सबलोग अपने अपने काम में लगे। जयन्ती शान्ति के पास पहुँची। उसने देखा पूर्ण चन्द्रमा राहुग्रस्त हुआ है। शान्ति का सुन्दर तथा हास्य पूर्ण मुख मुर्झा गया है, चित्ताकर्षक मनोहर नयन युगल जल पूर्ण हो रहे हैं।

जयन्ती ने शान्ति का मुख पकड़ कर ऊपर उठाया और बोली—हैं, यह क्या बहन, आदमी क्या विदेश जाता नहीं, और कभी भी क्या दानीश तेरा आचल पकड़े घर में बैठा रहता था? वह तो सदा ही विदेश रहता है।

अभी तक तो शान्ति बड़े कष्ट से आंसू रोके रही परन्तु अब नहीं रुके। झर झर करके गिरने लगे। आंचल से पोंछते हुए बोली—"यह बड़ी दूर है"

जयन्ती—रेल में क्या दूर क्या पास सभी बराबर है। आ चल, मेरा कुछ काम कर चलके।

किन्तु शान्ति ने उस दिन बड़ा गड़बड़ किया। तीन हाड़ियां फोड़ डालीं, चावलों में नमक मिला दिया, पानी के घड़े में तेल डाल दिया। यदि बड़ीबहू जान पातीतो "महाभारत" मचा देतीं परन्तु जयन्ती ने सब छुपा डाला।

॥ दूसरा खण्ड ॥

पहला परिच्छेद ।

मुज़फ्फरपूर पहुँच कर दानीश चन्द्र ने कार्य प्रारंभ किया। दानीश अल्पवयस्क होने पर भी अपने सरल स्वभाव तथा कार्य कुशलता के कारण थोड़े दिनों ही में सब के प्रिय पात्र हो गये।

छः महीने के अंदर ही दानीश का यश फैल कर खूब विख्यात हो गई। बहुत से इष्ट मित्र हो गये।

किन्तु उनका अतृप्त प्रेमा कांक्षी हृदय प्रेम के लिए रात दिन जला करता था। दानीश एक सुशिक्षिता प्रेणयनी के लिए लालयित रहते थे।

श्रावण का महीना था। प्रातःकाल ही से थोड़ी थोड़ी वृष्टि आरंभ हो गई थी। समस्त दिन वर्षा होती रही, इस कारण पृथ्वी जल पूर्ण हो गई थी।

शाम को दानीश अपने कमरे में उदास बैठे हुए थे। उन्हें रह रह कर अपना ग्राम, ग्राम में बना हुआ घर, घर के अंदर का कमरा याद आ रहा था। चलते समय के वही सजल नेत्र युगल, वह कांपते हुए पुष्प सदृश कोमल रक्ताधर याद आ

आ कर मन को विचलित तथा दुःखित कर रहे थे। दानीश सोचते थे कि जितने दिनों तक वहां रहे ऐसी उदासी कभी नहीं आती थी। इस समय भी यदि वहां होते तो चित्त इतना उदास न होता। फिर मन में आता था कि, वहां रहने से लाभ ही क्या, वह तो कुछ जानती ही नहीं और अशिक्षिता है, केवल दासी कर्म करना जानती है। काव्यकला तथा सांगीत विद्या से बिलकुल अनभिज्ञ है। इस कारण वहां रहने से भी उदासी किस प्रकार मिटती ?

इसके बाद उन्हें हिन्दू समाज पर क्रोध आया। उन्हों ने सोचा कि अब मासिक पत्रों में ऐसे लेख देना चाहिए कि जिस से हिन्दू समाज में स्त्री शिक्षा, यौवन-विवाह तथा "कोर्टशिप" की प्रथा प्रचलित हो। फिर उनके मन में आया कि क्या हृदय की अतृप्त कांक्षा इसी प्रकार जागृत रहेगी।

जब दानीश चन्द्र का चित्त बहुत व्याकुल हुआ तो हारमोनियम लेकर बजाने लगे। इसी समय नौकर ने आकर कहा बाहर एक आदमी चिट्ठी लिये खड़ा है।

दानीश—कोइ अमीर आदमी है ?

नौकर—नहीं किसी का नौकर मालूम होता है।

"अच्छा चिट्ठी ले आओ" कहकर दानीश ने नौकर को विदा किया, और यह समझ कर कि अभी किसी रोगी को देखने जाना होगा, हारमोनियम उठा कर रख दिया।

नौकर ने लौट कर दानीश के हाथ में चिट्ठी दी। चिट्ठी बाहर से बड़ी सुन्दर थी। लिफ़ाफ़े के ऊपर एक अंग्रेज़ी नग्न परी की तसवीर बनी थी। पता अंग्रेज़ी में लिखा हुआ था।

दार्नीश ने पत्र खोला। मधुर विलायती इत्र की सुगंधिसे पत्र बसा हुआ था। नीचे मुक्तासदृश अक्षरों में यह लिखा हुआ था:—

प्रिय डाक्टर बाबू !

मैं आपके निकट सम्पूर्ण अपरिचिता हूं, परन्तु विपद काल में लज्जा नहीं रहती। मेरे ऊपर बड़ी विपद है। सात दिवस हुए कलकत्ते से मेरी माता मेरे पास आई हुई हैं, उनको बड़ा ज्वर है, अज्ञान पड़ी हुई हैं। इस समय आप की सहायता न पाने से इस विपद से उद्धार होने की आशा नहीं है। कहार और पालकी भेजती हूं, कृपया शीघ्र पधार कर चिरबाधित कीजिए।

आपकी
यूथिका दास बी ए.
लेडी सुपेरिन्टेण्डेन्ट मिश्नरी बालिका विद्यालय एवं सम्पादिका
"स्त्री शिक्षा" मासिक पत्र

दार्नीशचन्द्र ने कई बेर पत्र पढ़ा, और मन में कहने लगे कि जो स्त्री ऐसा प्रेम पूर्ण पत्र लिखती है उसका हृदय नजाने कितना प्रेम पूर्ण होगा।

दार्नीश चन्द्र ने कपड़े पहने और पालकी पर चढ़के चले।

दूसरा परिच्छेद।

शहर बाहर एक छोटी सी कोठी में यूथिका का वास है। कोठी के सामने एक छोटा सा बाग़ है। बाग़ के मध्य भाग में एक छोटा फ़व्वारा है। बाग़ के अंदर से ही कोठी को रास्ता गया है। रास्ते पर लाल कंकड़ों का चूर्ण बिछा हुआ है। कहारों ने बाग़ के फाटक के सामने पालकी उतारी।

पालकी से उतर कर दानीश उसी रास्ते से कोठी की ओर चले, आगे आगे एक नौकर राह दिखाता हुआ चला।

कोठी के द्वार पर सुन्दर रंगीन कपड़ोंके परदे पड़ेहुए थे।

नौकर ने एक द्वार पर पहुंच कर कहा—"डाक्टर साहब आगये"। थोड़ी देर बाद परदा उठा कर एक अत्यन्त रूपवती युवती बाहर आई।

फणिणी सदृश कुसुम गंधा वेणी पीठ पर लहरा रही थी। फ़ीतेदार बढ़िया रेशमी धोती शरीर पर। कमीज, कमीज के ऊपर मूल्यावान जाकेट शोभा दे रही थी। पैर मोजों और लेडी शूज से ढके हुए थे। युवती अनिंद्य, अपूर्व अत्योत्कृष्ट सुन्दरी थी। मालूम होता था कि ऐसा मनोहर तथा चित्ताकर्षक रूप दूसरा नहीं है। जो उस रूप को देखता था मोहित हो जाता था। उस रूप को देख कर दानीश अधीर होगये।

पहले यूथिका ही बोली। उसका स्वर कोयल की तरह मिष्ट था। उसने कहा—आपकी कृपा असीम है। ऐसे वर्षा काल में आपने जो कृपा की उससे मैं आपकी चिरऋणी होगई। नो भीतर ही चलिए—दानीश उसकी बात का कुछ उत्तर नहीं दे सके।

यूथिका की आज्ञा से नौकर ने सामने का द्वार खोला। उस कमरे में एक वृद्धा पलंग पर पड़ी छटपटा रही थी। पास कोई नहीं था।

डाक्टर ने रोगिनी को पुकारा। बुढ़िया ने आंखें खोल कर कहा—आह, बड़ी प्यास—पानी—बड़ी देर से प्यास लगी—पास कोई नहीं था—पानी।

दानीश ने यूथिका से कहा—रोगी के पास एक आदमी हमेशा रहना चाहिए।

यूथिका—क्या करें डाक्टर बाबू, यहां आदमी नहीं मिलते। मेरे पास एक "वेरा" और एक "कुक" है। वेरा ही कभी कभी देख लेता है मुझे तो छूते डर मालूम होता है। मेरीमां कलकत्ते से आई, वहां सदा प्लेग रहता है, मलेरिया भी बहुत है, इस कारण मैं यहां आती भी नहीं और न छूती हूं। असावधान रहने से स्वयं रोग पकड़ लेने का भय है।

दानीश—आपका कहना ठीक है। इसके लिए एक "नर्स" होना चाहिए।

बुढ़िया फिर बोल उठी—पानी, पानी

वेरा ने थोड़ा पानी उसके मुखमें डालदिया। दानीशने रोगीको देखा।

यूथिका—कहिए क्या देखा।

दानीश—कोई भयकी बात नहीं है।

यूथिका—कितने दिनों में अच्छी होजांयगी।

दानीश—यदि सेवा शुश्रुषा भली प्रकार हुई तो आठ दस दिनमें अच्छी होजावेंगी।

यूथिका—सेवाके लिए मैं आदमी कहां पाऊँगी, डाक्टर बाबू।

दानीश—कुछ चिन्ता नहीं, आदमी हम देंगे।

यूथिका—बाबू! आपको अनेक धन्यवाद, आपका प्रेम धन्य है, किन्तु आप आदमी कहां पावेंगे।

दानीश—सरकारी अस्पतालमें कई "नर्स" हैं उनको कुछ देनेसे वह काम करआया करेंगी। हमारे कहनेसे वे बिना फ़ीसही करजाया करेंगी।

यूथिका—आप आदर्श मानव हैं। आजसे मैंने आपकी पवित्र मूर्त्ति हृदयमें धारण की।

दानीशका हृदय धड़कने लगा। बोले—नुसखा लिखदें दवाख़ानेसे दवा मँगालीजिए।

यूथिका—दवा के क्या दाम लगेंगे?

दानीश—कुछ नहीं। सरकारी औषधालय को हम लिख देंगे।

यूथिका—डाक्टर बाबू! इस प्रेम का बदला मैं कैसे दूं?

आइए, मेरे कमरे में लिखने की सामग्री है, चल कर लिख दीजिए।

यूथिका के साथ दानीश उसके कमरे में गये। नौकर ने द्वार बंद कर दिया।

तीसरा परिच्छेद।

यूथिका का कमरा खूब सजा हुआ था। नीचे फ़र्श पर क़ालीन बिछा हुआ था। क़ालीन पर एक सुन्दर मराको लेदर मंडित मेज़ बिछी हुई थी। मेज़ के चारों ओर अन्यान्य प्रकार की बनातों तथा मखमलों से मढ़ी हुई कुरसियां रक्खी थीं। कमरे के चारों ओर शीशे की अलमारियों में अनेक विषय की पुस्तकें चुनी हुई थीं। तसवीरों, ब्रैकेटस, बनावटी फूलों के गमलों तथा घड़ियों से कमरा पूर्ण था। एक ओर कई प्रकार के बाजे हारमोनियम, पियानो, वीणा आदि रक्खे हुए थे। कमरे में अंगरेज़ी इत्र की सुगंधि भरी हुई थी।

यूथिका ने दानीश की ओर एक कुर्सी खिसका कर कहा - आप थोड़ी देर बैठ कर विश्राम कीजिए आपको बड़ा कष्ट दिया, क्षमा कीजिएगा।

दानीश—(मुसकरा कर) आप भी बैठिए।

यूथिका भी पास ही एक कुर्सी पर बैठ गई।

मेज़ पर लिखने की सामग्री रक्खी हुई थी। यूथिका ने दानीश की ओर एक कागज़ का टुकड़ा खिसका कर कहा—लीजिए क्या अभी लिखिएगा?

"हां लाइए अभी लिखदूं" कह कर दानीश ने नुसख़ा लिखा और नौकर को बुला कर यथोचित उपदेश के साथ नुसख़ा देदिया। नौकर लेकर चला गया।

दानीश बोले—आपके मासिक पत्र के कितने ग्राहक हैं।

यूथिका—(गम्भीरता पूर्वक) बहुत थोड़े हैं, सौ से अधिक नहीं। इससे आप जान सकते हैं कि हम लोगों की उन्नति की आशा अभी कोसों दूर है। जिस देश में शिक्षिता रमणी द्वारा सम्पादित पत्र की प्रति हर एक गृहिणी के कमरे की शोभा नहीं बढ़ाती उस देश की उन्नति होना कितना कठिन कार्य है, यह ज्ञानी पुरुष सरलता पूर्वक समझ सकते हैं।

दानीश—(ठंढी सांस भरके) यह बिल्कुल ठीक है।

यूथिका—आपने क्या कभी मेरा पत्र पढ़ा है।

दानीश—नहीं मुझे अभी ऐसा सौभाग्य प्राप्त नहीं हुआ।

यूथिका—इससमय मेरे पास कोई भी प्रति नहीं है। इस महीने से आपके पास प्रतिमास एक प्रति भेजा करूंगी। यह देखिए इस महीनेके "प्रूफ़शीट" आगये हैं। देखिए कैसे अच्छे अच्छे लेख हैं। कुछ "मैटर" कम पड़गया

था इसकारण जल्दीसे एक कविता लिखी है। आपके आनेके पूर्व ही यह कविता शेष की है नहीं तो आपके आनेपरभी मैं न उठसकती। इसके लिए आप मुझे क्षमा करें क्योंकि आप जानते हैं कि कवि जब अपने काम में लगा होताहै तब सहस्र अन्य कार्य होनेपरभी नहीं उठता। कवि का ध्यान बँटानाभी एक अपराध है यह आप स्वीकार करेंगे। देखिए, इस कविताको पढ़के देखिए। मेरी ऐसी कोई वस्तु नहीं जिसे मैं आपको नहीं दिखासकती।

दानीश—(आनन्द तरङ्ग में गोते खातेहुए) मैं आज अपनेको धन्य समझताहूँ।

यूथिकाने एक कागज़ उठाकर दानीशको दिया। दानीश ने उसे आदर-पूर्वक लेलिया, और पढ़ने लगा।

यह कविता स्वयं यूथिकाकी लिखीहुई नहीं थी बल्कि एक कविताका अनुवाद मात्र था। दानीश यह बात नहीं समझसके। वह उस कविताको पढ़कर मुग्ध होगये।

यूथिकाने पूछा—कहिए कविता कैसी है? आप समझदार हैं, प्रेमिक हैं, इसीकारण आपसे पूछनेका साहस किया।

दानीश—क्या कहूँ? इस भाषा में ऐसी भावपूर्ण कविता होसकती है यह मुझको विश्वास नहीं था। कविताके मर्मभेदी भावने मेरा हृदय वेध दिया। हृदय में मिलनकी इच्छा जागृत करदी।

यूथिका—(मुसकुराकर) खैर तो मेरा कविता लिखना सार्थक हुआ। आज आपको बड़ा कष्ट दिया। मैं हीना, दीना

रमणी आपके लिए क्या करसकती हूँ ? यदि आज्ञा हो तो आपके चित्त विनोदार्थ दो एक गान गाकर सुनाऊँ।

दानीश—आजका दिवस धन्यहै कि आप ऐसी रूप गुण मण्डिता स्वर्गीया स्त्रीसे मेरी भेंट हुई। अच्छा अब कृपाकर अपना वाक्य-पालन कीजिए।

यूथिकाने हारमोनियम निकाला और उसके साथ अपना मधुर कण्ठ मिलाकर गाना आरम्भ किया।

गाते गाते यूथिका के गुलाबी गालों पर पसीने की बूँदे आकर मोतियोंके सदृश शोभा देनेलगीं।

दानीश बड़ी गम्भीरता से बैठे गाना सुन रहेथे। वह यूथिकाके गान समय के हाव भाव तथा कटाक्षको देखकर मुग्ध होगये। कुछ समय बाद, यूथिकाने गाना बन्द कर दिया और रूमालसे मुँह पोछते हुए बोली—आपका समय नष्ट तो नहीं होता।

दानीश—कदापि नहीं। जीवनमें यह प्रथम आनन्द है। आशा है कि आजहीसे इसका अन्त नहीं होगा।

यूथिका—नहीं, नहीं आप ऐसी अशुभ बात न कहिए। आपके मोहन दर्शन से मेरा जीवन सार्थक हुआ। डाक्टर बाबू, क्या आप कभी कभी दर्शन दिया करेंगे। यदि आप न आवेंगे तो मुझे बड़ा कष्ट होगा।

दानीश—यदि बाधा न हो तो एकबेर प्रतिदिन आयाकरूं।

यूथिका—बाधा क्या? बन्धुसे मिलनेमें बाधा कैसी? हां—असल बात तो भूलहीगई, आपकी फ़ीस क्या देना होगी।

दानीश—(मुसकराकर) फ़ीस ? आपसे फ़ीस लेंगे ? मैं स्वयंको आपका बन्धु समझनेही में धन्य हूँ।

यूथिका ने हंसकर, इसवेर, पियानो वजाना आरम्भ किया और उसके सुर में सुर मिलाकर दूसरा एक गाना गाया।

गाना समाप्त होनेपर दानीश धन्यवाद देतेहुए उठे और विदा मांगी।

यूथिकाभी उठकर खड़ी होगई और बोली—अब आप कब आइएगा। जिस समय आइए पालकी भेज दूँ।

दानीश—नहीं पालकी भेजनेकी कोई आवश्यकता नहीं, मैं सुबह अपनी गाड़ीपर आजाऊँगा।

यूथिका—आपकी असीम कृपा है ! हां—, नर्स के लिए कैसा होगा ?

दानीश—नर्स भेज दीजायगी।

दानीश, यूथिकासे विदा हुए। थोड़ी दूर चलनेपर पीछे फिरकर जो देखा तो यूथिका को अपनी ओर एकटक देखते पाया।

दानीश का पैर आगेको नहीं पड़ता था। वह सोचते थे कि यह अमृत भोग जिसके भाग्य में हो वह मनुष्य नहीं देवता है।

सामने देवदारके पेड़पर एक कौवा विकट स्वर से चिल्ला उठा। दानीश डाक्टरी जानते थे, काक चरित्र नहीं समझ सकते थे यदि समझते होते तो उन्हें ज्ञात होजाता कि कौवा कह रहा है कि—युवक ! यह अमृत धारा नहीं है, सुगभीर तृषा-मिरीचिका की निष्ठुर छलना मात्र है। युवकोंके चित्त में विचित्र वेदना मात्र जगानेवाली क्लेद धारा है।

चौथा परिच्छेद ।
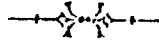
यूथिकाकी माताको आरोग्य हुए बहुत दिन होगये। यूथिका के पास दानीश का आना जाना इतना बढ़ा कि वह अपना तन मन धन सब यूथिका के चरणों में अर्पण कर बैठे। अब दानीशका समस्त हृदय ज्वाला पूर्ण होगया। जबतक वह यूथिका के पास नहीं जाते थे उन्हें शांति नहीं मिलती थी, परन्तु शान्ति-प्रभा सी दानीश की हृदय-ज्वाला यूथिकाके पास जाकर और भी बढ़जाती। वह सोचने लगते कि क्या इस प्राण-ग्राही ज्वाला के दूर होनेका संसार में कोई उपाय नहीं ?

एक दिवस प्रातःकाल चाय पीने के बाद दानीश बैठे समाचार पत्र पढ़रहे थे। उसी समय नौकर ने तीन चिट्ठियाँ लाकर दीं। उनमें से एक तो सरकारी चिट्ठी थी। दूसरा पत्र यूथिका का था। यूथिकाने लिखाथा कि—"पढ़तेही मुझसे मिलो। संध्याको मैं नहीं मिलूंगी क्योंकि आज मैं कलकत्ते चली जाऊँगी। विशेष हाल मिलनेपर जानोगे।

तीसरी चिट्ठी उनकी स्त्री शान्ति की थी। चिट्ठी मोटे अक्षरों में लिखीहुई थी और स्थान स्थान पर कटीहुई तथा अशुद्ध थी। उसमें लिखा था।—

नाथ !

तुम चिट्ठी क्यों नहीं लिखते ? मैंने चार पत्र लिखे परन्तु एक का भी उत्तर नहीं मिला। क्या मुझे बिलकुलही भूलगये। मुझे भूल सकते हो, परन्तु अपनी माता तथा भाइयों

को क्यों भूलगये ? शचीश को देखे बिना कैसे रहते हो ? तुम महीने महीने बहुत रुपये कमाते हो परन्तु हम लोगोंको अच्छी तरह भोजन भी नहीं मिलता। तुम सब रुपये क्यों ख़र्च कर देते हो ? जो नौकरी करते हैं क्या वे लोग घर नहीं आते ? गांवके बहुत लोग बाहर नौकरी करते हैं परन्तु सब घर आते हैं। मैं रोज़ पत्रकी राह देखती हूँ अब पिउन आता है. सोचती हूं, पत्र आया होगा। परन्तु वह दूसरों के पत्र देकर चलाजाता है। उसके ऊपर कभी कभी मुझे अत्यन्त क्रोध आता है। तुम्हें मेरीही क़सम है पत्रका उत्तर देना यदि न देओ तो मेरा मरा मुख देखो—

इसबेर पानी न बरसने से अन्न नहीं हुआ, खाने पीने का कष्ट है। शचीश अच्छा है। पांचकौड़ी का विवाह होजाय तो ठीक है परन्तु रुपया कहाँ ? जिन्हें पेट भर खानेकोही नहीं मिलता वे विवाह कैसे करें। मझली बहू बड़ा झगड़ा करती हैं। घर कब आओगे ?

सेविका—

शान्ति

पत्र पढ़तेही दानीशका हृदय अन्धकारमय होगया। उनको शान्ति की सुन्दर शान्त मूर्त्ति तथा उसका सरल और सहास्य मुख याद आया। इसके साथही साथ अपनी मातृभूमि, माताका स्नेह, भ्राताओंका प्रेम, भौजाइयोंका प्यार और शचीश की प्यारी बातें याद आनेलगीं। वह सोचने लगे—देखो वे सब लोग तो अर्थाभाव के कारण इतना कष्ट भोग रहे हैं और हम यहां सब भोग विलास में उड़ा देते हैं, उनको एक

पैसा भी नहीं देते। उनके पास उस समय दोसौ रुपये वर्तमान थे। इस कारण मन में सोचा कि आज ही यह सव रुपया घर भेजदेना चाहिए।

इसके वाद यूथिका से मिलने जाने के लिए तैयार हुए। नौकर ने साइकिल निकाली। कोट पतलून पहन तथा साइकिल पर सवार हो दानीश यूथिका की ओर चले।

यूथिका उस समय श्रंगार करके कमरे में वैठी वीणा वजा रही थी। दानीश के पहुंचते ही उसने वीणा अलग रखदी और मुसकरा कर वोली "आगये?"

दानीश एक कुर्सी पर वैठते हुए हंस कर वोले-भला तुम वुलाओ और मैं न आऊं?

यूथिका—क्यों वावू मैं तुम्हारी कौनहूं? मैं एक हीना दीना रमणी हूं मेरे वुलाने से तुम क्यों चले आते हो? मेरे में ऐसा कौनसा गुण है जिस कारण तुम वुलाते ही आकर उप-स्थित होजाते हो?

दानीश—किस लिए आता हूं यूथिका, यह मैं स्वयं नहीं जानता। परन्तु जिस कारण से कि एक ग्रह दूसरे ग्रह की ओर जाता है एक अणु दूसरे अणु की ओर आकर्पित होता है, उसी कारण से मालूम होता है, मैं तुम्हारे पास आता हूं।

यूथिका—मै समझी—आप कहते हैं कि हम दोनों समानगुण विशिष्ट एवं समान धर्म्मी होने से एक दूसरे की ओर अकार्षित होते हैं परन्तु ऐसा नहीं है। मुझ में और आप में वड़ा प्रभेद है। नहीं मालूम किस गुण के कारण आप मुझ पर दया करते हैं, मुझसे प्रेम करते हैं। किन्तु डाक्टर वावू,

मुझे भय है कि कहीं आप मुझे भूल जायं। मैं आप से विनय पूर्वक निवेदन करती हूं कि मुझे कभी न भूलना, अपने से कभी अलग न करना।

यूथिका ने रुमाल आंखों से लगाया। दानीश उसे रोते देख अधीर होगये। कहने लगे—ऐं! यूथिका तुमतो रोनेलगीं, भला मैं तुम्हें कभी भूल सकता हूं?

यूथिका ने रुमाल मेज़ पर रख दिया और कहने लगी—परमेश्वर ऐसा ही करे। परन्तु मैं उसके लिए नहीं रोती।

दानीश—तो किस लिए रोती हो, यूथिका? क्या वह बात मुझे न बताओगी?

यूथिका—बताऊंगी क्यों नहीं, तुमसे मेरी कोई बात छिपी नहीं रहेगी। मैं आज रात को कलकत्ते जाउंगी। वहां लगभग दस दिन तक रहूंगी। इन दस दिनों में मैं तुम्हें नहीं देख सकूंगी।

दानीश—विना तुम्हारे देखे मैं भी दस दिन कैसे काटूंगा?

यूथिका—परन्तु करूं क्या? विना जाये बनेगा नहीं।

दानीश—क्या आज ही जाओगी?

यूथिका—हां आज ही—परन्तु मेरे जाने के एक घंटा पहले तुम आकर मुझ से मिल जाना।

दानशि—अवश्य आऊंगा।

यूथिका—और एक बात है-हठात जाने की आवश्यकता पड़ने से यह बात तुमसे कहनी पड़ी। यदि तुम्हारे पास रुपया हो तो पाँच सौ रुपये मुझे उधार देदो लौट कर देदूंगी।

दानीश—पांच सौ ? आज ही चाहिए।

यूथिका—हां—क्योंकि संध्या तक मुझे जाने का सब प्रबंध करलेना है। रात को ८ बजे की गाड़ी से जाउंगी। देखो रात को मुझसे अवश्य मिलना यदि नहीं मिलोगे तो मेरा चित्त ठिकाने नहीं रहेगा।

दानीश के पास दो सौ रुपये से अधिक नहीं थे। इधर यूथिका की प्रार्थना न मानने की शक्ति भी इनमें न थी। दानीश ने रुपये देना स्वीकार किया और पांच बजे तक भेज देने का वादा करके यूथिका से विदा हुए।

औषधालय में पहुंच कर दानीश ने वृद्ध कम्पौंडर पन्नालाल को बुलवाय और अलग लेजाकर कहा—देखो पन्नालाल आज हमको अकस्मात ५००) रु०की आवश्यकता आ पड़ी है। दो सौ रुपये तो हमारे पास हैं तीनसौ और चाहिएं तुम बतला सकते हो कि यह तीनसौ कहां मिल सकते हैं।

पन्नालाल—बड़े बाज़ार के महाजन रामसरनदास से आपका कुछ परिचय है या नहीं ?

दानीश—हाँ है, हम दो तीन बेर उनके यहाँ चिकित्सा के लिए जाचुके हैं।

पन्ना—वह लोगों को सूद पर रुपया देते हैं, आप को भी दे देंगे।

दानीश—अच्छा तुम्हीं उनके यहां जाकर पूछ आओ, देखो क्या कहते हैं।

पन्नालाल ने दानीश की आज्ञा का प्रतिपालन किया।

दानीश रोगियों को देख कर नुसखे लिखने लगे। नुसखे लिखते जाते थे और मन ही मन यह सोचते जाते थे कि कहीं ऐसा न हो कि बुड्ढा आकर टका सा उत्तर देदे।

बड़ी देर के बाद बुड्ढा लौटा। उसे देखते ही दानीश ने उत्सुक होकर पूछा—क्यों क्या ठीक कर आये?

बुड्ढा—हां, वह रुपया देने के लिए तैयार हैं, परन्तु दो बातें हैं।

दानीश—वह कौन कौन सी?

बुड्ढा—प्रथम तो सूद कुछ अधिक है।

दानीश—कितना?

बुड्ढा—दो रुपया। रामसरनदास बोले कि औरों से तो तीन रुपये लेते हैं परन्तु डाक्टर साहब को दो ही रुपये पर दे देंगे।

दानीश—और दूसरी बात?

बुड्ढा—आपको उनकी दुकान पर जाकर हुंडी लिखना पड़ेगी।

दानीश—जब और कहीं रुपये का ठिकाना नहीं, तो इसी प्रकार रुपया लेना ही पड़ेगा। कब बुलाया है?

बुड्ढा—जब आपको सुविधा हो। इस समय बारह बजे तक दुकान खुली रहेगी। शाम को फिर तीन बजे से खुलेगी।

दानीश—दस बजे तक हमें छुट्टी मिल जायगी, उसी समय चले चलेंगे।

"जो आज्ञा" कह कर बुड्ढा विदा हुआ और दानीश भी अपने काम में लगे।

ठीक दस बजे दानीश और पन्नालाल एक किराये की गाड़ी में सवार होकर रामसरनदास की दुकान पर पहुंचे।

रामसरनदास ने डाक्टर साहब का बड़ा आदर सत्कार किया और हुन्डी लिखा कर तीनसौ रुपये देदिया। दानीश रुपये लेकर घर की ओर लौटे।

भोजनादि से छुट्टी पाकर दानीश ने कपड़े पहने और पांच सौ के नोट जेब में रक्खे।

उफ़, उनका हृदय कांप उठा। इतना रुपया वह किसे देने के लिए जाते हैं? देश में घर पर उनकी माता, उनके भाई भौजाई रुपया न होने से कष्ट भोग रहे हैं। उनको रुपया क्यों नहीं भेजते? वह यह क्या अनर्थ कर रहे हैं? यूथिका को क्यों इतना रुपया देते हैं, वह कौन है? उनके साथ उसका क्या संबंध है।

उस जन सून्य घर में दानीश खड़े उपरोक्त बातें सोचने लगे परन्तु उनका यह सोच विचार बहुत देर तक न ठहर सका। यूथिका की मनोहर मूर्ति के ध्यान मात्र ने उन सब विचारों को भुला दिया। दानीश सवार हो यूथिका के घर की ओर चले।

पांचवां परिच्छेद।

तुम आगये—मैं इस समय तुम्हारा ही ध्यान कर रही थी—एक मर्म्म-भेदी कटाक्ष से दानीश को बेचैन करके यूथिका ने उपरोक्त वाक्य कहे।

दानीश—तुम्हारे बुलाने पर विना आये कैसे रह सकता हूं?

यूथिका—डाक्टर बाबू, क्या तुम मुझसे प्रेम करते हो?

दानीश—प्रेम किस प्रकार बताया जाता है, यूथिका, यह मैं नहीं जानता, यदि जानता होता तो बता देता कि मैं तुमसे कितना प्रेम करता हूं।

यूथिका—हाय! मैं अभागिनी तुम्हारे प्रेम का प्रतिदान कुछ नहीं देती। दानीश! क्या तुम मुझे अविश्वासिनी समझते हो?

दानीश—क्यों यूथिका—यह क्यों?

यूथिका—महा प्रेमिक शेक्सपियर कह गया है कि जहां प्रेम का प्रतिदान नहीं वहीं अविश्वास है।

दानीश—नहीं नहीं यूथिका—मैं अपने प्रेम का प्रतिदान तुम्हारी इन हृदय हारिणी आंखों द्वारा ही पाजाता हूं।

यूथिका—मैं समझ गई—दानीश! तुम सच्चे प्रेमिक हो तुम्हारे ऐसे प्रेमिक रत्न इस संसार में दुर्लभ हैं।

दानीश—अच्छा ये रुपये संभाल लो।

यूथिका—रुपये ? क्यों दानीश ऐसे समय पर रुपये की बात—नहीं, पार्थिव अर्थ की बात उठा कर हमारे स्वर्गीय प्रेम को अपवित्र मत करो। मैं इस समय तुम्हारे प्रेम का स्वप्न देख रही थी, तुमने तुच्छ रुपये की बात उठा कर मेरे उस मनोहर स्वप्न को तोड़ दिया। अच्छा यदि तुम रुपये ले ही आये हो तो इस मेज़ पर रखदो।

दानीश ने नोट गिन कर मेज़ पर रख दिये।

नोटों की ओर लापरवाही से देख कर यूथिका बोली—क्या पांच सौ लाये हो ?

दानीश—पांच सौ ही तो तुमने कहे थे ?

यूथिका—ख़ैर अब इस बात को छोड़ो, आओ एक विरह सूचक गाना गावें।

यूथिका ने हारमोनियम बजाना आरंभ किया, और उसके साथ अपना मधुर कंठ मिलाकर गाने लगीं।

संगीत, कविता तथा प्रेम स्वप्न का आनंद लूट कर रात को आठ बजे दानीश घर लौटे।

उनका मन उस समय उचाट हो रहा था। घर आकर एक समाचार पत्र पढ़ कर मन बहलाना चाहा। परन्तु उसमें जी न लगा। पत्र अलग फेंक कर एक उपन्यास उठाया, किन्तु वह भी अच्छा न लगा। अंत को शान्ति की चिट्ठी का उत्तर इस प्रकार लिखा:—

—तुम्हारा पत्र मिला, परन्तु काम से छुट्टी नहीं मिलती पत्र लिखने का समय कहां ? तुमने रुपये के लिए लिखा किन्तु इतने थोड़े वेतन में हमारा ही निर्वाह होना कठिन है तुम्हें कहां से भेजें। तुम नहीं जानतीं हमारे ऊपर कितने मनुष्यों के जीवन मरण का भार है, ऐसी अवस्था में घर कैसे आसकते हैं। समय पाने पर आने की चेष्टा करेंगे।

छठा परिच्छेद।
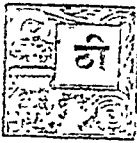
ठीक समय पर दानीश का पत्र शान्ति को मिला। परन्तु शान्ति पत्र पढ़कर सुखी न होसकी। वह उसी समय पत्र का उत्तर लिखने बैठी। पत्र लिखने के पूर्व मन में बहुत सी बातें आती थीं परन्तु लिखते समय याद नहीं रहतीं। जो कुछ लिखती उसी में भूल हो जाती है। अंत को बड़े कष्ट, परिश्रम तथा सावधानता से पत्र लिख कर समाप्त किया। पत्र इस प्रकार था:—

प्राण नाथ !

तुम्हारा पत्र मिला। यह मेरे लिए बड़े सौभाग्य की बात है। पत्र न पाने से मन में जो बातें आती हैं वे मैं कैसे लिखूं? हर महीने याद करके पत्र लिखा करो। तुमने लिखा है कि तुम्हें कहां से भेजें। तो क्या डेढ़सौ रुपये में भी तुम्हारा खर्च

नहीं चलता ? अच्छा एक बात पूछती हूं। जो लोग अकेले डेढ़ सौ खर्च करते हैं उनके घर वाले बिना खाये पिये ही रहते हैं, यह बात किस शास्त्र में लिखी हैं। यदि पच्चीस रुपये महीना भी हम लोगों को भेजो तो हम सब सुख पूर्वक निर्वाह कर सकते हैं। जिस नौकरी के कारण घर नहीं आ सकते और जिस नौकरी से घर का खर्च नहीं चलता उस नौकरी से क्या लाभ। विनोद के मामा एक साधारण डाक्टर हैं परन्तु हर महीने पचास रुपये घर भेजते हैं और तुमने तो कालिज पास किया है। परन्तु क्या तुम तीस रुपये भी नहीं भेज सकते। जिसके घर वालों को अन्न नहीं मिलता उसका नौकरी करना वृथा है।

नाथ! रुष्ट न होना। हम लोगों को बड़ा कष्ट हो रहा है, इस कारण इतनी बात लिखी। जहां तक शीघ्र हो सके घर आओ। माता जी तुम्हें याद करके रोया करती हैं।

सेविका—शान्ति.

पत्र लिखकर शांति लिफ़ाफ़े में बंद कर रही थी कि उसी समय मझली बहू आ उपस्थित हुई और पत्र देख कर मुसकुराते हुए बोली—ऐं, पत्र आया और उत्तर भी लिख दिया गया। जान पड़ता है कि देवर जी ने किसी गहने की नाप मांगी होगी इसी कारण झटपट लिख दी।

शांति हँसी। परन्तु उसकी हँसी पूर्ववत नहीं थी। पहले वह पूर्णिमा की दिगन्त चांदनी की तरह स्वच्छ तथा निर्मल थी परन्तु अब कृष्ण पक्ष की चांदनी की तरह प्रति दिन मलीन होती जाती थी।

शांति—हँसकर बोली—हां एक नया गहना गढ़वाने का विचार है इसीलिए उसकी नाप मांगी है।

मझली—कौन गहना ?

शांति—हँसिया

मझली—यह कोई नया गहना है क्या ?

शांति—हां—उससे खेत काटा जाता है।

कड़कड़ाते हुए तेल में जल का छींटा देने से जिस प्रकार वह भमक उठता है उसी प्रकार मझली बहू भभक उठी। आँख लाल करके बोली—ऐं इतना घमंड, तेरा इतना दिमाग पत्थर पड़ जायँगे इस घमंड पर पत्थर हां ....

शांति बड़ी अचम्भित हुई। वह नहीं समझ सकी कि सहसा उसके मुख से कौन सी अनुचित बात निकल गई। यदि वह जानती कि खेती का नाम लेने से इतना दोष होता है तो कभी न लेती।

उदास तथा करुणा दृष्टि से मझली बहू की ओर देख कर नम्रता पूर्वक बोली—बहिन, मैंने क्या कहा जो तुम इतनी क्रुद्ध हुई ?

मझली बहू चिल्लाकर बोली—हां बीबी, हां, तेरा खसम विद्वान, तेरा खसम रोजगारी और मेरा मूर्ख, गधा, मजदूर परन्तु हम किसी का खाते नहीं, किसी से लेते नहीं। तूने खेती काटना कह कर हमारे स्वामी की दिल्लगी क्यों उड़ाई ? यह बता।

शान्तिने लपक कर मझली बहू के पैर पकड़ लिये और विनय पूर्वक बोली—बहिन, मैंने तो ऐसा कभी नहीं कहा

मझले दादा, तो हमारे गुरू के तुल्य हैं, मैं भला उनकी दिल्लगी उड़ा सकती हूं ? तुम्हारे पैरों पड़ती हूं मुझे क्षमा करो।

"इतना तेज अच्छा नहीं, तेज में आग लगेगी" यह कहती हुई मझली बहू शान्ति के कमरे से निकली।

उनकी चीत्कार ध्वनि सुनकर घर के लोग जमा होगये क्षितीश भी कहीं से आन उपस्थित हुए।

सबसे पहले जयन्ती ने कहा—मझली बहू, क्या हुआ ?

मझली—होगा क्या, हम मूर्ख हैं, हम गधे हैं, हम मज़दूर हैं। जो पाता है हमी को लातें मारता है, हमाराही तिरस्कार करता है। दुष्ट यम भी हमें नहीं पूँछता। सब मरते जाते हैं परन्तु मेरा मरण नहीं।

जयन्ती—तो हुआ क्या कुछ बता तो सही ? तूने तो महाभारत ही मचा दिया।

मझली—हां हां सब मेरा ही दोष है। मैं खोटीहूं, लड़ाका हूं और मेरा स्वामी, मज़दूर है, किसान है।

जयन्ती—यह किसने कहा ?

मझली—सभी कहते हैं।

जयन्ती—इस समय किसने कहा।

मझली—जो कह सकती है। जिनका स्वामी डेढ़ सौ रुपये महीना कमाता है। जो घमंड से पृथ्वी पर पैर नहीं रखतीं—

जयन्ती—कौन, छोटीबहू ?

मझली—और नहीं तो क्या ?

जयन्ती—उसने क्या कहा ?

मझली—हां हां कुछ नहीं कहा सब दोष मेरा ही है।

क्षितीश—तो कुछ बता तो सही कि क्या हुआ?

मझली—होता क्या? छोटी बहूसे मैंने केवल इतना पूछा कि देवरजी को इतनी जल्दी क्या लिखा। बोली सोने की हँसिया भेजने को लिखा है। मैंने पूछा, उसका क्या होगा। उसपर कहती क्या है कि—"उससे खेत के धान काटे जांयगे" तो मैं क्या इतना भी नहीं समझती कि यह बात किस पर कही। मेरा ही स्वामी खेती करता है, धान काटता है।

यह सुन क्षितीशचन्द्र अत्यन्त क्रुद्ध हुए। क्रोध कांपते हुए बोले—ओफ़, इतना घमंड। छोटा मुँह बड़ी बात। हम धान काटते हैं इसीलिए हमारे वास्ते सोने की हँसिया मँगवाई। इसी खेती के कारण संध्या तक दो मुट्ठी अन्न मिलता है। कलम ने तो एक पैसा भी कमा के नहीं भेजा।

अब मझली बहू ने रोना आरम्भ किया। रोती हुई चिल्ला चिल्ला कर कहने लगी—खेत के धान ही पर सब की दृष्टि रहती है। कहां से किस के नाम रुपये आते हैं, कौन बक्स में बंद करके रखते हैं, इसका सम्वाद कोई नहीं लेता। हे परमेश्वर! तू मुझे उठाले। जिस दिन मैं मरूंगी उसी दिन सब के ठंडक पड़ेगी। हे, यमदेव तुम मुझे बुलालो। अब सहा नहीं जाता।

क्षितीशचन्द्र ने जयन्ती से कहा—सुनो बहू, तुम छोटी बहू को समझा दो कि यदि मज़दूर पर उनकी इतनी कुदृष्टि है तो अपने पति की कमाई से एक पैसा भी उसे न दें किन्तु सावधान, यदि फिर कभी ऐसे कुवाक्य कहे, इस प्रकार

ताना मारा तो अच्छा न होगा। हम किसी के बाप के गुलाम नहीं हैं।

जयन्ती—क्षितीश क्या तुम भी बौरा गये? छोटीबहू क्या ऐसी नीच है जो तुम्हें ऐसे कटु शब्द कहेगी, यह तुम विश्वास करते हो?

क्षितीश—तो क्या सब दोष एक ही मनुष्य का है? तुम बड़ी न्यायकर्ता।

जयन्ती—मैं न्यायकर्ता नहीं। परन्तु मझली बहू बड़ी झाड़ कांटा हैं, वृथा में तिल का पहाड़ बना देती हैं।

क्षितीश—(चिल्ला कर) तो सब मिलके उसे काट डालो।

मझली बहू का रुदन स्वर सप्तम पर पहुंच गया। चिल्ला चिल्ला कर अपने भाग्य की निंदा, घरवालों की निष्ठुरता आदि का वर्णन करने लगीं। उनकी चीतकार से घर भर गूंज उठा। क्षितीशचन्द्र बोले—चलो अपने कमरे में चलो। बस अब सहा नहीं जाता। अब की बड़े दादा के आने पर हम सब तै करदेंगे। ऐसे सुख से दुख भला है।

उच्चस्वर से रोती हुई मझली बहू अपने कमरे की ओर चलीं पीछे पीछे क्षतीशचन्द्र भी गये।

कमरे में जाकर मझली बहू ने क्षितीशचन्द्र से कहा—तुम जब देखो तब मुझी को दोष दिया करते थे। आज तो अपने कानों सुन लिया।

क्षितीश—क्या कहें हमतो बड़े संकट में पड़ गये। इधर तो घरबार का सोच, उधर तुम लोगों का लड़ाई झगड़ा। कुछ समझ में नहीं आता कि क्या करें।

मझली—इतनी बातें कौन सहे. हमें कहेगी. तुम्हें कहेगी। क्यों सहें। उसके बाप का कुछ देना है या उसके खसम की कमाई खाते हैं।

इधर जयन्ती ने सास से कहा—मां. तुमने भी चितीश को कुछ नहीं कहा।

सास—क्या कहूं ? मुझे अब कुछ कहना सुनना नहीं। अब तो भगवान मुझे उठालें तो अच्छा है। ये बातें देख देख कर मेरा जी जलता है।

जयन्ती—छोटी बहू ऐसी नहीं है जो बिना कारण कुछ कहे सुने।

बड़ीबहू मुंह पिचका कर बोली—बिना हवा तो पत्ता हिलता नहीं। कोई बात अवश्य होगी।

जयन्ती भृकुटी सिकोड़ कर बोली—जब तेरे साथ होती है तो जान पड़ता है तू हवा बुलालेती है।

इसके उपरांत सब लोग अपनी अपनी विवेचना अनुसार इस झगड़े की समालोचना करने लगे। परन्तु जिसके कारण यह लड़ाई झगड़ा हुआ वह बेचारी एक कोने में बैठी फूट फूट कर रोरही थी। वह इस कारण नहीं रोती थी कि मझली बहूने उससे झगड़ा किया और गाली दी, बल्कि उसका रोना केवल इस कारण था कि सब लोग उसे दोषी समझ कर उस पर क्रुद्ध हैं। इस समय अभागिनी शांति के दुःख का अंत नहीं।

सातवां परिच्छेद ।

जीवन-मरण, सुख-दुख, हास्य-रुदन, शीत, ग्रीष्म, वर्षा, येह सब किसी की प्रतीक्षा नहीं करते । उपरोक्त घटनाके पश्चात् लगभग डेढ़ वर्ष व्यतीत होगया ।

शीत काल था । जतीशचन्द्र घर आये थे, साथ में बहुत सा रुपया भी लाये ।

रात को कमरे में स्वामी स्त्री में बातें हो रही थीं । बालक शचीश कभी माता कभी पिता की गोद में जाकर दोनों को आनन्दित कर रहा था ।

बड़ीबहू बोली—तुम्हारा शरीर तो अच्छा रहा ?

जतीश—हां, इस बेर तो अच्छा रहा ।

बड़ी—रुपया कितना मिला ?

जतीश—अच्छा मिला, परन्तु इस बेर धान कम होने से बड़ी अड़चन पड़ी ।

बड़ी—कितने रुपये लाये ?

जतीश—हर साल जितना लाते हैं उतना ही लाये । इस बेर कुछ अधिक मिलने की आशा थी परन्तु···

बड़ी—कितने रुपये लाये—पहले यह बताओ ।

जतीश—छः सौ ।

बड़ी—शचीश के लिए कितने रक्खोगे ।

जनीश—तुम जो ठीक समझो करो। तुम्हारी सलाह बुरी नहीं है। तुम्हारी सलाह पर चलने से थोड़े ही दिनों में डेढ़ सहस्र रुपये जमा होगये।

बड़ी—अच्छा पचास रुपये ख़र्च के लिए निकाल लो बाक़ी शचीश के लिए रक्खो।

जनीश—भला पचास रुपये में क्या होगा? अबकी अन्न भी नहीं हुआ—मोल लेना पड़ेगा। देना भी बहुत होगया।

बड़ी—तो मैं क्या करूं। लड़के का ध्यान तो रखना ही पड़ेगा।

जनीश—दो सौ रुपये ख़र्च के लिए निकाल लो, बाक़ी शचीश के लिए रख लो।

बड़ी—दो सौ—? ना ना ऐसा नहीं होगा। भगवान न करे यदि हमारा कुछ बुरा भला हो तो शचीश और मैं क्या भीख मांगूंगी।

जनीश—यह तो ठीक है परन्तु घरका ख़र्च भी तो है। वह कैसे चलेगा?

बड़ी—चले चाहे न चले। हां, तुम्हारा छोटा भाई तो डेढ़ सौ कमाता है, वह भी एक पैसा देता है?

जनीश—मुझे जान पड़ता है कि उसका चरित्र ठीक नहीं। तीन चार पत्र लिखे, उनमें से एक दो का उत्तर दिया है और वह भी कुछ उड़ा उड़ा सा। पढ़ते ही मालूम हो जाता है कि उसका दिमाग़ ठीक नहीं। कितनी आशायें थी कि वह कमाकर भेजेगा, घर की उन्नति होगी, परन्तु हाय सब मिट्टी में मिल गई।

बड़ी—तुम्हारी तरह सब तो बुद्धू हैं नहीं। वह क्यों दे। अपने लिए जमा कर रहा है। स्त्रीके लिए गहना गढ़वा रहा है।

जतीश—क्या कहतेहैं! छोटीबहू गहनों से दबी जाती है।

बड़ी—अब गढ़ाना आरंभ किये हैं। छोटी बहू को अपने पास बुलाकर देगा। वह हमारी तरह नहीं, बड़ा उस्ताद है।

जतीश—हमारी समझ में यह बिल्कुल भूल है। दानीश कुसंगत में पड़कर रुपया नष्ट कर रहा है जो कमाता है, फूंक देता है।

इसी समय निस्तार (दासी) ने आकर कहा—बड़े बाबू तीन भले मानस आये हैं।

जतीश—कहां ?

निस्तार—देवी मंदिर में। भिकू ने उन्हें बैठने को कहा और तमाखू भर कर दी। रात को वे यहीं रहेंगे।

जतीश—उनका मकान कहां है कुछ मालूम हुआ।

निस्तार—हां भिकू ने पूछा तो उन्होंने देवग्राम बताया। जतीश चन्द्र उठकर चले।

देवी मन्दिर में लेम्प जल रहा था! बाहर बरांडे में एक क़ालीन पर तीन आदमी बैठे थे। उनमें से एक महाशय हुका गुड़ गुड़ा रहे थे। जतीश चन्द्र के वहां पहुंचते ही एक बोला—कहिए जतीश बाबू, आप कुशलपूर्वक तो हैं ?

जतीशचन्द्र ने हंस कर कहा—क्या दे महाशय हैं? आज हमारे बड़े सौभाग्य जो आप ने आकर घर पवित्र किया।

अपने अन्य दो साथियों की ओर लक्ष करके दे महाशय बोले-इनलोगों को आप नहीं पहचानते। इनका मकान देवग्राम में है—नाम हरिश्चन्द्र वसु—और उनका नाम रामजयमित्र।

दोनों बड़े कुलीन हैं। घोस महाशय की एक अविवाहिता भानजी है। लड़की, साक्षात देवी है, परन्तु पितृहीना है। घोस महाशय की आर्थिक दशा अच्छी नहीं। आपके छोटे भाई के साथ उस लड़की के संबंध करने का प्रस्ताव करने आये हैं।

जतीश—अच्छी बात है। हम भी पांचकौड़ी का विवाह करना चाहते हैं।

दे—यह तो आप समझ ही गये होंगे कि देना लेना विशेष नहीं होगा।

जतीश—परंतु आज कल की रीति अनुसार ....

दे—उसके लिए आपको कुछ कहना नहीं पड़ेगा।

जतीश—अच्छा अभी आप लोग विश्राम कीजिए इसके बाद बात चीत होगी।

दे—हां, जब आये हैं तो होहीगी।

जतीशचन्द्र थोड़ी देर इधर उधर की बातें करके घर के अंदर गये।

अंदर जाकर जतीशचन्द्र पाकगृह में पहुंचे। जयन्ती भोजन बना रही थी, छोटी बहू आवश्यक सामिग्री दे रही थी। मालकिन बैठी उनसे बात चीत कर रही थी।

जतीशचन्द्र ने कहा—भोजन शीघ्र बनाओ तीन आदमी आये हैं।

जतीशचन्द्र की माता बोली—उनका घर कहां है—क्यों आये हैं?

जतीश—देवग्राम के रहनेवाले हैं। पांचकौड़ी का विवाह संबंध करने आये हैं।

जतीश की माता के उत्तर देने के पूर्व ही जयन्ती कड़ाही में मछलियां छोड़कर बाहर निकल आई और शीघ्रता पूर्वक हाथ पैर धो जतीश के पास आकर बोली—लड़की कितनी बड़ी है ? देखने में कैसी है ?

जतीश—इस संबंध में अभी कुछ बात चीत नहीं हुई। परंतु इतना ज्ञात होगया है कि लड़की सयानी है। आज कल जब लड़की सयानी हो जाती है तभी लोग विवाह के लिए जल्दी करते हैं। और मां बाप की दृष्टि में तो उनकी लड़की सुन्दरी ही होती है।

जयन्ती—यदि हो सके तो इसी महीने में विवाह करदो पाचकौड़ी भी जवान होगया है।

जतीश—यद्यपि देवग्राम वाले ग़रीब होगये हैं तथापि उनका सामाजिक सन्मान अभी पूर्ववत ही है।

माता बोली—मैं और तो कुछ कहेती नहीं बेटा ! किन्तु सब से छोटा लड़का है यदि होसके तो विवाह कर दो। बड़ी आशा थी कि दानीश कमायेगा तो कुछ सहायता मिलेगी परन्तु सारी आशायें मिट्टी में मिल गई।

जतीश—मां आज कल समय बड़ा बुरा है विवाह कहां से करें। कम से कम चार पांच सौ रुपये लगेंगे किन्तु इतना आवे कहां से।

माता ठंडी सांस भर कर चुप होगई।

जयन्ती बोली—चार पांच सौ रुपये काहे में लगेंगे ?

जतीश—गहना चाहिए, ऊपर का खर्च चाहिए।

जयन्ती—क्या वे कुछ नहीं देंगे।

जनीश—देंगे तो, परंतु सामान्य।

जयन्ती—जैसे होसके विवाह तो करही देना चाहिए। पांचकौड़ी सब से छोटा है यदि उसका विवाह न हुआ तो बड़े दुःख की बात है।

जगदीश—जहां तक हो सकेगा मैं चेष्टा करूंगा। परंतु जीवन मरण, विवाह यह तीन कार्य ईश्वर की इच्छा पर निर्भर हैं। परंतु हां इतनी बात मैं अवश्य कहूंगा कि यह विवाह सम्बंध मुझे पसंद है।

जयन्ती—तो फिर देर न करो रुपया न हो कर्ज़ काढ़ लो।

जगदीश—अदा कौन करेगा?

जयन्ती—तुम्हीं अदा करोगे और कौन करेगा।

जगदीशचन्द्र चले गये।

थोड़ी देर पश्चात उसी स्थान पर पांचकौड़ी आ पहुंचा। जयन्ती उस समय भोजन बनाने में मग्न थी।

पांचकौड़ी ने कहा—बहू कुछ खाने को दो बड़ी भूख लगी है।

जयन्ती—(हंसकर) अरे तेरा विवाह है।

पांचकौड़ी—तो क्या भूख प्यास सब उड़ गई?

जयन्ती—सच, लोग सम्बंध करने आये हैं।

पांचकौड़ी—बड़े दादा क्या कहते हैं?

जयन्ती—विवाह करेंगे।

पांचकौड़ी—बहू बहुत दिन हुए मैं तुम से कह चुका और आज फिर कहता हूं कि मैं विवाह नहीं करूंगा। इस कारण उसके लिए उद्योग करना वृथा है।

जयन्ती—लो और सुनो। जा जा तू अपना वड़प्पन रहनेदे।

पांचकौड़ी—वड़प्पन नहीं वह सच बात है। मैं विवाह नहीं करूंगा।

जयन्ती—जो धर्म्म कर्म्म करता है क्या वह विवाह नहीं करता ?

पांचकौड़ी—धर्म्म कर्म्म की बात नहीं। मैं विवाह कर के खिलाऊंगा क्या ? मैं क्या कुछ रोज़गार करता हूं। दादा के साथ रह कर खाऊंगा और इधर उधर घूमूं फिरूंगा. यही मेरे लिए सुख है। एक आफत सिर पर लेकर सारा जीवन नष्ट करने से क्या लाभ ?

जयन्ती—अच्छा अच्छा तू अपना पागलपन रहने दे। ख़बर दार जो आज से मेरे सामने ऐसी बातें कीं।

पांचकौड़ी—अच्छा खाने को तो दो, विवाह की बात से तो पेट भरता नहीं।

जयन्ती ने थोड़ा खाने को ला दिया। पांचकौड़ी ने बैठ कर खाना आरंभ किया।

आठवां परिच्छेद।
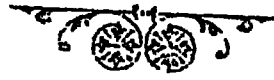
पति को कमरे में अकेला पाकर बड़ी बहू ने कहा— तुम्हारे भाई का विवाह है?

जगदीश—हां लोग तो आये हैं।

बड़ी—वे क्या देंगे?

जगदीश—बहुत कुछ तो देना नहीं चाहते क्योंकि लड़के का पिता नहीं मामा विवाह करता है। इसके अतिरिक्त उनकी अवस्था भी अच्छी नहीं।

बड़ी—खर्च आदि भी तुम्हीं को करना होगा?

जगदीश—हां।

बड़ी—रुपये हैं?

जगदीश—बस यही तो कठिनता है। इधर पांचकौड़ी का विवाह किये बिना भी नहीं बनता, विवाह करना ही पड़ेगा। वर भी अच्छा है। इनके साथ संबंध करने से सामाजिक सम्मान बढ़ेगा।

बड़ी—सारी बात रुपये की है।

जगदीश—हां यह तो ठीक ही है—अच्छा तुम एक काम करो।

बड़ी—मैं काम धाम कुछ भी न करूंगी। मेरे से कुछ न कहना।

जगदीश—कोई दूसरी बात नहीं।

बड़ी—तो फिर क्या ?

जतीश—इस बेर जो रुपया लाये हैं उसका मोह मत करो, उससे घरका ख़र्च भी चलायें और पांचकौड़ी का विवाह भी कर दें।

बड़ी—तुम क्या पागल हो गये हो ? मैं ऐसा कभी न करने दूंगी। उन में से पाचास रुपये से अधिक एक कौड़ी भी न मिलेगी। क्या मेरा शचीश भीख मांगेगा ?

जतीश—चैत में जो कुछ लावें वह सब तुम ले लेना।

बड़ी—ना ना ऐसा कभी नें होगा।

जतीश—तो क्या उन लोगों को जवाब देदें ?

बड़ी—यह तुम जानो।

जतीशचन्द्र उदास मनसे देवी मंदिर गये ! दे महाशयने पूछा—कहिए जतीश बाबू, क्या इच्छा है ?

जतीश—संबंध करना तो स्वीकार है परंतु विवाह बैसाख में करेंगे।

दे महाशय—यह कैसे हो सकता है। लड़की सयानी है। इसी महीने किये बिना नहीं बनेगा। आपको असुविधा क्या है ?

जतीश—छोटे भाई का विवाह है। कुटुम्बादि के लोगों को बुलाना होगा। बैसाखके इधर किसी प्रकार नहींहो सकता।

यह सुन कर वे लोग निराश हो गये। भोजनादि कर ही चुके थे इस कारण शयन करने का प्रबंध करने लगे। जतीशचन्द्र घरके अंदर चले गये।

नवां परिच्छेद ।

गांव में शालवाला आया है । शाल, धुस्से, लोइया, अलवानादि के अतिरिक्त और भी अनेक प्राकर के कपड़े बेचता है। गांव के सब लोग अपनी अपनी अवस्था अनुसार कपड़े मोल लेते हैं ।

पांचकौड़ी के पास शीत वस्त्र नहीं था, इस कारण वह एक चौदह रुपये के मूल्यका अलवान लेकर घर आया । माता के निकट आकर तथा अलवान दिखा कर बोला—मेरे पास कपड़ा नहीं है इस कारण यह ले आया हूं ।

माता—और रुपये !

पांचकौड़ी—मझले दादा कहां हैं ?

माता—अपने कमरे में होगा ।

पांचकौड़ी—ज़रा बुला दो ।

माता—क्यों ?. क्या रुपये देगा ? राम राम, वह रुपये लावेगा कहां से ?

पांचकौड़ी—दिखाऊंगा, ठगा तो नहीं गया ।

माता ने पुत्र को बुलाया । क्षितीशचन्द्र के आने पर माता ने कहा—देखो यह पागल क्या कर आया है ।

क्षितीश—क्या हुआ ?

पांचकौड़ी—यह अलवान लाया हूं । देखो ठगा तो नहीं गया ।

अलवान देख कर क्षितीशचन्द्र बोले—कितने का है ?

पांचकौड़ी—कितने का होगा ?

क्षितीश—बीस रुपये का।

पांचकौड़ी—चौदह का है, ठगाया तो नहीं ?

क्षितीश—नहीं—परंतु रुपये ?

पांचकौड़ी—बड़े दादा देंगे।

क्षितीशचन्द्र इस बात का कुछ उत्तर न देकर चुपचाप चले गये।

बड़ी बहू को उस ओर से आते देख माता बोली—बहू! देखो तुम्हारा छोटा देवर यह कपड़ा ले आया है, जो तुम कहो तो रक्खे।

बड़ी—(मुंह चढ़ाकर) मैं क्या कहूं ? जो उसकी इच्छा हो करे।

माता—यदि तुम्हारी इच्छा भी हो तो ले ले। तुम पञ्चू को पेट के लड़के के समान चाहती हो। तुम जो चाहोगी तो ले लेगा। बिना रुपये कैसे ले सकेगा ?

बड़ी—रुपये ? मां. मैं भला रुपये कहां से लाऊं। तुम्हारे पुत्र आवें तो उनसे लेना।

पांचकौड़ी—बड़ी बहू ! चौदह रुपये आंख मीचकर फेंक दो। जाड़ों मरता हूं. गरीब को कपड़ा देने से तुम्हें बड़ा पुण्य होगा। दे दो तुम्हारे पैरों पड़ता हूं।

बड़ी—मेरे पास रुपये होते तो दे देती।

पांचकौड़ी—पास तो किसी के भी नहीं रहते, बक्स में हैं। बहू, तुम्हारे हाथ जोड़ता हूं चौदह रुपये का मोह छोड़ो।

बकस का रक्खा साथ नहीं जावेगा ! जो दे जाओगी वही साथ जावेगा ।

बड़ी—सच्ची, मेरे पास रुपये नहीं, मैं क्या झूठ बोलती हूं।

उसी समय जतीशचन्द्र वहां आगये । बड़ी बहू पति को देख कर चली गई । जतीश ने कपड़ा देखभाल कर कहा—सस्ता है, परन्तु रुपये का प्रबन्ध किये बिना क्यों ले आया। अब फेरना भी ठीक नहीं, परन्तु करें क्या, मेरे पास भी रुपये नहीं ।

जतीशचन्द्र ने अपने कमरे में जाकर बड़ी बहू से चौदह रुपये लेने की चेष्टा की परन्तु उनकी सारी चेष्टा व्यर्थ गई । बड़ी बहू ने एक पैसा देना भी स्वीकार न किया । जब किसी ने रुपये न दिये तो पांचकौड़ी ने उदास होकर कहा—तो फेरे आता हूं ।

आंचल से आंसू पोंछते हुए माता बोली—बेटा ! मैं क्या करूं ? हाय इस जन्म में मैं तुमलोगों की कोई इच्छा पूरी न कर सकी ।

जिस कमरे में यह बातचीत हो रही थी यह कमरा मालकिन का था । बड़ी देर पहले छोटी बहू किसी कार्य के लिए इस कमरे में आई थी । परन्तु कमरे में लोगों के होने से कार्य समाप्त हो जाने पर भी बाहर न जासकी । वह द्वार पर खड़ी समस्त वार्तालाप सुन रही थी । सास के आंसू देख तथा पांचकौड़ी की बात सुन उसे बड़ा दुख हुआ ।

पांचकौड़ी ने दो तीन बेर कपड़े को उलट पलट कर देखा और ठंढी सांस भर कर बोला—मेरे पास तुम्हारा काम नहीं, तुम उसी के पास जाओ जिसके पास रुपया हो । यह कहकर बाहर चला गया ।

पांचकौड़ी के बाहर जाते ही छोटी बहू ने शीघ्रता पूर्वक बाहर आकर कहा—मां, पांचकौड़ी को बुलाओ।

माता—क्यों, बेटी?

छोटी बहू—यह बतलाऊंगी, पहले बुलाओ।

माता ने पांचकौड़ी को बुलाया वह लौट आया और माता से पूछने लगा—क्यों बुलाया?

छोटी बहू के हाथोंमें सोने की चार चार चूड़ियां थीं। उनमें से दो चूड़ी निकाल कर उसी स्थान पर रखदी और स्वयं फिर कमरे के अन्दर चली गई।

पांचकौड़ी ने माता से पूछा—इन चूड़ियों का क्या होगा।

माता ने कमरे में जाकर छोटी बहू से कहा ये चूड़ियां क्या होंगी, बेटी?

छोटीबहू—पांचकौड़ी से कहदो कि यह चूड़ियां बन्धक करके मकान मोल लेलें।

माता ने डबडबाती हुई आंखों से ठंडी सांस भर कर यह बात पांचकौड़ी से कही, परन्तु पांचकौड़ी ने ऐसा करना किसी प्रकार स्वीकार न किया और अपना काम करने चलागया।
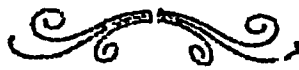
दसवां परिच्छेद।

समस्त माघ मास घर में रह कर फाल्गुन मास के प्रथम सप्ताह में जतीशचन्द्र अपने कर्म्म स्थान पर जाने का उद्योग करने लगे। जाने के एक दिन पहले माता तथा क्षितीशचन्द्र को बुलाकर जतीशचन्द्र सांसारिक कार्य्य का प्रबन्ध कर रहे थे। उसी समय क्षितीशचन्द्र बोले—बैलों के रखने की अब कोई आवश्यकता नहीं। दो वर्ष जान तोड़ कर परिश्रम किया परन्तु फल कुछभी न मिला, अपवृष्टि ने सब मिट्टी कर दिया।

जतीश—यदि ऐसा समझते हो तो बैलों को हटाओ और भूमि का कोई दूसरा प्रबन्ध करदो।

माता—भिकू पुराना नौकर है उसे क्या जवाब देदोगे?

जतीश—जब बैल ही न रहेंगे तो भिकू का क्याकाम? एक आदमी का खाना कपड़ा, और वेतन देना हमारे लिए अत्यन्त कठिन है।

माता—क्षितीश! तब तुम क्या करोगे?

क्षितीश—विदेश जाकर नौकरी चाकरी करने की चेष्टा करूंगा। सास ने उसे बुलाया है इस कारण उसे वहां भेज देना चाहिए।

माता—क्यों! तुमतो विदेश जाओगे, बहू बाप के घर क्यों जायगी?

क्षितीश—जब उसकी यहां किसी से बनती ही नहीं तो ऐसी अवस्था में उसका यहां रहना ठीक नहीं।

जतीश—नहीं बनती है तो इसमें दोष किसका है, यह तो सोचो।

क्षितीश—किसी का दोष हो, परन्तु अब उसका यहां रहना ठीक नहीं।

जतीश—तुम यहां से कब जाओगे?

क्षितीश—इस महीने की तेरह तारीख को ससुराल से गाड़ी आवेगी, चौदह को उसे भेज देंगे। इसके पश्चात महीने के अंत तक मैं भी चला जाऊंगा।

जतीश—सुनो भाई, मेरी समझ में तो बहू को मायके भेजना ठीक नहीं।

क्षितीश—यह मैं जानता हूं कि जब तक भाग्य में सुख नहीं होता तब तक कहीं भी सुख नहीं मिलता, परन्तु क्या करूं, जब यहां किसी से भी मेल नहीं तो रहना वृथा है।

जतीश—जब तक मां जीवित हैं तब तक हम लोगों को विशेष चिन्ता करने की आवश्यकता नहीं।

क्षितीश—इस विषय में मां भी कुछ विशेष ध्यान नहीं देतीं।

जतीशचन्द्र मां का मुख ताकने लगे। माता बोलीं—क्या करूं बेटा! मैं इस बुढ़ापेमें यह बोला किलकिल नहीं सह सकती और मझली बहूभी अपने आगे दूसरे की नहीं सुनती।

क्षितीश—तुमभी, मां, उसी को दोषी समझती हो, यदि तुम इस ओर थोड़ा सा भी ध्यान दो, नम्रता तथा प्रेम पूर्वक कार्य करो तो क्या यह लड़ाई झगड़ा हो सकता है ?

माता—बेटा, मैं तो जैसे सब से प्रेम करती हूं वैसे ही मझली से भी करती हूं और इससे अधिक और क्या करना होता है यह मैं नहीं जानती, मेरे लिए तो सब बराबर हैं।

क्षितीश—ना, मां! मैंने भली भांति विचार के देखा है तुम सबको एकसा नहीं समझतीं।

माता—बेटा, जब तुम्हारे भी लड़के वाले होंगे तब तुम जानोगे। मां के निकट सब बराबर हैं। पांच अँगुलियों में से किसी को काटो, एकसा दुख होगा। मुझे क्यों झूठा दोष लगाते हो—बेटा ?

क्षितीश—मां, मैं तुम्हें दोष नहीं देता सब दोष हमारे भाग्य का है। शांति किसको कहते हैं यह मैं अभी तक नहीं जान सका। अब दूसरे पथ पर चलकर देखें कि शांति मिलती है या नहीं।

माता—भगवान ने सबको हाथ पैर दिये हैं, अपना भला पागलभी समझताहै। जिससे तुम्हें शांति मिले वही कर देखो।

माताने जिस प्रकार यह बात कही उससे क्षितीश चन्द्र समझे कि माताने उन्हें विदा दे दी। उन्हें मनही मन बड़ा अभिमान हुआ।

यदि क्षितीश चन्द्र उस बात को फिर छेड़ते तो उन्हें ज्ञात हो जाता कि उस बातको कहने से माता का तात्पर्य यह

कदापि नहीं था जो उन्होंने समझा। परन्तु क्षितीश चन्द्र ने कुछ नहीं कहा। वह समझे कि माता ने जतीशचन्द्र के परामर्श से उन्हें दिया थी। वह अभिमान पूर्ण तथा व्यथित होकर वहां से उठगये।

दूसरे दिन जतीश चन्द्र अपने कार्य स्थान पर चलेगये।

नियत समय क्षितीशचन्द्र की ससुराल से गाड़ी आने पर अभागी वधू भी मायके चली गई। उनके जाने के तीन दिवस उपरान्त क्षितीश चन्द्र भी विदेश चले गये।

ग्यारहवां परिच्छेद।

छः मास व्यतीत होगया परन्तु जतीशचन्द्र न तो घर ही आये और न कुछ खर्चही भेजा।

आजकल भारत में हर विषय का भला बुरा संस्कार होगया है। परन्तु जिमीदारी विभाग की नौकरी की दशा जैसी की तैसीही है। इसकी पुरानी प्रथा में तिलमात्र भी परिवर्तन नहीं हुआ।

एक साधारण नायब का वेतन आठ रुपये से अधिक नहीं होता, परन्तु वह आठ रुपये मासिक वेतन का नायब एक नौकर और एक भोजन बनाने वाला ब्राह्मण नौकर रखता है। इन दो मनुष्यों के रखने में उसके सोलह रुपये मासिक

व्यय होते हैं। इसके अतिरिक्त घर का खर्च भी अधिक रहता है। तात्पर्य यह कि एक आठ रुपये मासिक वेतन के नायब की वार्षिक आमदनी आठसौ से अधिक रहतीहै। इतना रुपया आता कहां से है? छिन्न भग्नाकुल, गृहहीन, अन्न-हीन किसानों ही से इतना रुपया वसूल किया जाता है। नहीं मालूम भारत के दीन कृषकों का इस दण्ड से कब उद्धार होगा!

जतीशचन्द्र जिमींदार के नायब हैं। उन की आमदनी भी इतनीही है। उनकी अर्थ-प्राप्ति के समय, माघ, पौष तथा चैत्र मास हैं। पौष मास में जो कुछ मिला था वह सब शचीश की माता हड़प कर गईं। चैत्र मास में उन्हें एक पैसा भी नहीं मिला। न मिलने का कारण यह था कि जिमींदार और किसानों में झगड़ा चल रहा था। इस झगड़े में फंसे रहने के कारण न तो वह घरही आसके और न कुछ भेज ही सके।

इसबार अन्न भी नहीं हुआ। क्षितीश भी विदेश चले गये जतीशचन्द्र से कुछ लेना नहीं इस कारण उनके घर का खर्च चलना दुष्कर होगया।

माताने जतीशचन्द्र के पास आदमी भेजा। आदमी पत्र का उत्तर लेकर लौटआया। पांचकौड़ीने पत्र पढ़कर सुनाया। लिखा था:—हम एक पैसा भी नहीं भेज सकते, कर्ज़ काढ़ के खर्च चलाओ। यदि भगवानकी इच्छा होगी तो अदा होजावेगा।

पत्र सुनकर माता अत्यन्त अधीर होगई। ऐसी हालत में कौन उधार देगा? पास एक भी रुपया नहीं। जतीशचन्द्र अनिर्दिष्ट समय तक सहायता नहीं दे सकेगा। घर का खर्च बहुत कुछ कम होजाने पर भी चालिस पचास से कम नहीं।

मालकिन ने बड़ी बहू को बुलवाकर जतीशचन्द्र का पत्र सुनाया। सुनकर बड़ी बहू बोली—तो मैं क्या करूं मां, जो ठीक समझो करो। देखो मां, इस समय छोटे देवर जी कुछ भेजते रहते तो हम लोगों की क्या यह दशा होती? अकेला मनुष्य कहां तक करे। एक नई विपद पड़ने से ऐसा होगया, नहीं तो आजतक खून पानी एक करके वही काम चला रहे हैं।

ठंढी सांस भरकर मालकिन बोली—बेटी, क्या मैं यह नहीं जानती? दानीश ने जो कुछ किया अच्छा ही किया। बड़ी आशा थी कि मेरा दानीश पढ़ लिखकर योग्य हुआ है अब सब दुख दूर होजावेगा। परन्तु हमारे फूटे भाग्य से सारी आशा मिट्टी में मिलगई। अब क्या उपाय करें?

बड़ी बहू—मैं क्या बताऊं, मैं क्या तुमसे अधिक बुद्धिमान हूं?

मालकिन—बेटी, अब तेराही सहाराहै। बिना अन्न सारे सब सूख सूख मर जावेंगे।

बड़ी बहू—मां, तुम्हारे पुत्र ने क्या मुझे चार पांच सौ रुपये दे रक्खे हैं जो मैं निकाल के दे दूं?

मालकिन—नहीं मैं यह नहीं कहती।

बड़ी बहू—तो फिर क्या?

मालकिन—छोटी बहू ने अपने दो गहने दिये थे उन्हें गिरवीं रख के यह एक महीना चलाया है। अब तुम अपना एक गहना दो।

बड़ी बहू—मेरे गहने ? मेरे गहने सब भारी हैं। मैं उन्हें प्राण रहते कदापि न दूंगी।

मालकिन—छोटी बहू अभी बच्चाही है, उस ने तो दे दिये और तुम नहीं दोगी।

बड़ी बहू—भला वह क्यों न देगी—उसको तो भरोसा है। उसका स्वामी डेढ़ सौ महीना कमाता है।

मालकिन—हे भगवान ! भला दानीश ने कभी उस बेचारी को एक चांदी का छल्ला तक भी भेजा है ?

बड़ी बहू—अभी न भेजे, आगे भेजने की आशा तो है।

पांचकौड़ी तो सदा हास्य-मुख रहताहै। उसने हँसते २ कहा:—अधिक बात चीत मैं नहीं जानता। यदि देना हो तो दे दो और जो न देना हो तो अपने कमरे में जाकर बैठी रामयण पढ़ो—बस।

पांचकौड़ी ने बास क्या कही मानों जलते तवे पर पानी छिड़कादिया। आंखेलाल करके बड़ीबहू बोली—एं ! मुझसे ठट्ठा? क्या मैं इस घरकी कोई नहीं ? मेरा इतना अपमान ? बस अब मैं इस घर में नहीं रहूंगी. शचीश को लेकर अभी नइहर चली जाऊंगी। अभी तो लड़का है. वह एक मुट्ठी अन्न देकर क्या मैं बैठी दिन भर रामायण पढ़ा करती हूं; घर का कुछ काम नहीं करती ?

लड़केसे तात्पर्य उनके पच्चीस वर्ष के भतीजे रामसेवक से था। जिसके स्वामी की कमाई से घर का खर्च चलता है, सब को अन्न मिलताहै उसके क्रोधके आगे ठैरने की किसमें शक्ति

थी ? मालकिन भयभीत होकर बोलीं—बेटी, यह तो पागल है, तुम्हारी गोद का खिलाया हुआ है, इसकी बात पर इतना क्रोध न कर।

परन्तु पांचकौड़ी के सिर पर बड़ी बहू के क्रोध का कुछ प्रभाव न पड़ा। वह पहले की तरह हँसते हँसते बोला—यदि राजलक्ष्मी न पढ़ो तो महाभारत पढ़ो।

पहले से भी अधिक क्रुद्ध होकर सिंहनी की तरह गर्जती हुई बड़ी बहू बोली—मुझसे दिल्लगी! क्या मैं तेरी दिल्लगी के योग्य हूं—रे पंछु ?

पांचकौड़ी फिर उसीप्रकार हँसते हँसते बोला— पंछू कम है, उस से सावधान रहो।

चीत्कार करके बड़ी बहू बोली—मेरे रामनिधि को गाली? बैठे बैठे जिसका खायेगा, उसी के कुल का नाश करेगा ? तुम सब की यह इच्छा है कि राजीव मरजाय और जो कुछ है तुम ले लो।

स्वच्छ निर्मल दर्पण पर भाप लग जाने से जिस प्रकार वह मलिन होजाता है उसी प्रकार पांचकौड़ी का सदा प्रफुल्ल रुपये मुख मलिन होगया—आंखों में आंसू भर आये। वह कांपता हुआ बोला—क्या मैंने राजीव को गाली दी ? बड़ी बहू तुम ऐसी बात क्यों कहती ?

बड़ी बहू—हां हां सब जाना हुआ है, अब अधिक माया जताने की आवश्यकता नहीं। अभी तो किसीने एक मुट्ठी अन्न भी नहीं लिया तब भी इतनी बातें, और जब होंगे तब तो खाही जाओगे।

पांचकौड़ी—बड़ी बहू, मैंने तो ऐसी कोई बात कही नहीं। बिना कारण तुम इतनी बातें क्यों कहती हो ?

बड़ी बहू—अभीजो कुछ बाकी रहगया हो वह भी कहलो। मैं तो सदा बिना कारण झगड़ा किया करती हूं। एक महीने रुपये नहीं भेज सके इसीसे मैं और शचीश सब की आंखों में कांटा से खटकने लगे। बस, अबमैं तुम लोगों के साथ कभी न रहूंगी। जैसे होगा एक बेला खाकर रहूंगी।

मासिकाल—बहू ! तो क्या पांचकौड़ी को जुदा करदोगी ?

बड़ी बहू—मैं किसे जुदा करूंगी ? मैं ही तुम लोगों को खटकती हूं—मैं ही जुदा हो जाऊंगी।

यह कहकर बड़ी बहू बकती हुई चली गई।

पांचकौड़ी करुण दृष्टि से माताके मुख की ओर देखकर बोला—न जाने आज प्रातःकाल किसका मुख देखकर उठाया। अबतो जी में यह आता है कि निर्जन स्थान में जाकर प्राणायाम तथा मातृजरण की चिन्ता करके शान्ति पूर्वक जीवन व्यतीत करूं।

निस्तारिणी खड़ी हुई बड़ी बहू का निरर्थक झगड़ा देख देख मन ही मन कुढ़ रही थी। पांचकौड़ी की यह बात सुनकर बोली—छोटे बाबू ! यदि प्राणायाम करके चार पैसे कमा सकते हो तो करो। पराई कमाई खाने से ऐसी ही बातें सुनना पड़ती हैं। प्राणायाम करने को कहां जाना पड़ता है ?

"यम के घर" कहकर पांचकौड़ी वहां से उठगया माताने एक लम्बी सांस ली।

पांचकौड़ी जब बड़ी बहू के कमरे के पास से जा रहा था उसी समय शचीश "छोटे काका के पास जाऊंगा" कहता हुआ दौड़कर पांचकौड़ी के पास आया। ऐसे दुख के समय सर्व-सन्ताप-विनाशक, जीवनधन शचीश को देख पांचकौड़ी खिल उठा और हाथ फैलाकर उसे गोद में लेने लगा। परन्तु बड़ी बहू ने झपट कर शचीश को गोद में उठा लिया और कमरे के अन्दर ले जाने लगी। "मैं जाऊंगा" कह कर शचीश मचलगया और चीत्कार करके रोनेलगा। तब शचीशके कोमल गाल पर एक थप्पड़ मारकर बड़ी बहू बोली—अधिक आदर का काम नहीं, यदि मरना हो तो मेरी ही गोद में मर। जो तेरी मरण कामना किये बिना पानी नहीं पीते उनके पास कभी न जाने दूंगी।

यह कर बड़ी बहू शचीश को कमरे में ले गई। शचीश अन्दर जाकर चिल्लाने लगा। पांचकौड़ी, यह आशा करके कि कदाचित् शचीश की दशा पर दया करके बड़ी बहू उसे आने दे, कुछ देर खड़ा रहा। परन्तु जब बड़ी बहू ने कमरे का द्वार बन्द कर दिया तब पांचकौड़ी निराश होकर व्यथित तथा विदीर्ण हृदय सहित माता के पास लौटा।

छोटी बहू, बड़ी बहू तथा पांचकौड़ी का झगड़ा देख सुन रही थी। जब सब चले गये और केवल सास रह गई उस समय वह वहां आई और सास से बोली—"दुख करने से क्या होगा, मां, चलो अन्दर चलें।

ठंढी सांस भरकर मालकिन बोली—किस का दुख करूं? बेटी, जो भाग्य में बदा है वह होगा। परन्तु इस लड़के का—

सास की आंखों से आंसू बहने लगे, मुख बन्द होगया, यह देख छोटी बहूने अपने आंचल से उन्हें पोंछा और बोली—वह मर्द मानुष हैं, उनका दुख क्या? हम स्त्री जाति ठैरीं, घर से बाहर निकल नहीं सकती, इसी कारण चुपचाप घर में बैठी दुख सहा करती हैं।

उसी समय पांचकौड़ी अपना सा मुंह लिये लौट आया।

अत्यन्त कष्ट पाने से जिस प्रकार मनुष्य ठसक कर बैठ जाता है उसी प्रकार पांचकौड़ी बैठगया। छोटी बहू अलग हटकर खड़ी होगई।

माता ने उसकी यह दशा देख कर पूछा—क्या हुआ रे?

पांचकौड़ी—नहीं कुछ नहीं। परन्तु मैं अब इस घर में नहीं रहूंगा।

माता—क्यों क्या हुआ—कहां जायगा?

पांचकौड़ी बालक की तरह रो पड़ा। माता ने उसे इस प्रकार रोते पहले कभी नहीं देखा था। वह रोते रोते बोला:—बड़ी बहू ने मेरे प्राणसम शचीश को मुझ से छीन लिया।

माता—जिसका लड़का वह लेगई, इसमें तेरा क्या?

पांचकौड़ी—शचीश पागल का बंधन है। बड़ीबहू ने वह बंधन निकाल लिया। अब मैं यहां नहीं रहूंगा।

माता भी रोपड़ी। रोते रोते बोली—मुझे इतने ही कष्ट क्या थोड़े हैं जो तू भी चला जाकर कष्ट देना चाहता है। बेटा! जब तक मैं जीवित हूं मेरी आंखों आगे से कहीं मत जा, मेरे मरे बाद जहां जी चाहे वहां चला जाना।

पांचकौड़ी बड़ी देरतक चुप बैठा कुछ सोचता रहा। इसके उपरान्त एक लम्बी सांस भर कर बोला—बिना खाये यहां कैसे रहूंगा? बड़ी बहू तो अब मुझे खाने को देगी नहीं। जो घटना हुई है वह सब दादा को लिखकर जुदा हो जावेगी। तब क्या करेंगे?

माता—करेंगे क्या? अपना सिर।

पांचकौड़ी—छोटे दादा ने न जाने क्या किया? सब कहते हैं कि इसके भीतर कोई गूढ़ रहस्य है, इसी कारण वह घरबार सब भूलगये। अच्छा मैं एक बात कहता हूं।

माता—वह क्या?

पांचकौड़ी—कल प्रातःकाल मैं मुजफ्फरपुर जाऊं और वहां जाकर देखूं कि क्या बात है। और होसके तो कुछ खर्च भी ले आऊं।

माता—जाए तो बुरी नहीं है, परन्तु राह का खर्च तो है ही नहीं, जावगा कैसे?

इसमेंही में जयन्ती भी आ पहुंची। पांचकौड़ी की बात तथा सास का उत्तर सुनकर बोली—मेरा एक चांदी का चन्द्रहार है उसे बेचकर कुछ यहां खर्च के वास्ते देदे बाकी लेकर बाबूजी के पास चला जा। वहां जाने से कोई न कोई उपाय निकलेगा।

सबने जयन्ती की बात का समर्थन किया। जयन्ती ने उसी समय हार निकाल कर देदिया। पांचकौड़ी उसे लेकर सुनार के यहां गया।

बारहवां परिच्छेद ।
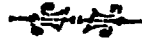
कल प्रातःकाल साढ़े आठ बजे पांचकौड़ी मुजफ्फरपुर जायगा ।

दूसरे दिन आठ बजते बजते जयन्तीने भोजन प्रस्तुत कर दिया । पांचकौड़ी स्नान कर आया परन्तु भोजन करने नहीं बैठता । उसकी आंखें चारोंओर घूम घूम कर शचीश का अनुसंधान कर रही हैं । प्राणप्रिय शचीश के बिना वह कैसे भोजन करे ? विशेषतः ऐसे समय में जब कि वह उसे छोड़ विदेश जाता है । हमारे जान तक शचीश का मनोहर मुख देखने को न मिले । कलसे वह शचीश को गोद नहीं लेने पाया । अब इस समय क्या वह शचीश को गोद लिये बिना रह सकता है ?

जयन्ती ने कहा—गाड़ीका समय आगया, भोजन करलो ।

पांचकौड़ी ने शचीश को इधर उधर ढूंढा परन्तु वह कहीं न मिला अंत को विवश होकर उदास मन से भोजन करने बैठा ।

उसी समय बड़ीबहू जो शचीश को लेकर कहीं गई हुई थी, लौटकर घर आई । शचीश, पांचकौड़ी को भोजन करते देख, चिल्लाकर बोला—'मैं छोटे काका के संग जाऊँगा" ।

बड़ीबहू उसे लिये अपने कमरे की ओर जाने लगी । यह देख शचीश मचल कर गोद से कूदा पड़ता था । परन्तु उसकी माता ने उसे न छोड़ा ।

शचीशका प्रथम शब्द सुनते ही पांचकौड़ी ने घूमकर उसकी ओर देखा। उसको आशा थी कि शचीश माता को परास्त करके चला आवेगा। परन्तु जब उसने अपनी आशा फलीभूत होते न देखी तब उसने, बड़ीबहू को अत्यन्त करुणा दृष्टि से देखकर कहा—

बड़ीबहू! शचीश को छोड़ दो, उसके बिना मुझसे खाया नहीं जायगा।

इसका उत्तर बड़ी बहू ने कुछ न दिया और शचीश को पीटती हुई अपने कमरे में लेगई।

पांचकौड़ी अत्यन्त दुखित हुआ और उसने बड़े उदास भाव से जयन्ती की ओर देखा।

जयन्ती पांचकौड़ी की दशा देख व्यथित होकर बोली—क्या करूं पञ्चू! बड़ी बहू की देह में मनुष्य का रक्त नहीं है। भोजन करके जो काम करनेजाते हो वह कर आओ फिर आकर शचीश को खिलाना।

पांचकौड़ी ने कुछ उत्तर न दिया। किसी न किसी प्रकार भोजन करके वस्त्रादि पहने और माता तथा बहुओं को प्रणाम कर के चलने को उद्यतहुआ। चलते समय उसने कई बेर बड़ी बहू के कमरे की ओर इस आशा से देखा कि शचीश को एक बेरदेख ले, परन्तु शचीश की माता ने उसे कमरे से बाहर नहीं निकलने दिया।

गाड़ी जाने का समय निकट आगया था। पांचकौड़ी घर के बाहर हुआ। राहमें वह बेर बेर पीछे फिर कर देखता था। उस के कानों में ये शब्द सुनाई पड़तेसे प्रतीत होते थे

कि "छोटे काका मैं चलूंगा" और मानो आचीश होकर यह कहता हुआ उसके पीछे आरहा है। परन्तु पीछे फिरकर देखने पर उसे कुछ भी न दिखाई पड़ता, केवल देवदार के वृक्ष वायु से हिलकर शां शां शब्द करते सुनाई पड़ते। गाड़ी स्टेशन पर आगई थी। पांचकौड़ी टिकट लेकर गाड़ी में बैठ गया। थोड़ी देर बाद ट्रेन ने भीषण शब्द करके स्टेशन छोड़ दिया और पश्चिम की ओर चली। पांचकौड़ी की आंखों से अश्रुधारा बहने लगी।

तृतीय खण्ड

पहिला परिच्छेद ।

रघुनाथपूर एक छोटा गांव है । सन्ध्या होगई है । गांव के नाना प्रकार के वृक्ष-वेष्टित घर अन्धकार में डूबे जा रहे हैं । पश्चिम की ओर आकाश में शुक्र तारा उदय होकर अपनी टिमटमाती हुई ज्योति से उस अन्धकार के दूर करने का व्यर्थ प्रयत्न कर रहा है ।

ऐसे ही समय एक टूटा छाता बग़ल में दाबे दक्षिण हाथ में जूतों का जोड़ा लिये, क्षितीशचन्द्र ने गांव में प्रवेश किया ।

उनका मुख सूखा तथा मलीन हो रहा था । देह धूल में भरी हुई थी । रघुनाथपूर में क्षितीशचन्द्र की ससुराल है । गांव के बीच में कृष्णदास घोष का मकान है । स्त्री, दो पुत्र और तीन कन्यायें छोड़कर कृष्णदास बहुत दिन हुए परलोक सिधारे । कृष्णदास की छोटी कन्या क्षितीशचन्द्र को विवाही गई थी ।

गांव में प्रवेश करते ही एक परिचित कृषक से क्षितीशचन्द्र का साक्षात हुआ । वह अपने बैल चराये गांव को लौटा जा रहा था । क्षितीशचन्द्र को देखते ही वह प्रसन्न होकर बोला—ओहो जमाई बाबू ! कहो कहां से आते हो, घर में सब कुशल है ?

क्षितीशचन्द्र लम्बी सांस छोड़कर बोले—मैं घर से नहीं आया। घर छोड़े दो महीने हुए, बहुतसे स्थान घूमकर आयाहूं। कहिए घर में सब कुशल है ?

कृपक—हां, सब कुशल है, केवल छोटी बिट्टी कुछ बीमार है।

इस कृपक का घर क्षितीश की ससुराल के पास ही था। इस कारण वह क्षितीश के ससुर को दादा और उनकी कन्याओं को बिट्टी कहा करता था। छोटी बिट्टी का अर्थ क्षितीशचन्द्र की स्त्री था।

क्षितीश का हृदय कांप उठा. कहने लगे—क्या बीमारी है ?

कृपक—ज्वर। अब सुना है कि कुछ बढ़गया है।

क्षितीश—कितने दिन हुए ?

कृपक—चौदह पन्द्रह दिन हुए। मानपूर का डाक्टर दवा देता है।

क्षितीश—ज्वर अधिक तो नहीं है ?

कृपक – आज दोपहर को सुना था कि कुछ बढ़गया है। परन्तु कोई चिन्ता नहीं कम होजावेगा।

क्षितीशचन्द्र के प्राण सूख गये।

घर से निकल कर दो महीने तक न जाने कहां कहां घूमे, कितने लोगों की खुशामद की परन्तु एक सामान्य नौकरी भी न मिली। दस रुपये महीने पर भी किसी ने नौकर न रक्खा।

अब चारो ओर से निराश होकर ससुराल लौट रहे थे। आशा थी कि वहां पहुँच कर कुछ शान्ति मिलेगी। परन्तु

यहां राह में जो कुछ सुना उस से उन्हें ज्ञात होगया कि उनका जीवन केवल यातना ही भोगने के लिए हैं। संसार में सुख तथा शान्ति उनके भाग्य में नहीं।

मोहांध युवक! इस अशान्ति की विकट अग्नि में तुम स्वयं फांद पड़े। भाई भाई मिलकर यदि अपनी अपनी स्त्रियों को अच्छी शिक्षा देते और एक जगह रहने की चेष्टा करते तो आज इस यातना में पड़कर मारे मारे न घूमते।

क्षितीशचन्द्रने ससुराल के द्वार पर पहुँच कर अपने बड़े साले हरचरण को पुकारा।

हरचरण घर में नहीं थे। अन्दर से क्षितीश की मझली साली ने पूछा—कौन है? दादा घरमें नहीं हैं, मानपूर डाक्टर को बुलाने गये हैं।

मैं हूं क्षितीश—यह कहकर द्वार पर बैठ गये।

क्षितीश की साली विराज मोहनी प्रसन्न होकर बोली कौन, राय महाशय? आप आगये अच्छा हुआ, शिबू बड़ी बीमार है।

क्षितीश—हां आगये, न आने से यह यातना-भोग जो बाकी रह जाता। विराजमोहनी ने द्वार खोल, क्षितीश के बैठने के लिए एक आसन लाकर बिछा दिया और अपनी छोटी भतीजी से एक लोटा जल लाने के लिए कहा।

क्षितीश ने पूछा—मां कहां हैं?

विराज—शिबू के पास हैं।

क्षितीश—रोग क्या कठिन है?

विराज—हां, आज बहुत बढ़ गया है, आंखें लाल होगई हैं, बड़ी बक रही है। इच्छ चाचा ने नाड़ी देखी थी, बोले, अवस्था बुरी है। रात को ज्वर कम होजायगा, उसी समय डर है। यही सुन दादा डाक्टर बुलाने गये हैं।

क्षितीशचन्द्र मनही मन सोचने लगे कि—मुझे समस्त कष्टों से छुड़ाने के लिए शिवू स्वर्ग जाती है। जिसके पास एक पैसा तक नहीं, जो समस्त संसार में चार पैसे की नौकरी न ढूंढ़ सका उसके लिए यह मृत्यु हितकर है। क्षितीश की आंखें जल-पूर्ण होगईं। विराज मोहनी की दृष्टि बचाकर कपड़े से आंसू पोंछे और विराजमोहनी से बोले—चल, एक बेर देख आवें। विराजमोहनी क्षितीश को साथ लेकर गई।

एक कमरे में शय्या पर पड़ी शिवमोहनी छटपटा रही थी। साथ ही साथ कुछ अंड बंड बकती भी जाती थी। सिरहाने मिट्टी का दीपक जल रहा था। पास शिवमोहनी की माता बैठी हुई थी। विराजमोहनी ने कहा—मां राय महाशय आये हैं।

मां ने पीछे फिरकर देखा, और घूंघट को किंचित आगे खींचकर रोने लगी। रोते रोते बोली—मेरी बिट्टी एक दिन भी सुखी न हुई। ऐसे जमाई के हाथ में दी थी कि एक चांदी का छल्ला तक पास नहीं। ऊपर से सास, जिठानियों ने मेरी बिट्टी को जला जला कर यह हाल कर दिया। हाय! अभिमानिनी ने अभिमान ही में जान दे दी।

तन्नू की माता बड़ी पक्की गृहिणी है। वह बोली—ले बहू, जमाई तो न जाने किस देश से दौड़ा आया, अभी बिचारे

का पसीना भी नहीं सूखा और तू कहती है कि ऐसे जमाई के हाथ में दी थी कि उसने गहना नहीं दिया। (क्षितीश से) बैठो बेटा, बैठो. विराम हुई है अच्छी हो जावेगी।

क्षितीशचन्द्र ने इन बातों पर कान न दिया। वह नाड़ी देखना जानते थे अतएव रोगी के पास जाकर नाड़ी देखी। देखकर बोले—नहीं आज तो प्राणों का भय नहीं, नाड़ी की अवस्था अच्छी है, सुचिकित्सा होने से बचने की आशा है। सिर में रक्त चढ़ गया है इसी कारण बक रही है।

तन्नू की मां बोली—यह बात मैं आज तीन चार दिन से कह रही हूं। मानपूर का नाई बड़ी अच्छी दवा करना जानता है ना, जो इतना बड़ा रोग हटावेगा। चतुरपूर के देवू डाक्टरकी दवा होती तो अब तक न जाने कबकी अच्छी होगई होती।

शिवमोहनी की मां मुंह चढ़ाकर बोली—बहिन, सारी रुपये की माया है। हरी हमारा इतने रुपये कहां से लावे? काली थोड़ा लेकर दवा देदेता है इसी से उसे दिखाया। अब आये तो हैं, आज यदि बच जावे तो कल देवू डाक्टर को ले आवें।

तन्नूकी मां ने कहा—ले ही आवेंगे। जाओ बेटा, जाकर हाथ मुंह धोओ। कुछ डर नहीं, आदमी विराम भी होता है, अच्छा भी होजाता है।

दूसरा परिच्छेद ।

त को लगभग दसबजे हरचरण काली डाक्टर को लेकर लौटे। क्षितीशचन्द्र को देखकर बोले—कहो, कहां से? तुम तो बहरामपूर की ओर गये थे?

विषाद-क्लिष्ट स्वरसे क्षितीशचन्द्रने कहा—केवल बहरामपूर? कलकत्ता, वर्द्धमान, कृष्णनगर, राणाघाट, मैमनसिंह, दिनाजपूर, आसाम, कहां नहीं गये?

हर०—किस लिए गये थे?

क्षि०—नौकरी के लिए।

हर०—मिली?

क्षि०—नहीं।

हरचरण ने क्षितीशचन्द्र के साथ काली डाक्टर का परिचय करादिया। डाक्टर ने पूंछा—कहिए राय महाशय! रोगी को देखा?

क्षि०—हां देखा है। परन्तु मैं तो ऐसा विशेष कुछ समझता नहीं, आप देखिए।

काली डाक्टर जाति के नाई थे। पाठशाला में केवल दो तीन पुस्तकें पढ़ीथीं। इसके पश्चात् एकबेर देश में मेलेरिया ज्वर होने से कुइनाईन की पुड़िया देकर कई रोगी आरोग्य किये और डाक्टर बन बैठे। परन्तु रोग तथा नाड़ी ज्ञान में बिल्कुल कोरेथे, यहां तक कि बहुत सी औषधियों के

नामभी स्पष्टता-पूर्वक उच्चारण नहीं कर सकते थे। काली डाक्टर हरचरणके साथ, बड़े गौरव सहित, रोगी के कमरे में गये और हाथ, मुख तथा आंखे देखकर लौट आये।

अपराधी की तरह क्षितीशचन्द्र भी उनके पीछे पीछे गये थे। उन्हों ने पूछा—क्या देखा ?

गम्भीर होकर डाक्टर साहब बोले—"सन्निपात के लक्षण हैं। क्षितीश को ऐसे दुखके समय भी हंसी आई परन्तु हंसी को दबाकर बोले—नाड़ी कैसी है ?

डाक्टर—जैसी सन्निपात में होती है।

क्षितीश—बचने की आशा है या नहीं ?

डाक्टर—मैं कुछ ब्रह्मा तो हूं नहीं जो यह बता सकूं।

क्षितीश—कोई कोई तो कहते हैं कि ज्वर उतरते समय नाड़ी छूट जायगी, आप भी क्या यही समझते हैं ?

डाक्टर—यह कोई साला नहीं बता सकता। हमने बड़े बड़े डाक्टर देखे हैं परन्तु ऐसी क्षमता किसी में नहीं देखी।

क्षितीश—यदि ऐसा होवे तो क्या करना होगा। आप अप्रसन्न न हूजिएगा। चिकित्सक रोगी के आत्मियों से ये सब बातें बता देते हैं क्योंकि वे लोग स्वयं ये बातें नहीं जान सकते।

डाक्टर—नहीं मैं अप्रसन्न क्यों होने लगा। आप हमारी परीक्षा करते हैं तो कीजिए। कितने ही ऐसा करते हैं।

क्षितीश—यदि नाड़ी छूटने का भय हुआ तो क्या दवा दीजिएगा।

डाक्टर—क्यों—ब्रांडी नम्बर एक, कोडम-मकोड़ ईस्पीट कलोरो फारम (स्प्रिट क्लोरो फार्म की दुर्दशा)

क्षितीशचन्द्र प्रायः दानिश की डाक्टरी पुस्तकें देखा करते थे। काली बाबू यद्यपि औषधियों के नाम पूर्णतयः उच्चारण नहीं कर सके तथापि उन्होंने जो बताई उन से क्षितीशचन्द्र ने जान लिया कि इस अवस्था में ये औषधियां कुछ विशेष बुरी प्रमाणित न होंगी। उन्हों ने कहा—अच्छा जो औषधियां हों तो दीजिए।

डाक्टर साहब ने तीन चार छोटी छोटी शीशियां निकाल कर एक गिलास जल मंगवाया। उन शीशियों में से किसी से दो किसी से तीन बूंद पानी में डालीं और बोले—यह पानी शीशी में भर कर रखलो और तीन तीन घंटे पश्चात छः बेर में पिला दो।

औषधियों की अवस्था देखकर क्षितीशचन्द्र का मन बड़ा विचलित हुआ। वह सोचने लगे कि केवल कुचिकित्सा के कारण ही रोग बढ़ गया है। परन्तु कुछ कहने का साहस नहीं हुआ।

काली डाक्टर अपना कार्य समाप्त करके एक आदमी तथा एक लेन्टर्न लेकर चले गये।

क्षितीश हाथ मुंह धोकर एक बेर फिर रोगी को देखने गये। ज्वर कम होगया था किन्तु नाड़ी की अवस्था पूर्ववत ही थी, इस कारण उनको आशा हुई कि ज्वर के साथ ही प्राण जाने का भय नहीं। यथा समय भोजन प्रस्तुत हुआ। हरचरण के साथ ही क्षितीश भी भोजन करने बैठे। भोजन

में उनकी कुछ भी रुचि नहीं थी। किन्तु दिन भर भोजन नहीं मिला था इसलिए खाने बैठे।

भोजन कर चुकने पर एक बेर फिर रोगी को देखा। ज्वर और भी कम होगया था, नाड़ी की अवस्था अच्छी थी।

विराज मोहनी ने कहा—राय महाशय तुम्हारे बेर बेर आने से मां नहीं बैठने पाती। तुम देवी मन्दिर में जाकर सो रहो, काम पड़ने पर मैं बुलालूंगी।

बिना कुछ उत्तर दिये क्षितीशचन्द्र बाहर अपने सोने के स्थान में चले गये। उनके सोने का स्थान एक कच्ची बेड़ा कोठरी थी। कोठरी में एक धुएंदार मिट्टी के तेल का दीपक जल रहा था। बीच में एक बिछौना था जिसपर एक मैला तकिया रक्खा हुआ था। पास ही एक और बिछौने पर घर का कृषक रतिकान्त लेटा हुआ था।

क्षितीशचन्द्र ने समझ लिया कि शून्य शय्या उन्हीं की अपेक्षा कर रही है। अतएव चुपचाप उसी पर लेट रहे।

रतिकान्त करवट बदलकर बोला—आप तमाखू पियतहौ?

लम्बीसांस लेकर क्षितीश बोले—यहां हुका है?

रतिकान्त ने उठकर एक कोने से हुका उठाया और बोला—है, मालिक येही हुका मां पियतहैं। इसके पश्चात हुक्के पर चिलम रखकर क्षितीशचन्द्र को दी। वह थोड़ी देर तक पीते रहा। जब पी चुके तो हुक्का अलग रखकर सोने के लिए लेटे।

रतिकान्त ने बात चीत आरम्भ की। उसने पूछा—आप अबही कौनौ नौकरी चाकरी नाहीं करत हौ का?

क्षितीश—नहीं, परन्तु चेष्टा में हैं।

रतिकान्त—जब लगे आप नौकरी न करिहौ तब लगे कुछौ ठीक ठाक न होई। ऊ दिना अम्मा कहती रहैं।

क्षितीश—क्या कहती थीं?

रतिकान्त—छोटी बिट्टी के लगे गहना गुरिया नाहीं हवै। गरीब घरै बिटिया दीन्हें ते रोवत रोवत यौ हाल होइ गवा।

क्षितीश ने इस बात का कुछ उत्तर न दिया।

रतिकान्त ने समझा कि ये बातें जमाई बाबू को आनन्द दायक नहीं मालूम देतीं। तब उसने दूसरी बात छेड़ी, बोला—"बिट्टी का बड़ा बुखार हवै। भला कालीसार का करी? हमरी जानतौ बिट्टी के ऊपर कुछौ फेर होइगा है यहीते अंडबंड बक्कत हैं। एक साधू हवै उइ ई मामला मां बड़े चौकड़ हवैं। बाटते एक बड़ा पानी याकै सांस मां लावै का पड़त। है बस उइ पढ़ देत हैं। उहिका पियाए ते याकै दिन मा ठीक होइ जात है"।

क्षितीशचन्द्र ने इस बात का भी कोई उत्तर न दिया। रतिकान्त ने, यह समझ कर कि जमाई बाबू को नींद आरही हैं, दूसरी ओर करवट बदली और थोड़ी ही देर में नाक बजा कर समस्त देवी मन्दिर को प्रतिध्वनित करने लगा।

परन्तु क्षितीशचन्द्र की आंखों में नींद कहां? चिन्तादग्ध प्राण लेकर बड़ी देर तक शय्या पर पड़े रहे। इसके पश्चात देवी मन्दिर के द्वार पर जाकर खड़े हुए। कुछ देर तक वहां खड़े रह कर फिर लौट आये और शय्या पर पड़ रहे। फिर उठे और कान लगाकर सुनने लगे कि घर के अन्दर कुछ

असामान्य शब्द तो नहीं होते परन्तु वहां बिलकुल सन्नाटा पाकर फिर लेट रहे। फिर उठकर द्वार पर आये। उस दिन चांदनी रात थी। प्रकृत सर्व-सौन्दर्य-शालिनी होते हुए भी चितीश की दृष्टि में मरु भूमि तुल्य थी। चारों ओर सन्नाटा छायाहुआथा। शीतल वायु बहरहीथी। कभी कभी किसी दूर के पक्षी का चीत्कार शब्द उस वायु में मिलकर आजाता था। क्षितीश के लिए आज की चांदनी रात बड़ी विषादमयी थी।

सहसा उन्होंने मझली बहू की चीत्कार सुनी। दौड़कर घर के अन्दर जाने की चेष्टा करने लगे। परन्तु द्वार बन्द होने के कारण उनकी चेष्टा निष्फल हुई। अन्त में चिल्लाकर अपने सालेको पुकारा। कई बेर पुकारने पर वहचौंके। क्षितीश ने अत्यन्त विनीत भावसे कहा—तुम्हारी बहिन बहुत चिल्ला रही है। जान पड़ताहै बक रहीहै, मैं एक बेर देखना चाहता हूं।

उन्होंने शय्या पर लेटे ही लेटे उत्तर दिया—अजी रोज़ योंही चिल्लाया करती है, आप जाकर सोइए, मां तो वहां हई हैं, कुछ डर की बात नहीं। क्षितीशचन्द्र का हृदय बड़ा व्यथित हुआ। उन्होंने एक बेर फिर कहा—ज़रा द्वार खुलवा दीजिए।

"कोइ आवश्यकता नहीं" कहकर साले साहब ने करवट बदली और फिर निद्रा देवी की गोद में क्रीड़ा करने लगे। क्षितीश अपना व्यथित हृदय थामे लौट आकर शय्या पर लेट रहे।

तीसरा परिच्छेद ।

उस रात्रि में क्षितीश चन्द्र को थोड़ी देर के लिए निद्रा आगई थी । प्रातःकाल सब से पहले उनकी आंख खुली । क्षितीशचन्द्र ने उठकर रतिकान्त को जगाया । आंखे मलता हुआ उठकर रतिकान्त बोला—तमाखू पीहौ का ?

क्षितीश—नहीं पियेंगे, एक बात कहने के लिए तुम्हें जगाया है । हम चतुरपूर जाते हैं यदि लौटने में देर हो और हरी बाबू पूछें तो कहदेना कि देबू डाक्टर को बुलाने गये हैं ।

रतिकान्त—अच्छा कह देबे, अपन आदमी बिना का कोऊ लेवा बरदास कै सकत है । बाबू, देबू डांकदर बड़ा हुसियार हैं, मरा मनई जियावत है ।

क्षितीश के पास उस समय केवल एक चादर थी । छाता, जूते आदि घरके भीतर ही रखदिये थे । क्षितीश ने सोचाकि इन वस्तुओं के लिए सोते हुओं का जगाना युक्तिसंगत नहीं । इसके अतिरिक्त रघुनाथपूरसे देवेन्द्र डाक्टर का घर दो कोस था, अतएव इस भय से, कि कहीं देर होजाने से न मिलें, क्षितीश नंगे पैरों ही चल दिये ।

उस समय आकाश में केवल ऊषा का प्रकाश हुआ था गांव से बाहर निकल, कुमारी नदी के किनारे किनारे चतुरपूर की ओर चले ।

वह समय क्या ही मनोहर था। जेठ का महीना, मन्द मन्द शीतल वायु नदी तट पर लगे हुए पुष्पादि के वृक्षों से अठखेलिया कर रही थी। नाना प्रकार के पक्षी अपनी सुमिष्ट बोलियों से सुनने वालों को आनन्दित कर रहे थे।

परन्तु चितीश का हृदय उस समय भी विषाद पूर्ण था।

सूर्य उदय होते होते चितीश डाक्टर के यहां पहुंच गये। डाक्टर साहब घर ही में थे परन्तु अभी डाक्टरख़ाने में नहीं आये थे। क्षितीश बाहर एक बेंच पर बैठ गये। थोड़ी ही देर में लोग आने लगे। कोई गोद में लड़का लिये चला आता है कोई किसी रोगी को टिकाये लिये आता है कोई रोगी स्वयं ही लकड़ी के सहारे चला आता है। इसी प्रकार बहुत से लोग जमा होगये।

नियत समय पर डाक्टर साहब आये। नौकर ने हुक्का भर के दिया। देवेन्द्र बाबू हुक्का पीने लगे, साथ ही साथ रोगियों को भी देखते जाते थे।

रोगियों को देख तथा दवा आदि देकर देवू बाबू बाहर जाने के लिए तैयार हुए। उसी समय क्षितीश उनके सामने जाकर अति विनीत भावसे बोले— मैं बड़ी विपद में पड़कर आप के पास आया हूं। इस समय आप की दया के अतिरिक्त मेरे लिए दूसरा उपाय नहीं।

डाक्टर—क्या ? कहो।

चितीश—रघुनाथपूर में मेरी स्त्री बड़ी बीमार है।

डाक्टर—क्या बीमारी है ?

क्षितीश—ज्वर—चौबीस घंटे में एक बेर उतर आता है। सिर में रक्त चढ़ जाने से बकने लगती है।

डाक्टर—किसकी दवा होती है?

क्षितीश—उस दवा के होने से न होना ही अच्छा है। काली डाक्टर की दवा होती है।

डाक्टर—(मुसकुराकर) अच्छा फिर?

क्षितीश—अब सम्पूर्ण दया का भिखारी होकर आपके द्वार पर आया हूं।

डाक्टर—मैं आपकी बात का अर्थ नहीं समझा।

क्षितीश—मैं यहां अपनी ससुराल में हूं। मैं इस समय अत्यन्त दरिद्र हूं। स्त्री के शरीर पर कोई गहना भी नहीं जो उसे बेचकर चिकित्सा करूं, और यदि चिकित्सा न होगी तो उसके बचने की कोई आशा नहीं। अतएव आप दीन हीन पर दया करके रघुनाथपूर चलकर उसे देख लीजिए। और केवल आजही नहीं वरन जबतक रोग न हटे। औषधि भी आपही को देना होगी। मैं कल रुपये का प्रबन्ध करूंगा परन्तु कहां से करूंगा यह अभी स्थिर नहीं। जो मुझ दरिद्र से हो सकेगा वह मैं अवश्य दूंगा। दरिद्र को जीवन तथा शांति प्रदान करने से ईश्वर आपका भला करेगा।

डाक्टर—(कुछ देर सोचकर) रघुनाथपूर में आप का श्वसुर कौन है?

क्षितीश—श्वसुर जीवित नहीं, साला है उसका नाम हरचरण घोष है।

डाक्टर—उनकी अवस्था तो अच्छी है। यदि उनकी भगिनी बीमार है तो क्या वह डाक्टर का खर्च न देंगे?

क्षितीश—डाक्टर बाबू, यदि मेरी अवस्था अच्छी होती, मेरे पास रुपया होता तो मेरा साला मेरी स्त्री की चिकित्सा करता। गरीब के लिए कोई एक कौड़ी भी नहीं खर्च करता।

डाक्टर—अच्छा हम चलेंगे, दवा भी देंगे। आप क्रमशः रुपये देते जाइएगा।

क्षितीश की आँखों से आनन्दाश्रु बहने लगे। गद् गद् कंठ से बोले—आप की जय हो, भगवान आप का मंगल करें।

डाक्टर—हम आपका खर्च बचाने के लिए साइकिल पर चलेंगे परन्तु दवा का बक्स कौन ले चलेगा?

क्षितीश—मैं ले चलूंगा।

डाक्टर—(दांतों तले जीभ दबाकर) आप भले आदिमी········ ··

क्षितीश—डाक्टर बाबू, जिसके पास पैसा नहीं वह भला आदमी कहां? न लेजाने से स्त्री मर जायगी।

डाक्टर—अच्छा एक काम कीजिए, आज एक आदमी ले चलिए उसको चार आने पैसे देदीजिएगा। कलसे आप शीशी लेकर दवा लेआया कीजिएगा।

क्षितीश के पास आठ आने पैसे थे, अतएव उन्हों ने डाक्टर के प्रस्ताव को स्वीकार किया।

डाक्टर—तो आप आदमी को लेकर चलिए, पीछे से हम भी आते हैं।

आदमी के सर पर दवा का बक्स लदवा कर क्षितीश चन्द्र उत्साहित होकर चले। चलते समय चौदह पैसे का एक बेदाना सेब मोल ले लिया।

चौथा परिच्छेद।

देवेन्द्र डाक्टर ने आकर रोगी को देखा। देख कर बोले—"कोई डर की बात नहीं है, सुचिकित्सा होने से रोग न बढ़ता। काली की चिकित्सा ही से रोगी ने इतना कष्ट भोगा"।

डाक्टर दवा देकर चले गये। तन्नू की मां वहां उपस्थित थी। डाक्टर के चले जाने पर बोली—आहा! देखो क्षितीश के पास पैसा नहीं फिर भी डाक्टर बुलालाया। हज़ार हो, फिर स्वामी स्वामी ही है।

क्षितीश की सास को यह बात बड़ी बुरी लगी। मुंह चढ़ाकर बोली—क्या करें बहिन, जहां तक अपने से हो सका किया अब उनकी चीज़ है अपना दिखावें भलावें।

तन्नू की मां—हां हां, दिखावेगा, देखो एक बेदाना भी ले आया।

सास—मां भाई किसके करते हैं? पर क्या करूं, जैसे भाग थे वैसा जमाई मिला।

तन्नू की मां—तो बहू, जमाई क्या कुछ बुरा थोड़ा ही है। पर क्या करे सबके सदा एक से दिन नहीं रहते।

विराज—आजही लौट आओगे ?

क्षितीश—हां, सन्ध्या तक अवश्य लौट आऊंगा। दवा नियमपूर्वक खिलाती रहना।

यह कह कर क्षितीशचन्द्र जूता पहन और छाता लेकर बाहर हुए। जेठ मास की कड़कड़ाती हुई धूपमें क्षितीशचन्द्र ने तीन कोस तय किये।

जिस समय पसीने में भीगे हुए मित्र के घर पहुंचे उस समय मित्र महाशय आहारादि शेष करके शयन कर चुके थे। क्षितीश के आने की सूचना पाकर उठे और उनका स्वागत किया।

क्षितीशचन्द्र पसीना पोछते हुए बोले—इस समय मेरे ऊपर बड़ी विपत है, मेरी स्त्री बड़ी बीमार है।

मित्र—क्या बीमारी है ?

क्षितीश—ज्वर बिगड़ गया है।

मित्र—कौन देखता है ?

क्षितीश—देवेन्द्र बाबू।

मित्र—अच्छा डाक्टर है। खैर—अब तुम स्नान करो, खाना वाना खाओ।

क्षितीशचन्द्र ने थोड़ी देर विश्राम किया इसके पश्चात् स्नान करके भोजन किया।

उनके मित्र उन्हें एक शीतल कमरे में ले गये और एक बिछौने पर स्वयं लेटकर क्षितीश से बोले—तुम भी थोड़ी देर सो रहो।

क्षितीशचन्द्र—सुनो भाई जिसके पास एक भी पैसा नहीं, जो आश्रय हीन, आत्मीय स्वजन द्वारा ताड़ित, जिसकी स्त्री मरण शय्या पर, वह क्या कभी सो भी सकता है। बड़ा कष्ट पाकर तुम्हारे पास आया हूं।

मित्र- भाइयों से अलग होकर तुमने कोई बुद्धिमानी का काम नहीं किया। यह बात मैं तुमसे पहले भी कह चुका हूं। अब जो स्त्री अच्छी होजाय तो उसे लेकर घर चले जाना।

क्षितीश—ख़ैर, यह तो पीछे की बात है। इस समय रुपये उधार न देने से मेरा सर्वनाश हो जायगा।

मित्र—कोई हानि नहीं थी। परन्तु इस समय मेरे भी पास एक पैसा तक नहीं। जो कुछ था आज प्रातःकाल एक आदमी को उधार दे दिया।

क्षितीश—दुहाई तुम्हारी—इस विपद से मुझे बचाओ। मैं हैंड नोट लिख दूंगा। तुम जानते हो, कि मेरे हिस्से का मकान है, भूमि है। बेच लेने से तुम्हारे पचास रुपये सूद सहित निकल आवेंगे, यह निश्चय है। अतएव इस समय मुझे ख़ाली न फेरो। मैं बड़ी आशा करके तुम्हारे पास दौड़ा आया हूं।

मित्र—मेरे पास तो रुपये हैं नहीं, परन्तु बहिन के पास दस बीस रुपये हों तो कह नहीं सकता।

क्षितीश—किसी के पास हों, मुझे लाकर दो। और दस बीस से काम नहीं चलेगा, कमसे कम चालीस होना चाहिए।

मित्र—अच्छा अभी तो सो रहो फिर देखा जावेगा।

क्षितीश—मुझे नींद नहीं आवेगी। मेरे लिए आज

तुम भी कष्ट सहनकर लो, सोओ मत, घर में जाकर ठीक करआओ।

मित्र—जहां तक मैं अनुमान करता हूं वहिन के पास रुपये होंगे। इस धूपमें तो मैंजाऊंगा नहीं फिर देखा जावेगा, अभी सो रहो। यह कर मित्र महाशय ने एक तकिया उठा लिया। तकिये को सिर के नीचे रख, करवट बदल कर लेट रहे और थोड़ी देर में सो गये।

परन्तु क्षितीशचन्द्र को नींद नहीं आई। वह शय्या पर पड़े इधर उधर करवटें बदलते रहे। दो एक बेर जी में आया एक मित्र को जगादें परन्तु साहस न हुआ। यदि विपद् में पड़कर आज क्षितीश रुपये मांगने न आये होते तो जी में आते ही मित्र को जगा देते और यदि चाहते तो कई दिनों तक सोने भी न देते परन्तु आज उनका यह साहस न हुआ। उन को डर था कि कहीं मित्र विरक्त होकर रुपये देने से इन्कार करदे—हायरी दरिद्रता! निर्धनता, दरिद्रता वह दशाहै जिसने बड़े बड़े विद्वानों तथा बुद्धिमानों को नीचा दिखाया। इसके फेर में पड़कर बड़े बड़े अहंकारी तिनके चुगे लगे।

खूब सो चुकने के बाद मित्र जागे। उठकर क्षितीश से पूछा—क्या तुम नहीं सोये?

क्षितीश—अजी मुझे नींद कहां?

मित्र—(हसकर) यार तुम भी पागल ही रहे। अरे भाई भाग्यवान की स्त्री मरे और अभागे का घोड़ा। तुम इतनी चिन्ता क्यों करतेहो, यदि मरजाय तो दूसरा विवाह कर लेना। आज कल तो स्त्रियों का बाज़ार बड़ा सस्ता है।

क्षितीश—हमारे ऐसे दरिद्र की स्त्री का मरनाहीं भला है। परन्तु दुख केवल इतनाहै कि एक मनुष्य केवल चिकित्सा के अभाव के कारण मरा जाता है।

मित्र—जिनकी चिकित्सा नहीं होती क्या वे सब मरही जाते हैं और देवेन बाबू की चिकित्सा में तो ऐसा कुछ विशेष खर्च भी नहीं। उनकी फीस केवल दो ही रुपये तो हैं।

क्षितीश—भाई! रोग है कठिन, न जाने कब तक दूर हो। इसके अतिरिक्त दवा के दाम हैं, पथ्य है।

मित्र—पथ्य के लिए भी क्या तुम्हीं को देना होगा, क्यों, अपने भाई के घर तो हैं वह नहीं देंगे?

क्षितीश—न भी दे सकते हैं—दरिद्र की स्त्री के लिए कौन करता है।

मित्र—तो वहां रखते क्यों हो? बुरा न मानना, तुम स्त्री के बड़े आज्ञाकारी हो। जो वह कहती है वही करते हो, फिर कष्ट न हो तो क्या हो। उसके कहने से यदि अलग न होते, घर ही में रहते तो इतना कष्ट क्यों सहना पड़ता।

क्षितीश—यार वहां की अवस्था भी अच्छी नहीं। "फिर भी अपना घर तो है" कहकर मित्र उठ गये। क्षितीश-चन्द्र उसी स्थान पर बैठे आकाश पाताल की खबर लाने लगे

बड़ी देर के बाद मित्र लौटे। उनके आने की आहट सुन कर क्षितीशचन्द्र का हृदय धड़कने लगा कि कहीं मित्र महाशय आकर कोरा जवाब न दे दें। परन्तु, उन्होंने ऐसा नहीं किया। हैंड नोट लिखाकर देने की बात ने उनको सन्तुष्ट कर दिया।

शय्या के ऊपर बैठकर गम्भीर स्वर से मित्र ने कहा:—अपने पास रुपया न रहने से बड़ी विपद में पड़ना होता है। दीदी से बहुत कह सुनकर यह तीस रुपये लाया हूं और यह भी केवल तुम्हारे लिए, नहीं तो मैं ऐसे झगड़ों में कभी नहीं पड़ता। सूद दो पैसे रुपये के हिसाब—

क्षितीश—(बात काटकर) हां, हां दो ही पैसे देंगे।

मित्र—अच्छा एक हैंड नोट लिख दो।

काग़ज़ कलम लेकर क्षितीश ने पूछा—दीदी के नाम से लिखूं ?

मित्र—नहीं मेरे ही नाम से लिखो।

क्षितीश समभ [illegible] अधिक सूद और हैंड नोट लिखाने के लिए मि[illegible] दीदी का नाम लिया है। जो कुछ हो उनको उस [illegible] रुपया मिलगया, यही उन के लिए यथेष्ट था।

हैंड नोट लिखकर क्षितीश ने रुपये गिन लिये।

मित्र—क्या अभी जाओगे ?

क्षितीश—हां, सन्ध्या के पूर्व ही पहुँचना है।

मित्र—अपनी स्त्री की दशा से सूचित करना।

"करूंगा" कहकर क्षितीशचन्द्र विदा हुए।

नन्द ग्राम से रघुनाथपूर जाते हुए बीचही में देवेन्द्र डाक्टर का मकान पड़ता था।

क्षितीशचन्द्र पहले देवेन्द्र बाबू के यहां पहुंचे। डाक्टर साहब उस समय आराम कुर्सी पर पड़े हुका गुड़गुड़ा रहे थे। क्षितीशचन्द्र को देख कर बोले—आइए क्या हाल है

पास की एक कुर्सीपर बैठकर क्षितीशचन्द्र बोले—रोगी को [illegible] मुझे कुछ भी नहीं मालूम, मैं आपके साथ ही वहां से चला [illegible]या था।

डाक्टर—कहां गये थे ?

क्षिती[illegible]—सुबह आप से कहा था कि चेष्टा करके आप को कुछ दूंगा [illegible]स कारण उसी की खोज में गया था। यह कह कर क्षितीश ने दस रुपये निकाले और डाक्टर के सन्मुख मेज़ पर रख दिये।

रुपये देखकर डाक्टर साहब बोले—दस रुपये किस वास्ते? मेरी फ़ीस केवल दो रुपये हैं और दवा का दाम एक रुपया।

क्षितीश—मेरी अव[illegible] नहीं [illegible]चनीय है। रोज नहीं दे सकूंगा जो कुछ मिला आप के पास [illegible] किये देता हूं।

आप रोगी को आरोग्य कीजिए—[illegible] रुप दे सकूंगा यह नहीं कह सकता—परन्तु धोका नहीं दूंगा। जब मिलेगा तभी दे दूंगा।

डाक्टर—आप दो रुपये देकर बाकी लेजाइए प्रयोजन होने पर दीजियेगा।

क्षितीश—आप अपने पास जमा रखिए मेरे पास रहने में बड़ी असुविधा होगी।

डाक्टर ने रुपये लेकर बक्स में रख लिये और बोले—बाज़ार से थोड़े सेब लेते जाना, और दूध सेवन कराना। रोगी को खाने को नहीं दिया गया, इस कारण बड़ा कमज़ोर होगया।

"जो आज्ञा" कहकर क्षितीशचन्द्र चल दिये।

——:o:——

पांचवां परिच्छेद ।

देवेन्द्र डाक्टर ने बड़े यत्न तथा परिश्रम के साथ क्षितीश की स्त्री की चिकित्सा की। पन्द्रह सोलह दिन औषधि सेवन करने से मझली बहू आरोग्य होगई—किन्तु अतिशय दुर्बल। डाक्टर ने कहा कि अब कुछ दिनों बलकारक औषधियों का सेवन कराना उचित है।

लगभग एक मास तक बलकारक औषधियां तथा पौष्टिक खाद्य पदार्थ सेवन कराते रहने से मझली बहू पूर्णतयः स्वस्थ होगई।

असाढ़ मास की रथयात्रा का समय निकट था। गांव के बहुत से मनुष्य जगन्नाथपुरी जायेंगे—क्षितीशचन्द्र की सास भी जायंगी।

विराजमोहनी ने माता के तीर्थ गमनार्थ दस रुपये दिये। सन्ध्या समय क्षितीश को बुलाकर मझलीबहू ने कहा—मां कल सवेरे जगन्नाथ जी जांयगी, दीदी ने दस रुपये दिये हैं, तुम क्या दोगे ?

उस समय क्षितीश के पास केवल पौने दो रुपये थे, शेष सब मझली बहू की चिकित्सा में खर्च होगये थे—अतएव उन्होंने शुष्क मुखसे उत्तर दिया—मेरे पासतो अब कुछहै नहीं

मुख विचकाकर तथा आखें चढ़ाकर मझली बहू बोली—नहीं कहने से कैसे काम चलेगा ? चाहे जैसे हो इस समय कुछ देना ही पड़ेगा।

क्षितीश—देना चाहिए यह मैं जानता हूं। नहीं देने से ल... की बात है, यह भी जानता हूं। परन्तु करूं क्या? जो कुछ ...र लाया था वह सब तुम्हारी बीमारीमें ख़र्च होगया।

...—हे भगवान! इसी मारे तुम बड़े घमंड में हो रहे हो? ...गा कोई ऐसा करता नहीं? जो ख़र्च करने में इतना दुख हु...से किया क्यों? दादा जैसी बनती वैसी, दवा दारू करते। मे...यु होती तो बच जाती। और मेरे ऐसी मागोंफूटी को बच...ही क्यों? जिसके पास पहनने को कपड़ा नहीं, शरीर प...कुछ गहना नहीं, जो मां को तीर्थ के लिए एक पैसा भी नहीं...यदि तुमने मां को कुछ न दि...र्ता उसका मरना ही भला था। ...तो मैं अफ़ीम खालूंगी। मैं ऐसा अपमान कभी न सहूंगी।

क्षितीश—जब हैहीनहीं, तो कहांसे... देखने से भी पूरे दो रुपये नहीं मिलेंगे—पौने दो...रुपके काटकर...है।

मझली—रहने दो अपने रुपये। मेरी मां क्या फ़कीर जो पौने दो रुपये भीख दोगे। तुम्हारे रुपये नहोने से कुछ उनका जाना बंद नहीं होगा।

क्षितीश—मैं ग़रीब आदमी,—दरिद्र, भला मेरी सहायता से उनका क्या उपकार होगा?

मझली—नहीं क्या कुछ होगा?

क्षितीश—जिसके पास पैसा नहीं वह मनुष्य नहीं।

मझली—भला एक रुपया क्या कहके दोगे?

क्षितीश—कहदेंगे और नहीं है—यदि यह भी खर्च हो जाता तो कुछ भी न देसकते।

मझली—एक रुपया देना भी कुछ नहीं देने के बराबरहै।

क्षितीश—यह बात ठीक है परन्तु करें क्या? जब समय आवे तो यह दुख दूर कर देना।

मझली—मेरे फूटे भागों से कभी समय न आवेगा—हे भगवान! मैं मरजाऊं तो अच्छा है।

इसी समय क्षितीशचन्द्र के साले साहब हरचरण बाहर से आये उन्हों ने आते ही पूछा—क्षितीश कहां हैं।

उनकी मांने उत्तर दिया—घर के अन्दर है।

हरचरण ने क्षितीश को पुकारा। उनके बाहर आने पर हरचरण बोले—बैठो एक काम है।

क्षितीश पास बैठ गये। हरचरण ने कहा—अब तुमने क्या करना विचारा है।

क्षितीश के कुछ उत्तर देने के पूर्व ही तन्नू की मां बोल उठी- विचारा क्या है? शिबू अच्छी होगई, अब उसे लेकर अपने घर जांयगे।

हरचरणकी माताने कहा—वहां भी तो दुखहीहै। लड़की का दुख सहते सहते यह हाल हो गया था। इनको भी पेट भर खाने को नहीं मिलता।

हरचरण—मैंने जो कुछ विचारा है वह क्षितीश भी सुने, तुम लोग भी सुनो, यदि सब की राय हो तो, क्षितीश वैसा ही करे।

सब से पहले क्षितीश ने पूछा—क्या ?

हरचरण—रामचरण आढ़तकाकामकरेंगे। इसकारण उन्हें दो आदमियों की आवश्यकता है। क्षितीश की बात कहने पर उन्होंने स्वीकार किया। परन्तु अभी छः रुपये महीना देंगे। कुछ दिनों पश्चात दस रुपये कर देंगे।

तन्नू की मां—भला छः रुपये में दो आदमियों का पेट कैसे चलेगा ? मेरी समझ में तो यह बात ठीक नहीं।

हरचरण—खानापीना तो दोनोंका हमारे यहांहुआ करेगा। मैं अकेला खेत का काम नहीं देख सकता अतएव यह हमारे खेत का काम भी देखेंगे और यहीं खांयगे भी।

तन्नू की मां—वहां भी काम करेगा और तुम्हारा काम भी देखेगा ?

हरचरण—सुविधा होजायगी। रामपुरके बाज़ारमेंआढ़त का काम होगा कि नहीं ? क्षितीश दस बजे खा पीकर जाया करेगा।

तन्नू की मां—आवेगा कब ?

हरचरण—सन्ध्या को।

तन्नू की मां—तो सवेरे से दस बजे तक तुम्हार काम करेगा ?

हरचरण—और क्या।

तन्नू की मां—मेरी समझ में तो यह ठीक नहीं है। ससुराल में रहना, और काम काज करके खाना अच्छा नहीं, लोग क्या कहेंगे ?

हरचरण की माता बोली—तो फिर खांयगे कहां ?

हरचरण—तुम सब सोचलो, वह भी सोचलें, मुझ से जो कुछ होसका वह मैंने किया ।

हरचरण की मां—भगवान तुझे अच्छा रक्खे । तेरे बिना हमें और ठौर कहां है । न जाने कैसे करम किये थे कि मेरी बिट्टी को कुछ भी सुख न मिला ।

क्षितीश—हां, मैं यह काम करूंगा । कब जाना होगा ?

हरचरण—तीन दिन पश्चात ।

इसके बाद हरचरण के छोटे भाई राधाचरण की बात छिड़ी । उसने बारह वर्ष की अवस्था ही में इन्ट्रेन्स पास कर लिया है—उसके बराबर संसार में दूसरा लड़का नहीं है । सब कहते हैं वह हाकिम होगा,—हाकिम होने से उसके लिए एक मुहर्रिर की आवश्यकता होगी । क्षितीश की सास का विचार है कि क्षितीश ही उस पदको सुशोभित करके शांति पूर्वक जीवन व्यतीत करे—ईश्वर राधू को चिरंजीव रक्खे ।

इसके पश्चात जगन्नाथ पुरी जाने की बात छिड़ी । उसका सारांश यहहै कि:—माता की जानेकी इच्छा बिलकुल नहीं थी परन्तु मुहल्ले के पांच लोग जांयगे इस कारण जाना आवश्यक है । न जाने से लोग निन्दा करेंगे, नहीं तो उनके ऐसी रत्नगर्भा को जगन्नाथपुरी जाने की क्या आवश्यकता ? उनके दो पुत्र साक्षात जगन्नाथ बलराम हैं ।

बात चीत करते करते हरचरण को हुक्का पीने की आवश्यकता हुई । वह बोले—आज रति यहां नहीं आया, हुक्का बाहर है ?

हरचरण ने क्षितीशचन्द्र के लिए नौकरी का प्रबन्ध किया था, इसके अतिरिक्त अन्नदान करना भी स्वीकार किया था। ऐसी दशा में उन्हें तमाखू भरकर न देना क्षितीश के लिए बड़ी अकृतज्ञता की बात थी। इस कारण यह कर कि "मैं ही देखता हूं" क्षितीश हुक्के का प्रबन्ध करने के लिए उठ गये।

——:o:——

छठा परिच्छेद।

——:o:——

ठीक आठ बजे गाड़ी मुज़फ्फ़रपूर पहुंची। पांचकौड़ी गाड़ी से स्टेशन के बाहर आया।

पांचकौड़ी ने इसके पूर्व कभी अपने ग्राम के बाहर पैर नहीं रक्खा था अतएव इस अपरचित बड़े शहर में पहुंच कर वह बड़ी असुविधामें पड़ा। जिस ओर देखता था पश्चिमी लोगों के अतिरिक्त स्वदेश वासी की छाया तक नहा।

वह बड़ी दूर तक निरुद्देश चला गया। कहां जायगा कुछ ठीक नहीं। अन्तको उसी शहर के एक भलेमानस से अपनी भाषा में पूछा—डाक्टर बाबू का घर कहां है?

मुज़फ्फ़रपूर में अनेक डाक्टरथे। वह मनुष्य ठीक न बता सका। पांचकौड़ी से पूंछा—किस डाक्टर का मकान पूछते हो? यहां तो बहुत से डाक्टर हैं।

पांचकौड़ी ने नाम बताया परन्तु फिर भी वह न बता सका। उसने डाकख़ाने की ओर इशारा करके कहा—सामने डाकख़ाने में चले जाओ वहां दो बंगाली बाबू हैं उन से सब मालूम हो जायगा।

पांचकौड़ी डाकख़ाने की ओर चला। डाकख़ाने के बरन्डा में पहुंच कर इधर उधर देखने लगा। इतने ही में एक बंगाली बाबू बाहर निकल कर आये और पांचकौड़ी से अत्यन्त नम्रता पूर्वक पूछा—जान पड़ता है आप हमारे देश के आदमी हैं और यह भी मालूम होता है कि आप यहां नये आये हैं। आप कहां जांयगे?

अपने स्वदेशवासी की सूरत देख तथा निज भाषा की बात चीत सुनकर पांचकौड़ी को बड़ा धैर्य्य हुआ, बोला—आप का अनुमान ठीक है। देश से मैं इसी गाड़ी से आया हूं। मेरे भाई यहां डाक्टरी करते हैं उनके पास जाऊंगा परन्तु मुझे उनका घर नहीं मालूम।

बाबू—आपके भाई का क्या नाम है?

पांचकौड़ी—दानीशचन्द्र राय, सरकारी डाक्टर।

बाबू—ओहो, मालूम हुआ। अच्छा आप ठहरें। पियन चिट्ठी लेकर जायगा वह आप को वहां पहुंचा देगा।

पांचकौड़ी—कितनी दूर है?

बाबू—बहुत दूर नहीं, शहर के बीच में है।

उसी समय पियन डाक लेकर बाहर हुआ। बाबू ने उससे कहा—इन बाबू को सरकारी डाक्टरख़ाना बता दो, यह डाक्टर बाबू के भाई हैं पहले इन्हें बता देना पीछे दूसरी जगह जाना।

पांचकौड़ी को लेकर पियन चला।

शहर के बीच में हास्पीटल की ऊंची इमारत, इमारत के सामने बड़ा फाटक है, चारों ओर नौकर चाकर काम करने में व्यस्त हैं। पांचकौड़ी तो सदा निर्भीक रहता है। वह कभी किसी बात से विचलित नहीं होता। पियनके साथ परिचित मनुष्य की तरह खटाखट चला गया।

डाक्टर बाबू के कमरे के द्वार पर लेजाकर पियन ने पांचकौड़ी को खड़ाकर दिया। दानीशचन्द्र मेज़ पर झुके हुए कुछ पढ़ रहे थे। पियन ने आगे बढ़कर कहा—हुज़ूर यह बाबू आपसे मिलने के लिए आये हैं।

दानीश ने सिर उठाया और पांचकौड़ी को सामने पाकर प्रफुल्ल होगये। शुष्क हृदय में भ्रातृस्नेह की धारा बह चली। मुसकुराकर बोले—क्यों रे! तू कहां? घर में सब कुशल?

पांचकौड़ी दीवार के सहारे छाता रखकर बोला—हां सब जीवित हैं।

दानीश—अच्छा घर जा, वहां आकर सब हाल सुनेंगे राह में कष्ट तो नहीं हुआ?

यह कहकर दानीश ने एक नौकर को बुलाया। नौकर के आने पर उससे पांचकौड़ी को घर पर पहुंचा आने के लिए कहा और यह भी कहा कि—घर में सब से कह देना कि यह बाबू हमारे भाई हैं। खाने पीने का प्रबन्ध करदें।

पांचकौड़ी ने पूछा—आप अभी नहीं चलेंगे?

दानीश—हम दो घंटे बाद आवेंगे, तू घर जाकर स्नान भोजन कर।

पांचकौड़ी—मैं तो यहां आकर एक नई विपद में पड़गया, किसी की बात अच्छी तरह समझ नहीं सकता। यहां पर क्या सब इसी देश के लोग हैं ?

दानीश—(हंसकर) भोजन बनाने वाला ब्राह्मण बंगाली है।

"खैर जान बची" कहकर पांचकौड़ी नौकर के साथ चला गया। यथा समय दानीश घर आये और अहारादि करके पांचकौड़ी से घर का सब हाल सुना। सुनकर उनके हृदय में अशांति की अग्नि प्रज्वलित होगई।

मनही मन सोचने लगे कि—हम प्रतिमास इतने रुपये कमाकर वृथा नष्ट कर देते हैं, ऋण जाल में भी जकड़ते जाते हैं। परन्तु हमारी माता, स्त्री, भ्रातृवधु, भ्रातृगण विना अन्न कष्ट भोग रहे हैं।

उनके हृदय में यह विचार पहले भी कई बेर आ चुका था। परन्तु हृदय में बल न रहते हुए केवल अनुताप द्वारा मनुष्य का किसी पाप से उद्धार नहीं होसकता। अनुताप विवेक की पुरण्य-प्रतिध्वनि है। जिनके हृदय में बल होता है वे इस प्रतिध्वनि के सुनते ही पाप पथको छोड़कर अलग हो जाते हैं, परन्तु जिनके हृदय में बल नहीं वे पतंग की तरह जलते हैं, अलग होते हैं, फिर फांद पड़ते हैं। दानीश की अवस्था भी ठीक ऐसी ही थी।

दानीश से सब कथा कह कर पांचकौड़ी बोला—तीन चार दिन में आप एक वेर अवश्य घर चलिए।

दानीश ने कहा—घर चलने की मेरी भी बड़ी इच्छा है परन्तु क्या करूं इस समय छुट्टी मिलने की आशा नहीं। यहां प्लेग आरम्भ होगया है इस कारण छुट्टी नहीं देंगे।

पांचकौड़ी—बहुत लोग मरते हैं क्या ?

दानीश—हां, इस समय तेरा आना अच्छा नहीं हुआ।

पांचकौड़ी—क्यों, क्या रोग का भय है ? मैं ये बातें मानता वानता नहीं। महामारी भगवान की लीला है। जो रोग से भय करते हैं उनकी बड़ी भूल है।

दानीश समझे कि अशिक्षित पांचकौड़ी का ऐसा ज्ञान होना स्वाभाविक है।

पांचकौड़ी—कितने दिनों बाद घर जा सकोगे ?

दानीश—ठीक नहीं कह सकते। छुट्टी की दरखास्त देंगे, उसके बाद मालूम हो जायगा।

पांचकौड़ी—तो आजही की डाक से कुछ रुपये घर भेज दो, नहीं तो घर के लोग बिना खाये मर जायंगे।

दानीश—तू अभी घर नहीं जायगा।

पांचकौड़ी—मैं कुछ दिन घूम घाम लूं इसके उपरांत यदि आप को छुट्टी मिल गई तो साथही चलूंगा।

दानीश—मेरी समझ में तो इस प्लेग के समय में तेरा यहां रहना ठीक नहीं।

पांचकौड़ी—इसलिए आप कोई चिंता न कीजिए। घर

जाने में भी मुझे कोई सुख नहीं। एक घर में बिना शचीश को पायें मैं कदापि नहीं रह सकता। रुपये आजही भेजिएगा ना?

दानीश—रुपये तो इस समय हैं नहीं। घर खर्च के लिए केवल दस रुपये रक्खे हैं।

पांचकौड़ी—आज वही भेज दीजिए, फिर देखा जायगा।

दानीश ने स्वीकार किया। पांचकौड़ी उसी समय रुपये लेकर डाकखाने चला गया। वहां जाकर रुपये मनीआर्डर कर दिये और माता को एक चिट्ठी लिखदी।

डाकखाने से निकल कर पांचकौड़ी ने शहर घूमना प्रारंभ किया। समस्त शहर घूम कर संध्या के कुछ पूर्व घर लौटा। घर के सामने एक गाड़ी खड़ी थी। गाड़ी मूल्यवान तथा घोड़े बलिष्ट थे। गाड़ी का सामान देखकर पांचकौड़ी ने समझ लिया कि यह गाड़ी किसी धनाढ्य की है।

घर में प्रवेश करतेही उसे हारमोनियम बाजे के मधुर स्वर सुनाई पड़े। बाजे का शब्द दानीश के कमरे से आरहा था, साथही साथ किसी रमणीकंठ के गाने की आवाज़ भी सुनाई पड़ती थी। पांचकौड़ी घटना देखने के लिए दानीश के कमरे में घुसा।

कमरे में प्रवेश करतेही वह चौंक उठा। उसने देखा कि एक अनिंद्य सुन्दरी युवती दानीश के पास कुर्सी पर बैठी हुई हारमोनियम बजाकर गारही है। शरीर पर सुन्दर साड़ी, पैर में मोज़ा, जूता, पीठ पर चोटी लटकती है। स्त्रियों का ऐसा शृंगार पांचकौड़ी की आखों के लिए बिल्कुल नया था।

पाचकौड़ी द्वार पर खड़ा होकर वह अद्भुत दृश्य देखने लगा।

गाना गाते गाते यूथिका की दृष्टि हठात द्वार की ओर गई। उसने देखा कि एक सुन्दर युवक एक दृष्टि से उसकी ओर देख रहा है।

गाना बंद करके यूथिका ने पूछा—महाशय, आप कौन?

पांचकौड़ी विना कुछ उत्तर दिये वह स्थान त्याग करके चला गया।

यूथिका मनही मन हंसी। उसने सोचा कि "यह आदमी विल्कुल मूर्ख मालूम होता है, वात का उत्तर तक न दिया। परन्तु सुन्दर युवक है, आलाप परिचय के अयोग्य नहीं, वयस अति अल्प, अभी अच्छी तरह मूछों की रेख भी नहीं आई। अल्पवयस्क होनेही से इतना मुंहचोर है।"

दानीश ने पूछा—गाना बंद करके क्या सोचने लगीं?

दानीश के मुख की ओर देखकर लापरवाही से यूथिका ने कहा—इस युवक की वात सोच रही हूं।

दानीश—(हंसकर) वह मेरा छोटा भाई है। दोनों भाइयों की ओर मन मत ले जाओ।

दानीश ने यह वात केवल हंसी में कही।

यूथिका ने सोचा इसमें दोषही क्या है? ईश्वर ने आंख कान केवल देखने सुनने ही को वनाये हैं।

यूथिका ने पूछा—यह कव आये?

दानीश—आज सुवह।

यूथिका—यहां कब तक रहेंगे ?

दानीश—कुछ ठीक नहीं, उसकी इच्छा पर निर्भर है।

यूथिका—यह क्या कालेज में पढ़ते हैं ?

दानीश—नहीं, यह भली भांति लिखना पढ़ना नहीं जानता। लड़कपन में मस्तिष्क रोग होगया था। इसी कारण डाक्टर ने मानसिक परिश्रम करने के लिए मना किया है।

यूथिका—शोक!—ऐसा सुन्दर पुष्प निर्गंध।

दानीश—एक गुण है।

यूथिका—वह क्या ?

दानीश—हारमोनियम बजाना और गाना अच्छा जानता है।

यूथिका—तो बुलाओ, सुनें।

दानीश—मेरे सामने नहीं गायेगा।

यूथिका—अशिक्षित है इसलिए। हाय, न जाने यह बुरी प्रथा हमारे देश से कब जायगी। जब तक पिता पुत्र, बड़े छोटे भाई-बहिन, स्वामी-स्त्री, यहां तक कि सास-जमाई, एक बिछौने पर बैठ कर निस्संकोच एक दूसरे के सामने पवित्र भाव से गाना नहीं गावेंगे उस समय तक "वन्देमातरम्" मंत्र का साधन होना असम्भव है।

दानीश—तुम किसी दूसरे समय उसका गाना सुन सकती हो।

यूथिका—कल जब तुम हास्पिटल जाओगे उस समय मैं यहां आकर सुन जाऊंगी।

दानीश—यही ठीक है।
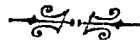
सातवां परिच्छेद ।
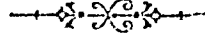
सन्ध्या उत्तीर्ण हो गई थी। चांद की रोशनी फैल कर समस्त जगत को आलोकित कर रही थी। ऐसेही समय में पांचकौड़ी घर से निकल कर शहर घूमने के लिए चला। परंतु किस ओर जायगा इस का कुछ ठीक नहीं। अंत को थोड़ी देर तक इधर उधर घूमते रहने के पश्चात शहर के बाहर की ओर निकल गया।

इस ओर एक दरिद्र मोहल्ला था। गलियों, तथा बड़े बड़े वृक्षों के कारण चांद की रोशनी अपना पूरा कर्तव्य पालन नहीं कर सकती थी। जहां कहीं भी प्लेग का प्रादुर्भाव होता है वहां श्रीगणेश प्रायः दरिद्र मुहल्लोंही से होता है। यहां भी वही बात थी अर्थात प्लेग देव की कृपा पहले इसी मुहल्ले पर हुई थी। इस महामारी के आक्रमण से वह मुहल्ला श्मशान तुल्य हो गया था। कोई किसी को पानी देने वाला नहीं था। अधिकांश लोग सरकारी हास्पटल में पड़े थे। जो हास्पिटल से डरते थे (जैसा कि प्रायः हुआ करता है) वे घरही पर पड़े मर रहे थे। जो जीवित थे वे भी महामारी का भीषण-कांड देख कर सूखे जारहे थे। उनको हर समय यही भय लगा रहता था कि न जाने वे किस समय इस राक्षस रोग का ग्रास बन जांय। संध्या के पश्चात कोई घर से नहीं निकलता था। गलियों तथा सड़कों पर सन्नाटा छाया रहता

था। पांचकौड़ी निरुद्देश चला जा रहा था, सहसा रुक कर खड़ा हो गया। उसी रास्ते से एक स्त्री आरही थी। जब वह पांचकौड़ी के पास आई तो उस समय चांद की रोशनी में पांचकौड़ी ने देखा कि स्त्री सुन्दर तथा युवती है।

रमणी ने अत्यन्त विनीत स्वर से कुछ कहा। परन्तु उस की बात पांचकौड़ी की समझ में नहीं आई। यह देखकर वह पास से होकर आगे की ओर चली गई।

पांचकौड़ी यद्यपि उसकी भाषा नहीं समझ सका तथापि उसने इतना अवश्य समझ लिया कि स्त्री दुखिनी है और किसी मनुष्य की सहायता चाहती है। वह लौट पड़ा और उस स्त्री के पीछे पीछे चला।

कुछ दूर चलकर स्त्री खड़ी हो गई और उसने पीछे फिर कर देखा मानो किसी के आने की प्रतीक्षा करती थी। इसी प्रकार वह थोड़ी देर तक खड़ी रही। परन्तु किसी को आते न देख फिर आगे बढ़ी।

पांचकौड़ी, जो स्त्री को खड़े होते देख एक वृक्ष की आड़ में खड़ा होगया था, स्त्री के चलने पर आप भी चल पड़ा।

शहर का रास्ता छोड़ स्त्री ने शहर बाहर का रास्ता पकड़ा। प्रायः आध मील चल चुकने पर वह स्त्री एक मंदिर के निकट खड़ी होकर चारो ओर देखने लगी।

अनेक क्षण व्यतीत होने पर दो बलिष्ट युवक उस स्थान पर आये। उनको देख कर वह स्त्री कांप गई। उसके हृदय में यह भाव उदय होता हुआ मालूम पड़ा कि उसने वहां आकर कोई अच्छा कार्य नहीं किया। उसने मनही मन ईश्वर

का ध्यान किया। उसका नाम कमला था, जाति की मैथिल ब्राह्मण थी।

एक युवक को लक्ष्य करके कांपते हुए स्वर से कमला बोली—मैं आप के पास आई हूं। आपने मुझे जो हनुमान जी का कवच देने कहा था दया करके वह देदीजिए। मेरे ऊपर बड़ी विपद है इस कारण इतनी रात को यहां आई हूं। मेरा बाप प्लेग से मर गया है। मां भी अस्पताल में पड़ी है। मैं, मेरी दीदी, एक छोटा भाई बचे हैं। जो जो हनुमान जी का कवच ले गये हैं उनके घर में प्लेग नहीं हुआ। आपने देने कहा था इसीलिए आई हूं, साथ भी कोई नहीं आया। आप लौट जांयगे इसलिए अकेली ही चली आई।

एक युवक ने हंस कर कहा—अकेली आई हो तो डर क्या है? हम यह कवच और किसी के पास नहीं रखते। हनूमान जी के मंदिर के सेवक हमीं हैं, हमारे सिवा और किसी के पास नहीं मिलता।

स्त्री—यही जानकर ऐसी जगह चली आई।

युवक—अच्छा किया। परन्तु इस कवच के बदले में हमें क्या दोगी?

स्त्री—मैं अनाथ हूं—मैं आप को क्या दूंगी? आपने दया करके देने कहा था इससे आई हूं। मेरे पास देने को क्या है?

युवक—तुम्हारे पास जो कुछ है वह किसी राजरानी के पास भी न होगा। कवच के बदले में तुम हमें अपनी यौवनपूर्ण देहकान्ता भेट देदो। हम हनूमान जी के सेवक हैं खुल्लम खुल्ला विवाह नहीं कर सकते। परन्तु तुम्हें हमलोग

बड़े सुख से रक्खेंगे, तुम हमारी हो जाओ। तुम्हारा बाप मरही गया, तुम्हारी मां भी मरही जायगी। उसके मरने पर तुम कहां जाओगी ? हमलोग तुम्हें अपनी आखों तले से कभी दूर न करेंगे। तुम्हारे सुख के लिए हनुमान जी का भण्डार खुला रहेगा।

पद्दलित भुजंगिनी की तरह कमला ने सर उठाया। भय तथा क्रोध से अधर कांपने लगे। उसने अब पूर्णतया समझ लिया कि उसने यहां आकर बड़ी भूल की। सन्या-सियों, महन्तों के हृदय भी पाप पूर्ण होते हैं, यह उसको स्वप्न में भी आशा नहीं थी। कमला रोने लगी, उसकी आखों से बड़े बड़े मुक्ता सदृश आंसू टपकने लगे।

युवक ने कहा—तुम रोती क्यों हो? आज तुम्हारा सौ-भाग्य उदय हुआ है।

कमला—मैं वह सौभाग्य नहीं चाहती—आपका कवच भी नहीं चाहती। आपमहन्त हैं, हनूमान जी के सेवक हैं। आप मेरे पिता तुल्य हैं। मैं जाती हूं, मुझे क्षमा कीजिए, मैं बड़ी अनाथा हूं।

युवक—जाओगी कहां ? इतना परिश्रम करके तुम्हें यहां बुलाया, तो क्या ख़ाली चले जाने के लिए ?

कमला—आप धार्मिक हैं, हनूमान जी के पुजारी हैं, हनू-मान जी किसी अनाथा का अपमान् कभी सहन न करेंगे।

कमला यह कर चलदी। कमला के चलतेही पापिष्टों ने लपक कर उसका हाथ पकड़ लिया। कमला चीत्कार करने लगी। उनमें से एक ने उसका मुँह दबा लिया। थोड़ीही दूर

पर एक वृक्ष की आड़ में खड़ा हुआ पांचकौड़ी यह सब घटना देख रहा था। उनकी भाषा तो भलीभांति उसकी समझ में आई नहीं परन्तु बात चीत के ढंग से वह इतना अवश्य समझ गया कि घटना बड़ी जटिल है। इन लोगों ने षड्यंत्र करके इस स्त्री का सर्वनाश करना विचारा है। पांचकौड़ी यह सब देख देख कर मनही मन कुढ़ रहा था। परन्तु जब दुष्टों ने उस अबला पर बलात्कार करने की चेष्टा की तब तो उससे न रहा गया। वह एकही छलांग में उनके पास पहुंच गया। यद्यपि वे लोग दो थे और पांचकौड़ी अकेला, परन्तु उस सती के सतीत्व की रक्षा के लिए उस समय उसके शरीर में किसी दैविक बल का संचार हो आया।

घटना स्थल पर पहुंचतेही पहले उसने उस युवक को, जो कमला का मुंह दबाये था, इतने ज़ोर से धक्का दिया कि वह दूर जाकर गिरा। इसके पश्चात उसने दूसरे के, जो कमला का हाथ पकड़े था, एक बड़े ज़ोर का थप्पड़ मारा। युवक उस थप्पड़ की चोट सहन न कर सका, और चक्कर खाकर उसी स्थान पर गिर पड़ा।

पांचकौड़ी ने कमला का हाथ नम्रता पूर्वक पकड़ लिया और उसे शहर की ओर तेज़ी से ले चला।

परन्तु वह थोड़ी ही दूर गया था कि पीछे से किसी ने उस के सर पर ऐसी कड़ी चोट मारी कि वह ज्ञानशून्य होकर उसी स्थान पर गिर पड़ा। यह देख कर कमला बड़े उच्च स्वर से चीत्कार करने लगी। ठीक उसी समय दो कानस्टेबल

उस स्थान पर आगये और कमला द्वारा समस्त घटना जानने पर उन्हों ने युवकों को गिरफ्तार कर लिया।

पांचकौड़ी वेहोश पड़ा था। उसकी ओर इशारा करके एक कान्सटेबल ने कमला से पूछा—क्या यह भी इन्हीं में का है?

कमला ने कहा—नहीं, इन्होंही ने मेरी रक्षा की। यह न होते तो ये लोग न जाने मुझे कहां लेजाते और क्या करते। उनमें से एक ने पांचकौड़ी को हिलाय डुलाय अतएव थोड़ीही देर में उसे होश आगया।

उसने चारो ओर देखा। पहले तो उसकी समझ में कुछ न आया कि क्या बात है। परन्तु थोड़ी देर तक शांति पूर्वक बैठ रहने से उसे समस्त घटना याद आगई। उसने कान्स-टेबलों से कहा—इस स्त्री को इसके घर पहुंचा देना, मैं जाता हूं। वे पश्चिमीय लोग थे तथापि पांचकौड़ी की भाषा समझ गये। उन्होंने भी टूटी फूटी अर्द्ध-हिंदी-मिश्रित बंगला भाषा में पूछा—आप क्या इस औरत को जानता है?

पांचकौड़ी—नहीं।

कान्सटेबल—आप यहां क्यों आया?

पांचकौड़ी—शहर में घूमते घूमते इस ओर निकल आया।

कान्सटेबल—इस मुकद्दमे की गवाही देना होगा।

पांचकौड़ी—जो देखा है उसके कहने में डर क्या है?

कान्सटेबल—आपको थाने में चलकर पहले अपना बयान लिखाना होगा।

पांचकौड़ी—यदि चलना अवश्यक है तो चलो।

कान्सटेबल दोनों आसामियों, कमला तथा पांचकौड़ी को लेकर थाने में गये।

आठवां परिच्छेद

जिस समय ये लोग थाने पहुंचे उस समय रात के दस बज चुके थे। थाने का दारोग़ा अपने घर चला गया था। अन्यान्य कर्म्मचारियों में स कोई भोजन बना रहा था, कोई खा रहा था, कोई सोने का प्रबंध कर रहा था।

कान्सटेबलों ने पहले पांचकौड़ी और कमला को एक वृक्ष के नीचे बिठा दिया। इसके उपरांत एक तो दारोग़ा को बुलाने गया दूसरा आसामियों को लेकर हवालात की ओर गया।

कमला और पांचकौड़ी वृक्ष के नीचे पासही पास बैठे थे। कमला पांचकौड़ी की ओर देख देख प्रसन्न हो रही थी और मनही मन सोच रही थी—ऐसे मनुष्य पृथ्वी पर कितने हैं? दूसरे के लिए अपने प्राणों को संकट में डालना थोड़ी बात नहीं है। जो ऐसा करता है वह मनुष्य नहीं देवता है।

पांचकौड़ी भी कमला के मनोहर मुख की ओर एक दृष्टि से देख रहा था। उसके हृदय में कमला के सौन्दर्य ने भक्ति भाव उत्पन्न कर दिया था। वह समझता था कि कमला के सौन्दर्य द्वारा मां दुर्गा स्वयं अपना सौन्दर्य दिखा कर उसकी आंखों को शीतल कर रही है। पांचकौड़ी की आखों में प्रेमाश्रु भर आये और उसने मन में मां दुर्गा का ध्यान किया।

इसी समय एक कान्सटेवल पांचकौड़ी और कमला को बुला ले गया। एक कमरे में कुर्सी पर एक वृद्ध बङ्गाली बैठे हुए थे, सामने मेज़ बिछी हुई थी। यही महाशय थाने के दारोग़ा थे।

पांचकौड़ी और कमला उनकी मेज़ के पास जाकर खड़े होगये। दारोग़ा ने, एक बेर दोनों को कड़ी दृष्टि से देखकर, कहा—पहले दोनों अलग अलग अपने बयान लिखाओ।

पहले कमला ने उसके पश्चात पांचकौड़ी ने अपने बयान लिखा दिये। दारोग़ा ने पांचकौड़ी से पूछा—तुम तो बङ्गाली हो इस स्त्री के साथ कैसे मिले?

पांचकौड़ी—यह सब लिखा तो चुका हूं।

दारोग़ा—उस पर विश्वास नहीं होता।

पांचकौड़ी—तो किस पर विश्वास होता है?

दारोग़ा—केवल विश्वास ही नहीं प्रमाण भी मिल गया। वह यह कि तुम दोनों आदमी भागे जा रहे थे। महन्त महा राज ने अपने मित्र सहित उस रास्ते से आते हुए तुम दोनों को देखा और कोन्सटेबलों को बुलाकर पकड़वा दिया।

पांचकौड़ी—किसलिए भागे जारहे थे ?

दारोग़ा—अपनी बुरी इच्छा पूरी करने के लिए।

पांचकौड़ी—महाशय, यह आप क्या कहते हैं ? माता के साथ पुत्र की क्या कभी बुरी इच्छा हो सकती है ? यह तो मेरी माता है।

दारोग़ा चौंक उठा। उसने बड़े ग़ौर से पांचकौड़ी के मुख की ओर देखा।

दारोग़ा—तुम यहां क्या काम करते हो ?

पांचकौड़ी—कोई काम नहीं, दादा के पास आया हूं।

दारोग़ा—तुम्हारे दादा यहां क्या करते ह ?

पांचकौड़ी—सरकारी डाक्टर हैं।

दारोग़ा—क्या दानीश बाबू ?

पांचकौड़ी—हां।

दारोग़ा दानीश बाबू से भली भांति परिचित थे। पुलिस सुपरिन्टेन्डेन्ट के बंगले पर उन्हें कई बेर देख चुके थे और यह भी सुना था कि साहब में और डाक्टर बाबू में बड़ी मित्रता है।

दारोग़ा बाबू कुछ देर तक न जाने क्या सोचते रहे, इस के बाद बोले—तुम मन में और कोई बात मत लाओ मुक़द्में का सच झूठ देखने के लिए हम लोगों को घुमा फिरा कर बातें पूछना होती हैं। ख़ैर—अब तुम एक बात बताओ।

पांचकौड़ी—क्या, कहिए ?

दारोग़ा—यदि यह मुक़द्मा कोर्ट में जाय तो क्या इस स्त्री की कोई हानि है ?

ब्राह्मण—बङ्गाली मेम साहब। एक किरस्टानी इस्कूल की मालिक।

पांचकौड़ी—यहां क्यों आती है?

ब्राह्मण—सात रुपये महीने पर भात रांधने आकर इतने बड़े बड़े लोगों की ख़बर कैसे रक्खें—बाबू?

यद्यपि पांचकौड़ी की इच्छा यूथिका के पास जाने की नहीं थी परन्तु इस देश का नियम जानता नहीं था इस कारण यह सोचकर कि कहीं न जाने में कुछ असभ्यता या दोष हो, पांचकौड़ी यूथिका के पास गया। यूथिका मुसकरा कर मोहन स्वर से बोली—बैठिए, मैं बड़ी देर से आप की प्रतीक्षा कर रही हूं।

इस बात का क्या उत्तर देना चाहिए यह पांचकौड़ी समझ न सका। वह हंस कर एक कुर्सी पर बैठ गया।

यूथिका बोली—आप बहुत अच्छा गा सकते हैं इस कारण आप का गाना सुनने आई हूं। हारमोनियम खोलकर एक गाना सुनाइए।

पांचकौड़ी ने विनीत भाव से कहा—मैं गाना जानता हूं यह आप से किसने कहा?

यूथिका—क्यों, आपके भाई साहब, डाक्टर बाबू ने।

पांचकौड़ी चौंक पड़ा। यूथिका हंसकर बोली—आप क्या लज्जित होते हैं? यह गांव में रहने का फल है। गाना बड़ी पवित्र वस्तु है, स्वर्गीय पदार्थ है। किसी के आगे गाने से लज्जा कदापि न करना चाहिए।

यह देखकर कि गाना बिना बाजे सुहावना होना कठिन है, पांचकौड़ी ने हारमोनियम खोल लिया और स्वरों पर उँगलियाँ दौड़ाकर एक भजन गाना आरम्भ किया।

हारमोनियम के साथ साथ पांचकौड़ी का मधुर कंठ भी चलता था। अनेक क्षण उपरान्त गाने का अंत हुआ। पांच-कौड़ी गाना समाप्त करके माथे का पसीना पोंछने लगा।

यूथिका बोली—आपके गले का स्वर, आपकी हारमोनि-यमशिक्षा अत्यंत प्रशंसनीय है। परन्तु गाना आपने फीका गाया। अच्छे आदमी ऐसा गाना कभी नहीं गाते।

यूथिका की बात सुनकर पांचकौड़ी को आश्चर्य हुआ। ठाकुर जी का भजन और फीका, यह कभी सम्भव है क्या!

पांचकौड़ी को अपनी ओर दृष्टि से देखते हुए यूथिका बोली—जान पड़ता है आप इस गाने का अर्थ नहीं समझते। आपका गाना सुनकर वृन्दावन, यमुनातट, कदम्ब वृक्ष—क्षमा कीजिएगा—यह सब अवन्द्य कथा याद आती है। इसके उपरांत—कुरुचि, विषम कुरुचि—पूजा की बात, ईश्वर का भोजन, भोग के पात्र—हाय, हाय, एक शिक्षित मनुष्य के घर में, एक शिक्षिता स्त्री के सामने यदि कोई दूसरा यह गाना गाता तो मूर्छा आजाती। परन्तु आप से प्रेम करती हूं, हृदय से चाहती हूं, इसी कारण अब तक बैठी रही। दासी पर कृपा करके एक दूसरा गाना सुनाइए। मैं बड़ी आशा करके आप के पास आई हूं। दया करके एक अच्छा सा गाना सुना-दीजिए।

पांचकौड़ी ने यूथिका की बातों का अर्थ न समझ कर पूछा—फिर कौनसा गाना सुनाऊं ?

पांचकौड़ी की ओर कटाक्ष बाण चला कर यूथिका बोली—प्रेम सङ्गीत, प्रेम पूर्ण गान। आप क्या नहीं जानते ? प्रेम से ही जगत सधा हुआ है। प्रेम सूत्र से ही संसार बंधा है। प्रेम—प्रेम—पवित्र प्रेम बिना इस संसार का कुछ अस्तित्व नहीं।

पांचकौड़ी सोचने लगा—अंगरेज़ी पढ़ने से आदमी पागल होजाता है क्या ? न जाने यह प्रेम प्रेम क्या बक रही है? बात चीत का ढंग तो ठीक पागलों ही की तरह का है। आज मैं बुरा फंसा।

पांचकौड़ी ने आंखें बंद करके एक प्रेम-गान गाना प्रारंभ किया।

कमरे में तेज़ रोशनी हो रही थी। उस रोशनी में उस के मुख पर आई हुई पसीने की बूंदें मोतियों की तरह शोभा दे रही थीं।

किन्नर-सदृश कंठ से निकल कर पांचकौड़ी का मधुर गान समस्त कमरे को प्रतिध्वनित कर रहा था। यूथिका सतृष्ण तथा लालसा पूर्ण स्थिर नयनों से पांचकौड़ी के मुख को निहार रही थी। उसका हृदय कांप रहा था।

पांचकौड़ी का गान समाप्त होने पर कम्पित कंठ से यूथिका बोली—आपका गाना स्वर्गीय पदार्थ है। आपने यह गाना सुनाकर मेरा मन, प्राण हरण कर लिया।

पांचकौड़ी—(मुसकरा कर) आप संतुष्ट होगई यही मेरे लिए आनंद है।

यूथिका—आपको मेरा एक अनुरोध रखना होगा।

पाचकौड़ी—क्या ?

यूथिका—आप जब तक यहां रहें, रोज़ एक गाना सुना दिया करें।

पाचकौड़ी—क्यों ?

यूथिका—आपके गाने ने मुझे पागल बना दिया।

पांचकौड़ी—जिसके सुनने से पागलपन आता है उसका न सुनना ही भला है।

यूथिका—उफ़, आपका हृदय बड़ा कठिन है।

इतने ही में बाहर बड़ा गोलमाल उठा। नौकर की चीत्कार से समस्त घर कम्पित हो गया। पांचकौड़ी चौंक कर बोला—क्या बात है ?

यूथिका बोली—नौकर चाकर आपस में लड़ते होंगे, आप उधर ध्यान मत लेजाइए।

पांचकौड़ी, यूथिका की बात पर ध्यान न देकर शीघ्रता पूर्वक बाहर आया। व्यापार देखने के लिए यूथिका भी पीछे पीछे आई।

आंगन में आग जल रही थी। आग के चारो ओर नौकर चाकर बैठे हुए थे। एक वृद्ध कंगला आंगन में घुस आया था, नौकर लोग उसे निकालने की चेष्टा कर रहे थे। परन्तु वह किसी प्रकार नहीं जाता था। कातर स्वर से कह रहा था—बाबू

हम अस्पताल मां रहे, बड़ी बीरामी पाई। आंह—आज निकरे हन - आंह—पिरथी पर हमार कोऊ नहीं।

पांचकौड़ी अनाहार शीर्ण, रोग जीर्ण वृद्ध के निकट जाकर खड़ा होगया और नम्रता पूर्वक बोला—तुम यहां क्यों आये?

यूथिका पांचकौड़ी को पुकार कर बोली—आप यहां आजाइए, न जाने इसे क्या रोग था। मुख देखने से जान पड़ता है कि अभी रोग गया नहीं है। आप जल्दी चले आइए, मुझे बड़ा डर लगता है।

पांचकौड़ी ने यूथिका की बात पर ध्यान न दिया।

वृद्ध कहने लगा—बाबू,-आंह—आज सगर दिन—आंह-कुछ नहीं खावा।

नौकर कर्कश स्वर से बोला—सरऊ तुम्हरे नीतिन का हियां भोजन बनाय के राखा है, जाओ नहीं अबहीं सिपाही का बुलाइत है।

वृद्ध—बाबू—मारे भूंखन के मरे जात हन—आंह—कुछ खाए का देओ—आंह— आंह।

नौकर सरऊ तुमका खान खातिर डंडा देइत है, ठाढ़ तो रहौ

"रहने दे इतना गरम क्यों होता है?" नौकर से यह कह कर पांचकौड़ी ने ब्राह्मण को बुलाया। उसके आने पर पांचकौड़ी ने पूछा—इसे कुछ खाने को दे सकते हो?।

ब्राह्मण—खाने को अब कहां से लावें? आप उसे यहां मत आने दें। (एक नौकर से) मथुरा इसे निकालदे। हमारे बाबू ऐसे आदमी से बहुत चिढ़ते हैं।

यूथिका—चिढ़ने की बात ही है। ऐसे लोगों को आश्रय देने से निराकार ब्रह्म असन्तुष्ट होते हैं।

"परन्तु हमारे ठाकुरदेव बड़े प्रसन्न होते हैं" यह कह कर पांचकौड़ी दौड़ कर अपने कमरे में गया। घर से उसे जो कुछ खर्च मिला था उसमें से केवल सात आने पैसे उसके पास बचे थे। वही सात आने लेकर वह वृद्ध के पास आया और बोला—हमारे साथ आओ, हम तुम्हें खाने को दिलादेंगे।

वृद्ध—बाबू! मारे भूखेन के उठा नाहीं जात, सरीर कांपत हवै, पेटमा एकौ दाना नाहीं गवा।

पांचकौड़ी ने उसका हाथ पकड़कर उठाया और धीरे धीरे घरसे बाहर होकर एक दूकान पर लेगया। वहां से, पूरी तरकारी कुछ मिठाई और एक लोटा जल लेकर एक अच्छे स्थानपर आया। वृद्ध को वहां बिठाकर वह सब भोजन खिला दिया और पानी पिला कर हलवाई का लोटा फेर दिया। सात आने में दो आने बच रहे थे वह दो आने बुड्ढे को देकर पूछा-अब तुम कहां जाओगे?

बुड्ढा बोला—भगवान तुम्हार भला करै। बाबू, अब हम बिरवा तरे पौढ़ रहब, तुम घरै जाओ।

पांचकौड़ी घर लौट आया। उस समय दानीशचन्द्र आगये थे और कमरे में बैठे यूथिका से बातचीत कर रहे थे। यह देख कर पांचकौड़ी भोजन करने चला गया।
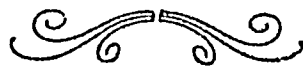
दसवां परिच्छेद ।

यूथिका की लालसा प्रतिदिन वर्षोल्लता की तरह बढ़ने लगी। वह पांचकौड़ी को हृदय से चाहती थी। पांचकौड़ी ही इस समय उसका आराध्य देवता हो रहा था। परंतु, सिंहनी को देख कर जिस प्रकार हरिण का बच्चा भयभीत होता है तथा उससे दूर ही दूर रहता है इसी प्रकार पांचकौड़ी भी यूथिका से भयभीत रहता और यथाशक्ति दूर ही रहने की चेष्टा करता था। पांचकौड़ी समस्त संसार की स्त्रियों को मातृवत समझता था। स्त्रियों का सौन्दर्य, उसके हृदय में पाप भाव पैदा नहीं कर सकता था। स्त्री सौन्दर्य को देख कर उसका हृदय मातृ भक्ति से उच्छ्वासित हो जाता। एक मास व्यतीत हो गया। यूथिका पांचकौड़ी को अपने प्रेम बंधन में फांसने की जितनी चेष्टा करती वह सब निष्फल जाती। पांचकौड़ी भी उससे सदा अलग ही अलग रहता। पहले उसने यूथिका के घर पर भी जाना आरंभ कर दिया था। परन्तु जिस दिन उसने यूथिका के मन का भाव समझा, उसी दिन से जाना कम कर दिया। यूथिका के बेर बेर बुलाने पर भी वह टाल देता था। परन्तु जिस दिन यह समझ लेता कि बिना जाये कल्याण नहीं उस दिन विवश होकर चला जाता। श्रावणी की पूर्णिमा थी। शहर में हिंडोलों का उत्सव बड़ी धूम धाम से हो रहा था।

उस दिन पांचकौड़ी यूथिका के बड़े अनुरोध से उसके घर पर गया।

घर के सामने वाले पुष्पोद्यान में दोनों पास ही पास बैठे थे। कृतिम झरने से पानी गिर कर देखने वालों के नेत्रों को शीतल कर रहा था। चारो ओर से नाना प्रकार के फूलों की सुगंध आरही थी। चन्द्रमा कभी बादलों में छिप जाता और कभी फिर निकल आता था।

पांचकौड़ीने हारमोनियम खोलकर गत बजाना आरम्भ की। यूथिका की स्थिर दृष्टि पांचकौड़ी के मुख पर स्थापित थी। थोड़े समय तक गत सुनने के पश्चात उत्सुक हृदय और कम्पित कंठ से यूथिका बोली—गत रहने दो, एक गाना सुनाओ।

अब यूथिका पांचकौड़ी को "तुम", कह कर संबोधन करती थी और पांचकौड़ी को भी ऐसा ही करने के लिए विवश करती।

हठात् आम्रशाखा पर कोयल कूक उठी। पांचकौड़ी ने गाना प्रारंभ किया।

यूथिका पांचकौड़ी के चन्द्रालोकाविभासित सुन्दर मुख को प्यार की दृष्टि से देख रही थी। उसका मन रह रह कर पांचकौड़ी के रक्त वर्ण ओष्ठों को चूमने के लिए मचल उठता था।

पांचकौड़ी ने गाना समाप्त किया। यूथिका ने हँस कर उसकी गर्दन में अपनी दोनों बाहें डालदीं।

जिस प्रकार शराहत सिंह उछल कर खड़ा हो जाता है, उसी प्रकार पांचकौड़ी उछल कर खड़ा होगया और बोला—क्यों मां, मेरे साथ ऐसा व्यवहार क्यों? मैं तो तुम्हारा पुत्र हूं।

यूथिका भी उठ कर खड़ी होगई। उसकी मूर्ति उस समय ठीक उन्मादिनी की सी हो रही थी। यूथिका कांपते हुए स्वर से बोली—प्राणेश, अब अधिक कष्ट मत दो। मैं तुम्हारी ही हूं। तुम समझते होगे कि म तुम्हारे दादा से प्रेम करती हूं, परन्तु नहीं, प्राणाधिक ऐसा नहीं है। तुम्हारे देखने के पूर्व यूथिका यह नहीं जानती थी कि प्रेम क्या वस्तु है। यूथिका ने आज के पहले किसी दूसरे से प्रेम नहीं किया। मैं सबका प्रेम का "सब्ज़ बाग़" दिखाती रही, परन्तु स्वयं प्रेम-शून्य थी। तुमने आकर मुझे बता दिया कि "प्रेम" केवल नाम ही नाम नहीं वरन कोई वस्तु भी है। तुमने मेरे हृदय को जीत लिया। जिस हृदय को बड़े बड़े नहीं जीत सके उस हृदयको तुमने सरलता पूर्वक पराजय किया। प्यारे! तुम ने मेरा सर्व नाश किया, मुझे क्षमा करो, मैं इस समय अपने होश में नहीं हूं। यदि तुम रुपये नहीं कमा सकते तो कुछ चिन्ता नहीं। मेरे पास जितना धन है वह सब तुम्हारे चरणों पर निछावर है। मैं तुम्हारी दासी होकर रहूंगी। जीवन धन! तुम मेरे हो जाओ। अब अधिक मत तरसाओ। स्त्री हत्या मत करो। मेरे पास इतना धन है कि हम तुम दोनों सुख पूर्वक दिन व्यतीत कर सकें।

अँधेरी रात में चुड़ैल को देख कर जिस प्रकार मनुष्य प्राण लेकर भागता है उसी प्रकार पांचकौड़ी भी भाग निकला, पीछे फिर कर भी न देखा। * * * * * *

इस घटना के दूसरे दिन आहारादि कर चुकने के बाद दानीश ने पांचकौड़ी को बुलाया और कर्कश स्वर से बोले—तुम यहां क्या सोच कर आये हो।

पांचकौड़ी ने विनीत स्वरसे उत्तर दिया—घर में सुख नहीं, शान्ति नहीं इसी लिए यहां चला आया। आपने खरचवरच भी नहीं भेजा इस कारण उसके लिए भी कहने सुनने आया था।

दानीश—अब यहां तुम्हारा रहना नहीं होगा।

पांचकौड़ी—तो फिर कहां जाऊंगा ?

दानीश—घर।

पांचकौड़ी—कहातो कि घर में सुख शान्ति कुछ भी नहीं। यहां तक कि बड़ी बहू शचीश को भी मेरे पास नहीं आने देती।

दानीश—तुम्हारे ऐसे गुणवान इसी योग्य हैं।

पांचकौड़ी चौंक पड़ा। उसका सदा सहास्य मुख मलीन हो गया। वह नहीं समझ सका कि उसने क्या अपराध किया। दादा बिना अपराध कुछ कहने वाले नहीं। उसने कुछ पूछना चाहा परन्तु साहस नहीं पड़ा। चुप चाप दादा के मुख की ओर देखता रहा।

दानीश—एक पैसे की कमाई नहीं करेगा, पराई कमाई बैठे बैठे खायगा, और उस पर इतनी बदनामी।

अब पांचकौड़ी बिना कुछ कहे नहीं रह सका। उसने अत्यन्त विनीत भाव से नम्रता पूर्वक पूछा—दादा, मैंने क्या अपराध किया ?

अधिकतर उत्तेजित होकर दानीश बोले—क्या किया है ? करने में क्या कुछ बाक़ी भी रक्खा है ? किसी ने सत्य ही कहा है कि मूर्ख में नाना प्रकार के दोष होते हैं। थाने के दारोग़ा से तुम्हारे गुण सुन चुका हूं। पांचकौड़ी खड़ा था, यह सुन ठसक कर बैठ गया। वह समझ गया कि दारोग़ा ने उस रात की घटना दादा को विपरीत-भाव से सुनाई है। वह कुछ कहने ही वाला था परंतु दानीश ने अवकाश न दिया, बोले—तेरे में इतना साहस ! महन्त महाराज को झूठा दोष, पुलीस से झगड़ा ! यदि वे मेरा भाई न जानते होते तो उपयुक्त दंड देते। जो हो—अब मैं तुझे यहां नहीं रक्खूंगा। आज रात को चलाजा, ग्यारह बजे गाड़ी जाती है उसी से चला जा, यह ले किराये के चार रुपये।

पांचकौड़ी ने लम्बी सांस ली। उसका स्वभाव था कि वह किसी बात का प्रतिवाद करना अच्छा नहीं समझता था। अतएव उसने दादा की बात का प्रतिवाद नहीं किया और घर जाना स्वीकार कर लिया।

चलते समय छलछल नेत्रों से दादा की ओर देखकर बोला—छोटी बहू ने आपको घर आने के लिए बहुत कहा सुना है।

दानीश विकट हास्य करके बोले—ओहो, काव्य शास्त्र भी जान गया। मां गई, भाई गये, भौजाई गई। संदेशा किसका दिया ? छोटी बहूका, छिः, छिः।

पांचकौड़ी बड़ा अप्रभित हुआ, तथापि बोला—घरके लिए कुछ खर्च दीजिएगा।

दानीश—देना होगा भेज देंगे। (घड़ी देखकर) दसवज के सात मिनट हुए हैं। देर होजाने से गाड़ी नहीं मिलेगी।

पांचकौड़ी ने उसी समय अपने कपड़े, जूता छाता, आदि लिया और घरके बाहर हुआ।

उस दिन आकाश मेघ पूर्ण था। सड़कों पर लालटेनें दूर दूर पर जल रही थीं। इस कारण रोशनी से अंधेरा अधिक था। सड़क जनशून्य थी। बिलकुल सन्नाटा छाया हुआ था। पांचकौड़ी बेग हाथ में लिये एक गाना गुनगुनाता हुआ तेज़ी से चला जारहा था। ग्यारह बजने के कुछ मिनिट पूर्व वह स्टेशनपर पहुंचा। गाड़ी आनेही वाली थी। बहुत से मुसाफ़िर टिकट लेकर प्लेटफार्मपर चले गये थे। टिकिट घरकी खिड़की पर दो चार आदमी खड़े थे। पास ही एक बुड्ढा चिल्ला चिल्ला कर रो रहा था।

पांचकौड़ी ने जल्दी से टिकिट लिया और प्लेट फ़ार्म पर जाने लगा। हठात् उसकी दृष्टि रोते हुए वृद्ध पुरुष पर पड़ी। वह उसके पास जाकर बोला—तुम क्यों रो रहे हो?

वृद्ध बोला—मेरा सर्वनाश होगया, बाबा।

पांचकौड़ी— क्या हुआ? खोल कर कहो।

वृद्ध—मैं बङ्गाली—

पांचकौड़ी—(बात काट कर) यह तो तुम्हारी बातों ही से मालूम हो गया।

बुड्ढा—मेरा लड़का इस देश में नौकरी करता था। एक बाबूका घर भाड़े पर लिये था। उसको प्लेग होगया। बाबूउसे अस्पताल में छोड़ कर देश चले गये।

पांचकौड़ी—अच्छा फिर ?

बुड्ढा—मैं यह खबर पाकर यहां आया। आज मेरा वि-नोद मुझे छोड़ कर भगवान के घर चला गया। इस बुढ़ापे में ऐसा लड़का चला गया। हाय ! मैं अब क्या करूं ?

पांचकौड़ी—यह अपने अपने कर्म्मों का फल है। तो अब यहां बैठ कर रोने से क्या होगा ? गाड़ी आने में देर नहीं। तुम कहां जाओगे ?

बुड्ढा—हा भगवान ! सर्वनाश के ऊपर और सर्वनाश होगया बाबा ! लड़के के सोच में कातर था, खिड़की पर भीड़ देख कर एक बाबू को टिकिट लाने के लिए दाम दिये थे, परंतु बाबू न जाने कहां चले गये। स्टेशन के बाबू से कहा, वह बोले कोई चोर लेकर भाग गया। महाशय मैंने आज दिन भर कुछ नहीं खाया। एक तो पुत्र शोक दूसरे पास पैसा नहीं। (चिल्ला कर रोते हुए) हाय राम ! अब मैं कैसे घर जाऊंगा ?

ठीक उसी समय गाड़ी प्लेटफ़ार्म पर आपहुंची। गाड़ी को देख बुड्ढा बड़े ज़ोर ज़ोर से चिल्ला कर रोने लगा।

पांचकौड़ी को उसकी अवस्था पर दुख तथा दया हुई। उसे अपना टिकट देकर बोला—यह लो टिकिट, जाओ जल्दी गाड़ी पर चढ़ जाओ।

बुड्ढा—बाबा, क्या तुम्हीं मेरा टिकिट लेने गये थे ? कितने लोग तुम्हें चोर बताते थे। इसी से तो कहता था कि भले आदमी के लड़के दो चार रुपये के लिए बुड्ढे आदमी से दग़ा नहीं करेंगे। मैं बड़ा ग़रीब हूं, बाबा ! टिकिट न मिलने से मर जाता।

"कुछ परवा नहीं, इसके लिए आप चिन्ता न कीजिए" यह कह कर युवक टिकिट लेने चला गया और दस मिनिट में पांच टिकिट लेकर लौट आया, चार टिकिट अपने लिए और एक पांचकौड़ी के लिए।

यथा समय गाड़ी आई और चारों युवक पांचकौड़ी सहित सवार हो गये।
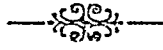
ग्यारहवां परिच्छेद।
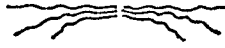
जिस दिन पांचकौड़ी यूथिका के पास से भाग आया था उसी दिन से यूथिका का हृदय निराश-प्रेम की अग्नि में जलने लगा।

यूथिका, विलासनी यूथिका ने आज तक प्रेम-ज्वाला का स्वाद नहीं जाना था। जिस ओर उसने दृष्टि फेरी उसी ओर से सफलता लाभ हुई। जब और जिसे उसने चाहा, क्षण भर में शिकार कर लिया। परन्तु आज यूथिका, सुशिक्षिता यूथिका, अभिमानिनी यूथिका, एक सामान्य तथा मूर्ख युवक का शिकार बन गई। उसको स्वयं अपनी दशा पर आश्चर्य होता था। वह पांचकौड़ी को भूलने की चेष्टा करती थी परन्तु उसका स्वेच्छाचारी हृदय पांचकौड़ी के लिए मचला ही पड़ता था। पांचकौड़ी बिना उसे कुछ भी अच्छा नहीं लगता

था, पांचकौड़ी बिना संसार अंधकार मय दिखाई पड़ता था। वह उठते बैठते, खाते पीते पांचकौड़ी ही का ध्यान करती थी। शिकार निकल जाने से जिस प्रकार सिंहनी क्रोध तथा क्षोभ से जल उठती है—उसी प्रकार, दानीश से पांचकौड़ी का चला जाना सुन यूथिका भी जल उठी।

जब पांचकौड़ी की विरह अग्नि यूथिका को असह्य प्रतीत होने लगी तब एक दिन दानीश के साथ उसने एक परामर्श गांठा। दानीश ने उसकी चाल नहीं पहिचानी—वह पतङ्ग थे जलने के लिए और भी अग्रसर हो गये।

शामको यूथिका कुर्सी पर बैठी थी। पास ही दानीश भी बैठे थे। कुछ देर तक इधर उधर की बातें कर चुकने के बाद यूथिका एक ठंडी सांस भरके बोली—अब नहीं सही जाती, असह्य वेदना। प्यारे डाक्टर बाबू! ऐसे कब तक चलेगा?

दानीश—क्यों यूथिका क्या हुआ?

यूथिका—प्रियतम! तुम्हारा अलग रहना मुझ से नहीं सहा जाता। तुम्हें एक चण के लिए भी अलग करने में बड़ा कष्ट होता है।

दानीश—प्राणप्रिय यूथिका! तो क्या मैं तुम्हारे घर उठ आऊं, या तुम्हीं मेरे घर पर उठ आओगी?

यूथिका—हाँ, तुम्हारे उस भाई का नाम क्या है, देखो-- हाँ याद आया—पांचकौड़ी। तुमने पांचकौड़ी को घर क्यों भेज दिया?

दानीश—वह कुछ पढ़ा लिखा नहीं है। घर जाकर कुछ काम काज करेगा। यहां उसका रहना वृथा था, क्योंकि वह नौकरी चाकरी भी नहीं कर सकता।

यूथिका—न करसके, परन्तु बड़ा सरल और बुद्धिमानहै। तुम उसको अब गांव पर मत पड़ा रहने दो। अपने पास बुलाकर कुछ कामकाज सिखाओ। गांव पर रहने से प्रतिदिन बिगड़ता जायगा। मैं उससे बड़ा स्नेह करती हूं, तुम्हारे कारण से हो, या उसकी सरलता के गुण से। हां, तो मैं क्या कह रही थी? हां याद आया—तो प्राणनाथ तुमने मेरा सर्वस्व हरण कर लिया। अब कुछ ऐसा उपाय करो कि हम तुम हर समय एक दूसरे के पास रहें। अच्छा मेरी एक बात मानोगे?

दानीश—भला मैं तुम्हारी बात टाल सकता हूं? यह जीवन तुम्हारे ही लिए है।

यूथिका—मैं यह जानती हूं, और यही जानकर मैं तुम पर मर मिटी। अच्छा तो—यदि हम लोग यहां पर एक ही घर में रहेंगे तो बड़ी बदनामी होगी। अभी लोग कानाफूसी किया करते हैं। मेरी तो यह इच्छा है कि दोनों नौकरी छोड़ कर कलकत्ते चलें।

दानीश—अच्छा फिर?

यूथिका—फिर क्या? मनोकामना पूर्ण होगी। हम तुम दोनों एक ही जगह रहेंगे। यदि तुम यह सोचो कि खर्च कैसे चलेगा तो यह कोई बड़ी बात नहीं। मेरे पास पांच सहस्र रुपये हैं, इन रुपयों से तुम एक औषधालय खोल देना, बस उसी से हमारा तुम्हारा खर्च चला करेगा।

दानीश मनही मन फूल गये। यूथिका उनसे इतना प्रेम करती है यह आज मालूम हुआ। बोले—यूथिका! मेरे लिए इतना सर्वस्व त्याग, मैं क्या स्वप्न देख रहा हूं?

यूथिका—स्वप्न नहीं, दानीश ! मैं यथार्थ कहती हूं, इसके अतिरिक्त कोई दूसरा अच्छा उपाय नहीं।

दानीश—तुम जो ठीक समझो करो, मैं तो केवल तुम्हारा आज्ञाकारी हूं, जो आज्ञा दो वह करूं।

यूथिका—मैं भी इसी महीने नौकरी छोड़ने का नोटिस दे दूंगी और तुम भी देदो, आगामी मास में चले चलेंगे। दानीश ने पुलकित हृदय से यूथिका की बात स्वीकार की। इसके पश्चात थोड़ी देर तक कलकत्ते जाने के संबंध में अन्यान्य परामर्श होते रहे। उन्हीं बातों में यूथिका ने दानीश से यह भी कह दिया कि औषधालय में काम करने के लिए पांचकौड़ी को अवश्य बुलाना होगा। दानीश समझे कि उनका भाई होने के कारण यूथिका पांचकौड़ी से स्नेह करती है।

दानीश उठ कर चले गये। उनके चले जाने पर यूथिका उठ कर खड़ी हो गई और कमरे में टहलने लगी। टहलते टहलते एक लम्बी सांस खींच कर बोली—पांचकौड़ी, प्राण प्रिय पांचकौड़ी, तुम्हें अपना बनाने के लिए एक नई युक्ति निकाली। अपने कष्ट-संचित धन की माया छोड़ी। म ने मेरे शांत हृदय में वह आग लगाई है जो तुम्हारे विना कदापि न बुझेगी। अब तुमको अपने ही पास रक्खूंगी और जैसे बनेगा वैसे अपना बनाऊंगी। यहां यह कार्य नहीं हो सकता था इसी कारण कलकत्ते जाकर यह कार्य करूंगी। कठोर हृदय, निष्ठुर, क्या अब भी तू मेरा न होगा ?

यह कह कर यूथिका चुप हो गई और उसने इस अभिप्राय से " कि कोई देखता तो नहीं " चारों ओर देखा, परन्तु कोई नहीं था, केवल घड़ी टिक टिक कर रही थी।

पहला परिच्छेद।

भाद्र मास का कृष्ण पक्ष अंत होने के निकट था। पांचकौड़ी ट्रेन से उतर कर घर की ओर चला। उसके दाहिने हाथ में एक छोटी सी ढोलक थी-शचीश बजायेगा। बायें में एक पोटली—उसमें कई प्रकार के नये वस्त्र, शचीश के लिए कमीज़, एक जोड़ा जूता. एक सीटी।

पांचकौड़ी मुज़फ्फ़रपूर स्टेशन से जिन लोगों के साथ गया था वे सब लोग धनाढ्य थे। पांचकौड़ी के साथ बात चीत करने तथा गाना सुनने से उनकी उससे बड़ी प्रीत होगई थी। पांचकौड़ी को अपने पास रख कर ततूपश्चात बीस रुपये दिये और विदा किया।

गाड़ी से उतर कर घर आते समय रास्ते में जो जो परिचित मनुष्य मिले उन सब से पांचकौड़ी ने पहले शचीश का हाल पूछा और उसकी कुशलता सुन कर संतुष्ट हुआ।

पांचकौड़ी शीघ्रता पूर्वक घर पहुंचा और आंगन में खड़े होकर शचीश को पुकारा।

शचीश नहीं बोला। पांचकौड़ी ने फिर पुकारा। पांचकौड़ी की आवाज़ सुन कर निस्तार बाहर निकल आई और उसे देख कर बोली—छोटे बाबू! आगये? शचीश सोता है। चलो भीतर चलो, मां तुम्हें याद करती थी।

पांचकौड़ी ने पूछा—वड़ी वहू कहां हैं?

निस्तार ने इशारे से चुप रहने के लिए कहा।

पांचकौड़ी चुप चाप माता के पास गया। वहां उस समय जयन्ती, छोटी वहू और मालकिन उपस्थित थीं। माता ने सव के पहले दानीश की कुशल पूछी। पांचकौड़ी ने सब बातें खोल कर कहदीं। सुन कर माता ने ठंडी सांस खींची, छोटी वहू ठसक कर बैठ गई। इसके उपरांत पांचकौड़ी ने अपना हाल कहा और पोटली खोल कर पांच धोतियां निकालीं। एक माता को देदी और चार चारो भौजाइयों को दीं।

माता आंसू पोंछती हुई वोली—वड़ा काम किया वेटा, मेरे पास एक भी धोती नहीं थी। कुछ खर्च भी लाया है?

पाचकौड़ी सूखी हंसी हंस कर वोला—मैं क्या रुपये लाने योग्य हूं, वावू लोगों ने दया करके वीस रुपये दिये थे। कपड़े वपड़े मोल लेने और रेल का किराया देने के वाद सात रुपये नौ आने वचे। यह कह कर पांचकौड़ी ने रुपये निकाले और जयन्ती को दे दिये। पांचकौड़ी ने पूछा—मां क्या वड़ी वहू शचीश को मेरे पास नहीं आने देगी। मैं अव उनकी वात नहीं सुनूंगा, वहुत दिन हुए उसे गोद में नहीं लिया।

माता वोली—क्या जाने वेटा, तेरे दादा आये हैं।

पांचकौड़ी—तुम्हारे साथ कुछ वात चीत नहीं हुई?

माता—जुदा होने की वातें हो रही हैं।

पांचकौड़ी—सच? दादा के आने पर भी झगड़ा नहीं मिटा।

माता—सिटाया कहां, बेटा ! और बढ़ा दिया, जुदा होना ठीक होगया ।

पांचकौड़ी—तुमने कुछ नहीं कहा ?

माता—बेटा ! मैने तो कहने सुनने में कुछ उठा नहीं रक्खा । मुझ से बोले—तुम लोगों ने मिल कर उसे पागल कर दिया, अब मैं क्या करूं, वह जुदा होना चाहती है, होनेदो।

पांचकौड़ी—तुम्हें ख़रच वरच देते हैं ?

माता—पांच रुपये महीना देने कहा है ।

पांचकौड़ी—और वहू दीदियों के लिए ?

माता—नहीं, उनके लिए कुछ नहीं ।

पांचकौड़ी—तो फिर कौन देगा ?

माता—भगवान ।

पांचकौड़ी—ख़ैर, अभी इन बातों का सोच करके मरने से क्या लाभ ? शचीश सो कर उठे और मैं गोद लेऊं तो चैन पड़े । मां ! शचीश कपड़ा, जूता पहन, ढोलक कांधे पर डाल कर बड़ा खुश होगा, क्यों मां ?

माता—होगा तो, परन्तु वह देवे जब ना ।

पांचकौड़ी—क्या नहीं देगी ?

माता—क्या जानूं देगी या नहीं ।

पांचकौड़ी—देने में बुराई क्या है ? मैं उसका काका हूं, वह मेरा प्राण है, उसे क्यों न देगी ? यदि मैंने बड़ी वहू का कोई अपराध किया हो तो गाली देलें परन्तु शचीश को क्यों नहीं देगी । वह क्या उन्हीं का है, मेरा नहीं ?

इसी समय शचीश को गोद में लिये हुए निस्तार वहां आ पहुंची पांचकौड़ी शचीश को देख दौड़ कर उसके पास गया और दोनों हाथ फैला कर उसे गोद में लेने लगा। शचीश भी बहुत दिनों बाद छोटे काका को देख कर उसकी गोद में फांद पड़ा और गरदन में दोनों बाहें डाल कर लिपट गया। पांचकौड़ी उसका मुख चूमते हुए कपड़ा तथा जूता पहनाने ले चला।

अपने कमरे के भीतर से बड़ी बहू सब दृश्य देख रही थी। शचीश को पांचकौड़ी की गोद में देख दौड़कर उस स्थान पर आई और निस्तार को डाट फटकार के, शचीश को पांचकौड़ी की गोद से ले लेने के लिए कहा।

निस्तार मुंह फुला कर पांचकौड़ी से बोली—देदो बाबू, मुन्ने को गोद से उतार दो। काका की गोद में देने से ऐसा होगा, यह जानती तो कौन रांड देती।

पांचकौड़ी ने निस्तार की बात पर कान नहीं दिया, लिये चला गया। यह देख कर बड़ी बहू ने आकाश सर पर उठा लिया। चिल्ला कर बोली—लड़के को देदो, नहीं तो महाभारत होगा। मुझे ये बातें अच्छी नहीं लगतीं।

निस्तार ने दौड़ कर शचीश को पांचकौड़ी की गोद से छीन लिया। शचीश निस्तार की गोद में चीत्कार करके रोने लगा। पांचकौड़ी ने छल छल नेत्रों से बड़ी बहू के मुख की ओर देखा और एक ठंडी सांस भर के माता के पास चला गया।

दूसरा परिच्छेद ।

दूसरे दिन संध्या को मुहल्ले के विष्णुचन्द्र सरकार जतीशचन्द्र के घर आये । वह जतीश चन्द्र के पिता के मित्र थे, और मुहल्ले के मुखिया समझे जाते थे ।

जतीशचन्द्र ने हुक्का भर कर उनके सामने रक्खा । हुक्का पीना आरंभ करके विष्णुचन्द्र बोले—अभी कितने दिन घर रहोगे ?

जतीशचन्द्र—कल जाने का विचार है ।

विष्णुचन्द्र—इस समय क्या वहां अधिक काम है ?

जतीशचन्द्र—हां, जिमींदार और किसानों में तनातनी थी, अब कुछ मिटी है, इससे एकदम से काम ही काम आ पड़ा ।

विष्णुचन्द्र—इस गड़बड़ में तुमने तो खूब कमाई की होगी ?

जतीशचन्द्र—बहुत तो नहीं, सामान्य हुई ।

विष्णुचन्द्र—खैर, मैं तुमसे एक बात कहने आया हूं, बहू कहां है ?

बहू का अर्थ जतीशचन्द्र की माता था ।

जतीशचन्द्र—वह तो अब इधर अधिक आतीजाती नहीं, उधर रसोई की ओर होंगी ।

विष्णुचन्द्र—उन्हें बुलाओ, मुझे जो कुछ कहना है उन्हीं के सामने कहूंगा।

जतीशचन्द्र ने निस्तार को बुला कर कहा—मां से कहदे कि काका बुलाते हैं।

निस्तार चली गई। पास ही खिड़की के पास बड़ी-बहू आकर खड़ी हो गई।

थोड़ी देर बाद माता आई और आकर पास ही खड़ी हो गई, बोली—क्या तुमने बुलाया है, देवर जी।

हुक्का अलग रख कर विष्णुचन्द्र बोले—हां, बहू मैं आया हूं। बहुत दिनों से घर की कुछ खोज खबर नहीं मिली थी। लोगों के मुंह से बहुत सी बातें सुनने में आईं, इसीलिए आया कि चलके देख आऊं क्या बात है।

माता—ख़बर लेकर क्या करोगे, देवर जी, अब वह घर नहीं रहा, मैं तो ईश्वर से रात दिन मनाती हूं कि मेरी मौत आजावे। परन्तु न जाने अभी और क्या क्या होना बाकी है।

मालकिन की आंखें जलपूर्ण होगईं।

विष्णुचन्द्र ने जतीश से पूछा—दानीश की कुछ ख़बर मिली?

जतीशचन्द्र—क्या जानें, पञ्चू गया था, कल आया है। मैंने तो कुछ सुना बुना नहीं।

विष्णुचन्द्र—क्यों? तुम्हारा भाई और तुमने उसका हाल नहीं पूछा।

जतीशचन्द्र—मैं इन झगड़ों में रहता नहीं, पूछ कर क्या करूं?

विष्णुचन्द्र—क्यों ? घर वार का माया मोह छोड़ कर वैराग्य ले लिया क्या ?

जतीशचन्द्र—न मैं तीन में न तेरह में, दो एक दिन के लिए घर आता हूं, खा पी कर वैठा रहता हूं।

विष्णुचन्द्र—कहां वैठे रहते हो, मां के पास ?

जतीशचन्द्र—नहीं।

विष्णुचन्द्र—तो फिर कहां ? क्या स्त्री के पास ?

जतीशचन्द्र—हां।

विशुष्चन्द्र—क्यों ?

जतीशचन्द्र—तो करूं क्या ?

विष्णुचन्द्र—करो क्यों नहीं। यदि स्त्री मां के साथ झगड़ा कर के एक जगह रहना नहीं चाहती, तो उसका महीना बाध दो। तुम तो मां के वेटे हो, मां के पास क्यों नहीं रहते ?

जतीशचन्द्र ने कुछ उत्तर नहीं दिया। विष्णुचन्द्र ने पूछा मां क्या खाती है ?

जतीशचन्द्र—मैं हर महीने पांच रुपये देता हूं।

विष्णुचन्द्र—घर का किराया ? अच्छा तुम्हारी भौजाइयां क्या खाती हैं ?

जतीशचन्द्र—यह मैं क्या जानूं ? सब को तो मैं दे नहीं सकता।

विष्णुचन्द्र—छिः छिः जतीश, समझदार होकर ऐसी बात कहते तुम्हें लज्जा नहीं आती ? तुम नहीं दे सकते तो

क्या वे भूखी मर जांयगी और तुम स्त्री को लेकर आनंद भोगोगे, खाओगे, पहनोगे ? तुम्हें चाहिए जो खाओ पहनो बांट कर खाओ । एक वेला उपवास करो, एक बेला खाओ परन्तु खाओ सब एक साथ । हिन्दू सन्तान का यही धर्म्म है।

जतीशचन्द्र—यह तो होता ही था।

विष्णुचन्द्र—तो फिर बंद क्यों हो गया ?

जतीशचन्द्र—सब ने मिल के एक आदमी को जलाना आरंभ किया । यदि थोड़ा सह लेते तो ऐसा क्यों होता ।

विष्णुचन्द्र—वह एक आदमी कौन ? तुम्हारी स्त्री ? सहने का उपदेश औरों को न देकर उसी को देते तो क्या बुराई थी ? वह तुम्हारी स्त्री है औरों से उस पर तुम्हारा ज़ोर ज्यादा है ।

जतीशचन्द्र चुप बैठे रहे ।

विष्णुचन्द्र—हमने सुना कि कल पञ्चू ने आकर तुम्हारे लड़के को गोद लिया, परंतु बड़ी बहू ने नहीं लेने दिया । क्यों, ऐसा क्यों हुआ ? जानते हो कि पञ्चू को इससे कितना दुख हुआ ?

जतीशचन्द्र—जिसका लड़का है वह यदि गोद में नहीं लेने देता तो इतना गोलमाल क्यों ?

विष्णुचन्द्र हंस पड़े । हंस चुकने पर गम्भीर होकर बोले—जतीश, अभी तक मैं तुम्हें आदमी समझता था परन्तु आज मालूम हुआ कि तुम जानवरों से भी गये गुज़रे हो । हाय, स्त्री कितनी भयंकरी होती है ! ख़ैर, मैं जो कुछ कहने आया हूं उसे सुनो ।

जतीशचन्द्र—क्या, कहिए ?

विष्णुचन्द्र—मैंने सुना है कि अवकी इस जिमीदार और किसानों के झगड़े में तुम्हें दो तीन सहस्र रुपये मिले—क्यों, सच है या नहीं ?

जतीशचन्द्र—नहीं, बिलकुल झूठ। पराया धन सदा अधिक दिखाई पड़ता है।

विष्णुचन्द्र—ख़ैर, उतना न सही कुछ कम होगा। अच्छा जो कुछ लाये हो उसमें से पांच सौ रुपये तुम्हें अपनी मां को देने होंगे। उन रुपयों से वह पञ्चू द्वारा खेती आदि कराकर घर का खर्च चलायेगी।

जतीशचन्द्र—इतने रुपये ?

विष्णुचन्द्र—हां ये तुम्हें देना ही पड़ेंगे।

जतीशचन्द्र—मैं इस बात का उत्तर आज नहीं दे सकता। कल दूंगा।

विष्णुचन्द्र—अच्छा यों ही सही। परंतु हमारी बात का उत्तर दिये विना कल चले न जाना।

यह कह कर विष्णुचन्द्र चले गये। जतीशचन्द्र की माता भी धीरे धीरे रसोई घर की ओर चली गई।

जतीशचन्द्र कमरे के अंदर गये। पीछे पीछे वड़बड़ाती हुई वड़ी बहू भी पहुंची।

जतीशचन्द्र ने कमरे में पहुंच कर स्त्री से पूछा—क्या तुम सब सुनती थीं।

मुँह चढ़ा कर, आंखें फिरा कर तथा उंगलियां नचा कर बड़ी बहू बोली क्यों सुनती क्यों नहीं, सब सुना। जैसा गांव, वैसे लोग, वैसे विचार।

जतीशचन्द्र—यह तो ठीक है। अब जो विष्णु काका कह गये हैं उसके लिए क्या कहती हो।

बड़ी—रुपये देने की बात ?

जतीशचन्द्र—हां।

बड़ी—एक पैसा भी नहीं। रुपये हमारे हैं हम क्यों दें। नहीं देंगे तो वह हमारा कर क्या लेंगे ?

जतीशचन्द्र—करेंगे तो क्या, परन्तु............

बड़ी—परन्तु क्या ? देना चाहते हो तो देदो, और मेरे शचीश के हाथ में ठीकरा देदो। हे भगवान, मेरे शचीश की ओर देखने वाला कोई नहीं।

जतीशचन्द्र—सुनोतो—सब लोग निन्दा करते हैं, धर्म्म की हानि भी होती है। इस बेर तीन सहस्र से अधिक रुपये लाये हैं उसमें से तीन सौ मां को देदो उससे वह खेत वेत करके अपना घर चलावे।

बड़ी—एक पैसा भी नहीं।

जतीशचन्द्र—हाय, कल पञ्चू को बड़ा दुख हुआ। उसकी बात सुन कर मेरा जी कलपता है।

बड़ी—ओहो, बड़े दयावान ! मैं एक पैसा भी नहीं दूंगी। मेरे शचीश को कोई एक मुट्ठी चने देने वाला भी नहीं है।

यदि आज वे लोग राजा हो जांय तो हमारे शाचीश को क्या।
वह कंगाल का लड़का है कंगाल ही रहेगा । उसमें से एक
पैसा भी नहीं मिलेगा—नहीं मिलेगा—नहीं मिलेगा।

जतीशचन्द्र चुपचाप सोचने लगे कि—बात तो झूठ
नहीं है। आज यदि हम मरजांय, तो शचीश को कौन पालेगा ?
उधर माता, भौजाइयां बिना अन्न मरी जा रही हैं। इधर स्त्री
भी ठीक कहती है। क्या करे क्या न करे ?

पास ही कोठरी में शचीश पड़ा सो रहा था—वह इसी
समय चीत्कार करके रोने लगा। जतीश दौड़ कर उसके
पास गये।

उस घर में एक मिट्टी का दीपक टिमटिमा रहा था।
उस क्षीण रोशनी से घर पूर्णतयः आलोकित नहीं हुआ था।
शचीश चिल्ला कर रोता रोता बोला—"ओबाबा—ऊहू—मेनी
ने कात खाया।" मेनी शचीश की पाली हुई बिल्ली थी।

शचीश ने चिल्ला चिल्ला कर मुहल्ला सर पर उठा लिया।
जतीशचन्द्र ने दौड़ कर उसे गोद में उठा लिया और चिराग़
के पास लेजाकर देखा, पैर के अंगूठे से झर झर खून वह
रहा था।

शचीश क्रमशः ज्ञान शून्य होने लगा, मुख तथा आंखें
नीलवर्ण होने लगीं।

जतीशचन्द्र ने स्त्री से कहा—देख तो बिछौने पर बिल्ली
है या नहीं ?

बड़ी वहू चिराग लेकर गई और देखा परन्तु तख्त पर
बिल्ली नहीं थी। तख्त के नीचे देखा—देख कर चिल्ला उठी

तख्त के नीचे एक बड़ा भारी काला सांप बैठा फुसकार रहा था।

जतीशचन्द्र भी देख कर चिल्ला उठे और शचीश को लेकर बाहर की ओर दौड़े। पीछे पीछे रोती हुई बड़ी बहू भी भागी।

जतीशचन्द्र बाहर आकर चिल्लाते हुए बोले—अरे पञ्चू दौड़, सर्वनाश होगया रे, शचीश को सांपने काट खाया।

पांचकौड़ी बाहर से आकर भोजन करने बैठा ही था। जतीश की आवाज़ सुन कर भोजन फेंक दिया और दौड़ कर आया। सब हाल सुनने पर छाती पीटता हुआ झाड़ने वालेको बुलाने दौड़ा। रामा सांप का अच्छा झाड़ने वाला था। पांच-कौड़ी उसे लेकर घर लौटा। परन्तु उस समय शचीशकी देह में प्राण नहीं थे। घर के सब लोग उसके पास बैठे छाती और सिर पीट पीट कर रो रहे थे। परन्तु हाय, जो जाता है वह हज़ार रोने पर भी पीछे फिर के नहीं देखता।

मुहल्ले के दस लोग जमा हुए और शचीश की कोमल देह उसके आत्मीय तथा स्वजनों से छीन कर श्मशान में फेंक आये। सर्पदष्ट देह को न जलाते हैं न बहाते हैं, केवल श्मशान में जाकर रख आते हैं। अतएव शचीश की देह के साथ भी ऐसा ही व्यवहार किया गया।
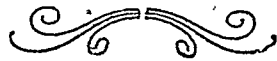
॥ तीसरा परिच्छेद ॥

अंधकार ने अभी संसार का पीछा नहीं छोड़ा था। आकाश में दो चार नक्षत्र अब भी विराजमान थे। इस समय भी निशाचर प्राणिगण इधर उधर विचरण कर रहे थे। अब भी वायु उषा के आगमन की प्रतीक्षा करती हुई मन्द मन्द वह रही थी।

इसी समय अपने व्यथित विदीर्ण हृदय को दोनों हाथों से थामे पांचकौड़ी श्मशान में आकर खड़ा हुआ। जान पड़ता था कि वह शचीश को ढूढने आया है। गत रात्रि को वह अपने जीवन धन शचीश की देह को इसी स्थान पर फेकगया था। परन्तु कहां ? वह देह कहां गई। सर्वत्र शून्य।

श्मशान तट को धोती हुई नदी समुद्र से मिलने चली जारही है। शून्य वायु हो हो शब्द करके वह रही है। कहीं कहीं पर कुत्ते, शृगाल मनुष्यों की देह का कलेवा कर रहे हैं। "शचीश—प्राणाधिक शचीश, तुझे गोद में लिये वहुत दिन हो गये—अब क्या तू नहीं आवेगा ? हाय—मेरी गोद शून्य हो-गई"। पांचकौड़ी ने यह शब्द चिल्ला चिल्ला कर कहे परन्तु किसी ने उसकी बात का उत्तर नहीं दिया।

बुलाने पर भी कोई उत्तर न पाकर पांचकौड़ी ने सोचा कि—शचीश के विना जगत में रहने से क्या लाभ ?

वह संसार छोड़ गया, क्या मैं नहीं छोड़ सकता ? इसी जल-प्रवाह के नीचे सोने से सारी ज्वाला शीतल हो जायगी। परन्तु आत्म-हत्या पाप है। ऐं, पाप ? पाप क्या वस्तु है ? क्या पाप की ज्वाला इस ज्वाला से अधिक असह्य होती है ? हाय, किसी ने नहीं देखा कि इस हृदय पर क्या बीत रही है। हा भगवान, तुमतो मङ्गलमय कहे जाते हो। फिर तुम्हारे राज्य में यह अमङ्गल कैसा ? दयानिधि ! इस समय आप दया-शून्य क्यों होगये ? यदि शचीश को इतनी शीघ्र ही बुला लेना था तो उसे संसार में भेजा ही क्यों ?

अबकी बेर पांचकौड़ी की बात का उत्तर मिला। उस पार से मानों किसी ने चिल्ला कर कहा—इस ध्वंस नीति का कारण निष्ठुरता नहीं है। ध्वंस बिना सृष्टि कैसे हो सकती है?

पांचकौड़ी कातर होकर बोला—हमारे प्राणों से उसे अलग करके क्या लाभ हुआ ?

उत्तर मिला—मोहांध युवक ! हमारा तुम्हारा क्या करते हो ? जड़ और अजड़ सब समान हैं, शोक क्यों ? कौन आता है और कौन जाता है ? सब माया, सब भ्रान्ति। उसे भूल जाओ।

किसको ? शचीश को ? नहीं, कदापि नहीं। वह मेरा प्राण है।

सब मिथ्या। जब आया, तब बुलाया नहीं था। जब गया तब जाने को नहीं कहा। जाओ, आशा छोड़ो—सब भूल है।

तो शचीश ! एक बेर मेरी गोद में आजा ! तेरी मां ने तुझे मेरी गोद में नहीं आने दिया।

ठीक इसी समय पांचकौड़ी के पीछे कोई आकर खड़ा होगया। पहले तो अंधकार में पांचकौड़ी ने नहीं पहचाना परंतु अच्छी तरह देखने पर ज्ञात हुआ कि वह उसके बड़े दादा जतीशचन्द्र हैं। जतीश कम्पित कंठ से बोले—प्राणाधिक पांचकौड़ी! मैं नहीं जानता था कि तू शचीश को इतना चाहता है। आ भाई, आज हम दोनों एक ही तीर्थ के यात्री हैं।

जतीशचन्द्र ने पांचकौड़ी की गरदन में अपनी बाहें डालदीं और बालक की भांति चिल्ला चिल्ला कर रोये। पांचकौड़ी भी रोने लगा। तत्पश्चात दोनों भाई घर लौट गये।

जतीश ने माता को बुला कर कहा—मां, जिसके लिए धन सञ्चय करते थे वह चला गया। जान पड़ता है कि हम स्त्री पुरुष उसके काका काकी को धोका देते थे. उसके अकेले के लिए जोड़ जोड़ कर रखते थे इसीलिए वह वंश-तिलक हम दोनों से घृणा कर छोड़ कर चला गया। मां! आज मैं और पञ्चू एक ही साथ भोजन करके जन्म भर के लिए जहां नौकरी करता हूं वहां चले जायंगे। जो पायेंगे हर महीने भेज देंगे। अब शचीश-हीन घर नहीं लौटेंगे।
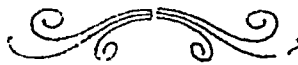
॥ चौथा परिच्छेद ॥

जतीशचन्द्र पुत्र की मृत्यु से बड़े अधीर हो उठे। उनकी माता ने उन्हें तीन चार दिवस तक काम पर नहीं जाने दिया। इन तीन चार दिन में उनके घरबार की अवस्था में बड़ा परिवर्तन हो गया। जतीशचन्द्र अब पृथक रहना स्वीकार नहीं करते। बड़ी बहू पुत्र शोक में पागल सी होगई थी, उन्हों ने भी इस ओर विशेष ध्यान नहीं दिया। अब सब लोगों का रहन सहन पूर्ववत ही होगया था। छोटी बहू पुत्रशोकातुरा बड़ी बहू की सेवा शुश्रुषा में लगी थी।

शचीश की मृत्यु का संवाद पाकर बड़ी बहू की विधवा भ्रातृ बधू, अपने पुत्र रामसेवक को (जिसकी वयस पच्चीस वर्ष की थी) लेकर आई।

जतीशचन्द्र अपने कमरे में बैठे बड़ी बहू को समझा बुझा रहे थे। इसी समय उनकी सलहज तथा सलहज-पुत्र ने कमरे में प्रवेश किया। उनको देख कर पुत्र-हारा बड़ी बहू हाहाकार करके रो उठी। आंचल से मुंह ढक रामसेवक की माता भी रोने लगी।

बड़ी बहू रोते रोते बोली—हाय, बहू! मेरा सर्वनाश हो गया। मेरा घर सूना, गोद सूनी, छाती सूनी।

रामसेवक की माता अनेकानेक पौराणिक कथायें कह कर ननद को प्रबोध देने लगी। उपसंहार में रामसेवक का हाथ पकड़ और उसे बड़ी बहू के पास बिठाकर बोली—यह भी शचीश का भाई है, तुम्हारे भाई का लड़का है इसे आज से अपना समझ गोद में लेलो—अब यह तुम्हारा ही है, मेरा नहीं।

बड़ी बहू ने इसका कुछ उत्तर नहीं दिया। जतीशचन्द्र बाहर चले गये। थोड़ी देर बाद निस्तार रामसेवक और उनकी माता को भोजन करने के लिए बुला ले गई।

भोजन करते समय जतीशचन्द्र माता से बोले—मां, जो भाग्य में था होगया। मैं अब शचीश शून्य घर में क्षण भर भी नहीं रह सकता। मैं आज रात को अवश्य चला जाऊंगा। वहां काम काज भी बहुत करना है।

माता रोते रोते बोली— अब कब घर आवेगा?

जतीशचन्द्र—कुछ कह नहीं सकता, जान पड़ता है अब घर आना नहीं होगा।

माता—हाय ऐसी बात ना कहो।

जतीशचन्द्र— पूजा में आना नहीं होगा। और आऊं किस के लिए? जिसके देखने के लिए आता था वह तो चला गया अब आके क्या करूंगा? एक बात कहे जाता हूं।

माता—क्या?

जतीशचन्द्र—पञ्चू के विवाह की बात चीत लगाओ, मेरी राह न देखना। क्षितीश को घर बुलाने की चेष्टा करना। रामसेवक और उनकी माता आही गई हैं, जल्दी जांयगी भी

नहीं। इसके लिए कुछ सोच न करना, जिसके लिए जोड़ जोड़ रखता था उसने धोखा दिया। अब जो कुछ पाऊंगा भेज दिया करूंगा। उसी से घर का खर्च चलाना।

माता—तुम ठीक समझोगे वही होगा! अब बहुत दुख मत करो भगवान को ऐसा ही करना था।

जतीशचन्द्र—(ठंडी सांस भर के) भगवान का क्या दोष है, मां—सब अपने कर्मों का फल है।

रात को जतीशचन्द्र ने स्त्री को इस प्रकार समझाया—हम दोनों बड़े अज्ञान हैं। हमने कुलतिलक शचीश को सब से विच्छिन्न करके रखना चाहा था—इसीलिए वह हम से विरक्त होकर चला गया। अब सब के साथ मिल जुल कर शेष जीवन व्यतीत करदो।

बड़ी बहू ने यह बात अस्वीकार नहीं की।

प्रातः काल होने के पूर्व उठ कर जतीशचन्द्र ने पांचकौड़ी को बुलाया और बोले—जब तक भोर न हो मेरे साथ चल। भोर होनेपर तू लौट आना।

पांचकौड़ी एक मोटी सी लाठी लेकर दादा के पीछे पीछे चला।

दोनों भाई चुप चाप चले जाते थे। दोनों ही भाइयों के हृदय असह्य यातना पूर्ण थे। चारों ओर सन्नाटा छाया था। समस्त ग्राम शान्तिमय था। केवल इन दो भाइयों के हृदय में शान्ति नहीं थी, उस समय उनका हृदय अशान्ति तथा विषाद पूर्ण था।

क्रमशः वे दोनों गांव, खेतादि पार करके नदी पर पहुँचे। पूर्व दिशा में उषा आगमन के चिन्ह दिखाई पड़ने लगे। चन्द्रमा की रोशनी मलीन होगई।

जतीशचन्द्र गद्गद कंठ होकर पांचकौड़ी से बोले—अब तू लौटजा, भोर होने वाला है, मैं जाता हूं। हर महीने जो पाऊंगा भेज दिया करूंगा।

पांचकौड़ी रुद्ध कंठ से बोला—मैं अब घर में नहीं रहूंगा। जिसके लिए रहता था, वह चला गया। पागल का बंधन शचीश संसार में नहीं। शचीश शून्य घर में रहना असह्य होगया।

दादा! आप बड़े हैं घर के लिए जो ठीक समझना करना मैं अब घर पर नहीं रहूंगा।

जतीशचन्द्र की आंखों से आंसू बहने लगे, उनका कंठ रुद्ध होगया। कठिनता पूर्वक बोले—पञ्चू भाई! इतने दिनों तक मेरा हृदय भ्रांति मोह जाल में फंसा हुआ था। मेरी आंखों पर माया का परदा पड़ा हुआ था। ईश्वर ने शचीश को उठा कर वह परदा हटा दिया। मुझे यह बता दिया, कि स्वार्थांध होकर कार्य करने का यही परिणाम होता है। ना, भाई, तू कहीं मत जाना। मैंने तेरे साथ बड़े दुर्व्यवहार किये हैं। "बड़ी बहू ने शचीश को तेरी गोद में नहीं जाने दिया" यह सुनकर भी प्रतिकार नहीं किया वरन् अपनी अनुमति ही दी। मेरा अपराध, भाई मेरा यह बड़ा अपराध क्षमा करना।

क्षमा, दादा आप मुझसे क्षमा क्यों मांगते हैं? मैं आप का छोटा भाई—

पांचकौड़ी आगे कुछ न कह सका। जतीशचन्द्र उस से लिपट गये और उसका मुख तथा सिर चूमने लगे।

वह एक अपूर्व दृश्य था। विराट अनन्त सीमाहीन आकाश के नीचे वह दृश्य बड़ा मधुर था। वह दृश्य पवित्र भ्रातृ प्रेम का अद्वितीय चित्र था।

इसके पश्चात् अश्रुपूर्ण नयनों से दोनों भाई एक दूसरे से विदा हुए।

सूर्य निकलते निकलते पांचकौड़ी घर लौट आया। उस को जान पड़ता था कि शचीशाभाव से सारा घर हाहाकार कर रहा है। पांचकौड़ी बड़ी बहू के पास गया। वह उस समय पड़ी रो रही थी। पांचकौड़ी ने करुणा स्वर से कहा—बहू! उठो, रोने धोने से क्या होगा। शरीर देने पर भी वह खोया हुआ रत्न नहीं मिलेगा यदि मिलता तो पांचकौड़ी अपना निरर्थक शरीर देकर कभी का ले आया होता।

बड़ी बहू उठ कर बैठ गई और उच्च स्वर से रोकर बोली—वह तुम्हारे पास दौड़ कर जाता था, मैं अभागिनी उसे जाने नहीं देती थी, इसी से वह विरक्त हो मुझे छोड़ कर चला गया। हाय! शचीश बेटा, तू कहां चला गया, एक बेर लौट आ। देख तेरा काका तेरे घर आया है। आजा बेटा, अब मैं तुझे काका के पास जाने से नहीं रोकूंगी।

किसी ने उसकी बात का उत्तर नहीं दिया। पांचकौड़ी की आंखें भीग गई, उसने कपड़े से मुँह ढक लिया।

रामसेवक की मां उस स्थान पर आकर पांचकौड़ी से बोली—भजी तुम इन्हें अब वे बातें याद दिला कर न रुलाओ।

जिससे ये उसे भूलें वही करो नहीं तो वेही बातें याद कर कर के सारा दिन रोया करगी। (रामसेवक से) रामा, आ अपनी बुआ के पास बैठ आके। तुझे देख के कलेजा ठंडा होगा (पांचकौड़ी से) जाओ जी, तुम बाहर जाओ। पांचकौड़ी बाहर चला गया।

उसी दिन यह ठीक होगया कि रामसेवक और उनकी माता उस घर में स्थाई होकर रहेंगी और रामसेवक अपनी पुत्र-हारा बुआ के पालक पुत्र होकर शचीशाभाव की पूर्ति करेंगे।

इस व्यवस्था से पांचकौड़ी संतुष्ट न हुआ, उसकी माता तथा और दूसरों को भी यह बात अच्छी न लगी। परन्तु बड़ी बहू की कार्रवाई के प्रतिकूल कुछ करने का किस में साहस था।

इस घटना के पन्द्रह दिवस उपरांत पांचकौड़ी को दानीशचन्द्र का एक पत्र मिला। उन्होंने लिखा था:—

बहुत दिन हुए तुम्हारा पत्र नहीं मिला। हमने सुना है कि दादा का लड़का मर गया है—बड़ा दुख हुआ। परन्तु क्या किया जावे, ईश्वर के कार्य में बाधा देने वाला कौन है। हम ख़र्च नहीं भेज सके इसके अनेक कारण हैं। हम नौकरी छोड़ कर कलकत्ते आगये हैं। यहां एक बड़ा दवाख़ाना खोला है। परन्तु अकेले सब काम नहीं देख सकते। घर पर तुम्हारा भी कोइ विशेष काम नहीं। पत्र पढ़ते ही यहां चले आओ। तुम्हारे रहने से काम में बड़ी सुविधा होगी। दूसरे के ऊपर विश्वास नहीं कर सकते, तुम्हारे ऊपर भार रख कर निश्चिंत रहेंगे। घर की ख़बर लिखना।

आशीर्वादक

दानीश

पांचकौड़ी ने पत्र पढ़ कर सबको सुनाया। बड़ी बहू ने अच्छा बुरा कुछ उत्तर नहीं दिया। इस समय वह किसी झगड़ों में नहीं थी। दूसरे लोग भी पुत्र शोकातुरा जननी को किसी झगड़े में लिप्त नहीं करना चाहते थे।

पांचकौड़ी की माता भी शचिश के शोक में पड़ी रहती थी। तथापि उतको सब कामों की देख भाल करना ही पड़ती थी। वह बोली—लड़के पर से भूत उतर जाए तो अब भी अच्छा है तू जा। मुज़फ्फरपूर छोड़ा है, जान पड़ता है। अब अच्छा ही होगा छोटी बहू ने कितने ही देवी देवता मनाए थे, हे काली माता! तुम्हारे चरणों पर छाती का रक्त चढ़ाऊंगी, उनकी मत फेरदो। हे भगवान, तुम्हारा सवा पांच आने का प्रसाद चढ़ाऊंगी, उन्हें सुमति दो। हे सत्यनारायण बाबा एक बेर अभागिनी पर दया करो तुम्हारी कथा कराऊंगी।

नहीं मालूम उस सरला की छाती के रक्त, सवा पांच आने के प्रसाद का लोभ करके भगवान ने उसकी ओर दृष्टि फेरी या नहीं, परन्तु सर्व सम्मति से पांचकौड़ी का जाना ठीक होगया। पांचकौड़ी भी, शचीश हीन घर को छोड़ कर शांति पाने के लोभ से, उसी रात को कलकत्ते चल दिया।

पांचकौड़ी के चलते समय छोटी बहू की बड़ी इच्छा हुई कि कहला भेजे कि—"एक बेर केवल एक दिन के लिये आकर घर हो जावें।" परन्तु लज्जा के मारे कुछ न कह सकी हृदय की हृदय ही में रही।

॥ पांचवां परिच्छेद ॥

—०—
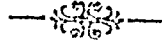
अब कुछ क्षितीशचन्द्र का वृत्तांत लिखना आवश्यक है। क्षितीशचन्द्र की ससुराल से रामपूर की बाज़ार लगभग डेढ़ कोस पर है। छः रुपये मासिक वेतन के लिए क्षितीशचन्द्र प्रातःकाल नौबजे वहां जाते हैं और दिन भर काम करके संध्या को आठ बजे घर लौटते हैं। मुँह अंधेरे उठ कर वे अपने साले की भूमि का कार्य सम्पादन करते हैं। खेतों खेतों घूम कर कार्य समाप्त करने के बाद घर लौट कर स्नान करते हैं और बासी, ताज़ा, ठंडा, गरम, जैसा मिलता है खा पी कर रामपूर चले जाते हैं। किसी दिन केवल जलपान ही करके जाना पड़ता है।

आज रामपूर की बाज़ार है। सप्ताह में दो बेर बाज़ार लगती है। इस बाज़ार में प्रायः सब प्रकार के खाद्य पदार्थ मिलते हैं। आस पास के सब लोग यहीं से लेजाया करते हैं।

रात के नौ बज चुके थे। कृष्ण पक्ष की रात थी, आकाश में काली घटा छाई हुई थी; टपाटप वर्षा हो रही थी।

इसी समय, कांधे पर तरकारी की पोटली, हाथ में एक मछली, बग़ल में धुले कपड़े लिये क्षितीशचन्द्र रामपूर की बाज़ार से घर लौटे।

हरचरण घर में बैठे माता तथा बहनों से आनंदालाप कर रहे थे।

क्षितीशचन्द्र के पैर नंगे और कीचड़ में भरे हुए थे, समस्त शरीर पानी में भीगा हुआ था। क्षितीशचन्द्र की उस मूर्त्ति को यदि उनकी माता तथा भाई देखते तो उनकी आंखें भीग जातीं। किन्तु उस मूर्ति को देख, हरचरण खिलखिला कर हंस पड़े। हरचरण की माता भी हंसी और व्यङ्ग स्वर से बोली "आओ जी कमाऊ पूत"। क्षितीश की स्त्री मुँह चढ़ा कर अलग हट बैठी। क्षितीश का बोझ किसी ने नहीं उतारा। वह अत्यन्त व्यथित हुए। धीरे धीरे बोझ उतार कर करुणा स्वर से बोले— मां, दुर्गा, तेरे मन में अभी क्या क्या है ?

हरचरण ने हंसते हुए पूछा—क्यों जी क्या हुआ ?

क्षितीश—(विरक्त स्वर से) कर्म्मों के फल हैं और होगा क्या ?

हरचरण—तुम बड़े बोंड़म हो, इतनी रात क्यों करदी ? यह पैर में क्या हुआ ?

क्षितीश—अंधेरे में ठोकर लग गई अंगूठा छिलगया।

हरचरण—ओहो ! तमाखू पियोगे ?

क्षितीश—हां, बुराई क्या है ? पहले ज़रा दम लेलूं।

हरचरण—क्या क्या लाये ?

क्षितीश—मछली, आलू, सभी कुछ लाया हूं।

हरचरण—और हमारी चीज़ ?

"हमारी चीज़ का अर्थ अफ़ीम था"। हरचरण अफ़ीम खाया करते थे।

क्षितीश—हां लाये तो हैं परन्तु थोड़ी।

हरचरण—कितनी ?

क्षितीश—चार आने भर।

हरचरण—इतनी कम क्यों ?

क्षितीश—पास पैसे नहीं थे। इस महीने के रुपये पहले ही लेकर दे दिये थे। आज जो कुछ पाया उसकी यह सब चीज़ ले आया।

तुम में यही बड़ा दोष है कि सब आगे ही से लेकर खा पी जाते हो।

क्षितीश—भूक बहुत है।

हरचरण—धुले कपड़े लाये हो ?

क्षितीश—हां लाया हूं।

हरचरण—तमाखू पियो, तमाखू लाये हो ?

क्षितीश—लाया हूं, परन्तु थोड़ा ठैर जाओ, दम लेलूं तो भरूं।

हरचरण—तुम्हारे शरीर में इतना आलस्य क्यों है ? आलसी आदमी बड़ा बुरा होता है। पहले चिलम भरदो फिर हाथ पैर धोके कपड़े उतारो।

क्षितीशचन्द्र—समझ गये कि हरचरण को इस समय अफ़ीम की तलब लगी है बिना चिलम भरे छुटकारा नहीं होगा। इस कारण उसी समय चिलम भर और हुक्का ताज़ा करके पहले एक दो बेर स्वयं पी चुकने के बाद हरचरण को दिया, तत्पश्चात हाथ पैर धोये और कपड़े बदल डाले।

सास बोली—आज हम सब घोष महाशय के न्यौते गये थे, तुम्हारा भी न्यौता था। तुम्हारा जाना तो हुआ नहीं। देर को खाने से इस वेला हरी और शिबू तो खांयगे नहीं। तुम्हारे अकेले के लिए बनने से रहा—तुम चिड़वे चबालो। क्यों है न ठीक ?

"सब ठीक ही है" क्षितीशचन्द्र ने मुख से तो यह कह दिया परन्तु भीतर से उनका हृदय बड़ा व्यथित हुआ।

यथा समय दो मुट्ठी चिड़वे, आध पाव दूध, और थोड़ा सा गुड़ मिला। क्षितीशचन्द्र। ने चुप चाप बैठकर उनका सद्-व्यवहार किया। खा पी कर क्षितीशचन्द्र अपने शयन घर में पहुंचे। उन्हें देखते ही मझली वहू ने पूछा—लाये ?

अत्यंत नम्र तथा करुण स्वर से क्षितीशचन्द्र ने उत्तर दिया—नहीं।

"नहीं ? अच्छा !" कह कर मझली वहू उछल कर शय्या पर बैठ गई और एक तकिये को पटक कर बोली—यम, तुम मुझे उठा क्यों नहीं लेते ? मेरे ऐसी भागों फूटी को तुम भी नहीं पूछते। कितनी ब्रह्महत्या, कितनी गोहत्या की थी जो ये दिन देखना पड़े। हा भगवान ! मैंने कौन से पाप किये थे ?

यह कह कर मझली वहू फिर शय्या पर लेट रही।

अतिशय कातर होकर क्षितीशचन्द्र बोले—सुनो, हमारी बात तो पहले सुनो. इसमें हमारा कोई अपराध नहीं। पैसे रहते क्या मैं तुम्हारे लिए कपड़ा न लाता ? ऐसा कभी हो सकता है ? परन्तु क्या करूं ? बड़े कष्ट में हूं। भगवान ने यदि

कभी मेरी ओर दृष्टि फेरी तो सब दुख दूर हो जायगा, नहीं तो यह जीवन वृथा ही गया।

"अधिक आदर का काम नहीं, खूब आदर देखा। मेरे भाग ही फूटे हैं। मेरी करनी ही बुरी है। मैं बड़ी वेहया हूं जो तुम्हारे ऐसे कंगालों से चीज़ लाने के लिए कहती हूं" यह कह कर मझली बहू ने दूसरी ओर करवट फेरली।

क्षितीश बोले—क्या करूं, महीने में छः रुपये मिलते हैं। उसमें से हाट बाज़ार का खर्च मुझी को देना पड़ता है। एक बाज़ार में एक रुपये से कम नहीं लगता। तुम्हारे दादा एक पैसा भी नहीं देते।

शय्या पर पैर पटक कर मझली बहू बोलीं—तुम्हारा ऐसा कङ्गाल संसार में दूसरा नहीं। दादा दो दो आदमियों को तो खिलाते हैं अब और क्या अपना मांस नोच के दे दें। एक पैसे की मछली, चार ठो आलू लाने में ये नकतोड़े। अच्छी बात है अब न लाना। तुम्हें जहां ठिकाना हो चले जाओ। मेरे भाग में जो बदा है वह होगा।

क्षितीश ने इसका कोई उत्तर नहीं दिया और शय्या पर लेटने के लिए अग्रसर हुए। यह देख कर मझली बहू बोलीं—बस बस मेरी शय्या पर पैर न धरना। तुम्हें जहां ठौर हो वहां जाकर पड़ो। मेरे पास पड़ने का काम नहीं।

क्षितीशचन्द्र—ठिठुक गये, उनका साहस नहीं हुआ कि शय्या पर चढ़ें।

शय्या पर स्थान न पाकर क्षितीश नीचे ही पड़ रहे।

॥ छठा परिच्छेद ॥

प्रातः काल उठ कर हरचरण ने चितीशचन्द्र से कहा—खेत में मजूर जाते हैं कुछ मज़दूरों को दक्षिण दिशा वाले खेत में, और कुछ मज़दूरों को हज़ार तले वाले खेत में लगा कर, पीछे तुम काम पर जाना।

चितीशचन्द्र इतस्ततः करके बोले—इन दोनों खेतों में काम बताते बताते दोपहर हो जायगी, फिर काम पर कब जांयगे। कई दिन से देर को जाते हैं इस कारण वे कल बकते थे।

हरचरण—तो इसको मैं क्या करूं? यह काम भी तो देखना चाहिए। छः रुपये में तो दो आदमियों का पेट चलता ही नहीं।

चितीशचन्द्र ने इसका कुछ उत्तर नहीं दिया और कांधे पर चादर डाल कर चल दिये।

दस बजने के बाद, थके, मांदे, पसीने में लथपथ चितीश चन्द्र जब घर लौटे तो देखा कि घर में बड़ी हलचल मची हुई है। कारण पूछने पर ज्ञात हुआ कि हरचरण के बड़े बह-नोई आये हैं। उनका नाम राई चरण दे था। वे ढाकेके एक मिल में नौकर थे। वहां चोरी आदि की सुविधा होने से उन की खूब कमाई होती थी। वयस लगभग पचास वर्ष। देखने में दीर्घाकार। थोड़े दिन एक पाठशाला में दो एक पुस्तकें पढ़ी

थीं। लिखना पढ़ना चाहे जैसा हो परन्तु उनकी कमाई खूब होती थी, उनकी स्त्री के शरीर पर अनेक प्रकार के गहने थे। इस कारण उनका बड़ा सम्मान होता था। बहुत से स्त्री-पुरुष उन्हें घेरे बैठे थे। वे सब से हंस हंस कर बातें कर रहे थे। हरचरण की माता सुयोग्य जमाई के भोजनादि का प्रबंध करने में जुटी थी।

क्षितीशचन्द्र ने आकर उन्हें प्रणाम किया। राईचरण चिट्ठी पत्री द्वारा क्षितीशचन्द्र से परिचित थे इसलिए हंस कर बोले—कहो भाई, कैसे हो ?

क्षितीश—एक प्रकार से अच्छा ही हूं।

राईचरण—कहां गये थे ?

क्षितीश—खेत। कुछ मजूर मिले थे, इसलिए उन्हें काम बताने गया था।

राईचरण—अच्छी बात है, हरी बाबू की सहायता करना ही चाहिए।

क्षितीश—घर पर तो सब कुशल है ?

राईचरण—हां सब कुशल है।

क्षितीशचन्द्र ने जल्दी से हुक्का भरा और पहले आप पीकर राईचरण को दिया। तत्पश्चात शीघ्रता पूर्वक स्नान करके रसोई घर में गये और सास से पूछा—भात बन गया ?

नाक फुला कर सास बोली—ऐसे में भात कैसे बने ? जमाई आये हैं, देखा नहीं क्या ? तुम्हारे शरीर पर मानुष का चमड़ा नहीं है क्या ?

क्षितीश—मुझे बाज़ार जाना है।

सास—तो क्या करूं? एक दिन न जाओगे तो क्या होगा?

क्षितीश—आज एक आवश्यक कार्य था।

सास—तो इस कहने से क्या होगा? भात होने में अभी देर है। पहले राई चरण का भोजन बन लेगा तब तुम्हारा भात चढ़ेगा।

क्षितीश—तो आज जाना नहीं होगा। जल पान करने के लिए कुछ है?

सास—नहीं, जल्दी में कुछ नहीं बन सका। गुड़ है, लेकर खालो।

क्षितीशचन्द्र गुड़ खा, और पानी पीकर देवी मंदिर चले गये। उस दिन काम पर नहीं जासके इस कारण उनका जी कलपता था।

कारण यह था कि उस दिन कई आवश्यक कार्य थे। मालिक ने जल्दी आने के लिए कहा था। परन्तु जांय कैसे? कल इसी समय भोजन किया था। शामको केवल चिउड़े चबा कर ही रहना पड़ा था, इस समय भूक के मारे उनके पेट में दर्द हो रहा था।

राईचरण ने स्नान करके लस्सी पी और दो तीन रस-गुल्ले खाये। इसके पश्चात पान चबाते हुए देवी मंदिर में आये। हरचरण भी स्नान और जलपान करके वहीं आगये। मुहल्ले के, श्यामा चरण, हरीदास, और विमल कुमार भी आकर बैठे। सर्व सम्मति से हुक्का भरने का भार क्षितीश

चन्द्र पर पड़ा। वे हुक्का भर के लाये। इसके बाद ताश खेलना आरंभ हुआ।

डेढ़ घंटे बाद राईचरण और हरचरण भोजन के लिए बुलाये गये।

क्षितीशचन्द्र ने पूछा—मैं भी चलूं क्या ?

उत्तर मिला—नहीं, तुम्हारा अभी नहीं बना।

क्षितीशचन्द्र ने अप्रसित होकर अपना म्लान मुख दूसरी ओर फेर लिया। राईचरण और हरचरण भोजन करने चले गये।

श्यामाचरण बोले—क्षितीशचन्द्र तुम कब भोजन करोगे?

क्षितीशचन्द्र बोले—जब मिलेगा।

विमल—समझे नहीं। कलाऊ जमाई आये हैं। उनके लिए अच्छा अच्छा भोजन बना है। हरचरण भी उन्हीं के साथ खांयगे। और ये घर के नौकर हैं कि नहीं, इनके लिए मोटा भात अभी नहीं बना।

श्यामा—बुरा न मानिएगा, क्षितीश बाबू, आप तो लिखे पढ़े समझदार हो। आप की वंश मर्यादा भी बहुत है। आप यहां क्यों पड़े हैं ? जब आप के घरबार है तो वहां क्यों नहीं रहते ? यदि भाइयों से नहीं पटती तो अलग रहिए। परंतु यहां पड़े अपमान सहन क्यों करते हो ? ससुराल की गुलामी क्या बड़ी अच्छी लगती है ?

क्षितीश ने इस बात का कोई उत्तर न दिया।

अनेकक्षण उपरांत राईचरण और हरचरण बाबू भोजन करके लौटे। हरचरण ने क्षितीश से कहा—जाओ तुम भी भोजन कर आओ। हुक्का लेते जाओ, भर कर पहले बुढ़िया के हाथ भेजदेना फिर भोजन करने बैठना।

अत्यन्त म्लानमुख से हुक्का लेकर क्षितीशचन्द्र घर के भीतर गये और साले साहब की आज्ञा का पालन करके भोजन करने बैठे।

उनके लिए मोटा भात बना था। कल अपने दाम खर्च करके बड़े कष्ट से मछली लाये थे, उसमें से एक टुकड़ा भी उन्हें नहीं मिला। सास महारानी ने यह कह कर समझा दिया कि राईचरण बहुत दिनों के बाद आये हैं. जो मछली कल लाये थे वह काम में आगई। हरचरण भी साथ बैठ गया था उसे भी देना पड़ी। थोड़ी सी रक्खी है वह शिबू खायगी।

इस युक्ति और इस विचार पर कोई तर्क न चलता देख क्षितीश ने भात. दाल. और कुछ तरकारी से पेट भर लिया। घी उन्हें कभी नहीं मिलता था—आज भी नहीं मिला।

—❖—

॥ सातवां परिच्छेद ॥
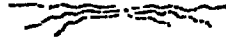
रात को आहारादि करके क्षितीशचन्द्र शय्या पर लेटे। लेटे लेटे बड़ी देर होगई परंतु उनकी स्त्री नहीं आई। रसोई घर का दीपक बुझ चुकाथा। सब अपना अपना कार्य समाप्त करके अपने अपने स्थान पर चले गये थे। क्षितीशचन्द्र निकल कर बाहर आये।

उनके शयन घर के पास वाले कमरे से स्त्री-कंठ की गान ध्वनि आ रही थी। वह स्वर उनका चिरपरिचित—उनकी स्त्री का कंठस्वर था।

खिड़की खुली हुई थी। झांक कर देखा। शय्या पर राईचरण अर्द्धशयनावस्था में—पास ही उनकी (क्षितीश की) स्त्री बैठी प्रेम गान कर रही थी। क्षितीश को यह बात अच्छी न लगी। परंतु स्त्री को बुला भी नहीं सके। सब ही इस प्रकार बैठ कर गाती हैं। वे उस स्थान पर से हट भी न सके। चुप चाप खड़े देखते रहे।

इसी समय हठात उनकी सास उस स्थान पर आगई। क्षितीश को उस स्थान पर खड़े झांकते देख जल ही तो गई। धीरे से क्षितीश को बुला कर बोली—सुनो तो जी।

क्षितीश ने पीछे फिर के देखा। उनकी सास उन्हें बुला कर उन्हीं के कमरे में लेगई।

वहां पहुँचने पर आंखें चढ़ा कर बोली—क्यों जी, वहां खड़े क्या देखते थे ?

क्षितीश—कुछ नहीं बाहर जाता था, इसी कारण एक वेर उधर भी दृष्टि चली गई।

सास—भला इस प्रकार खड़े होकर झांकना चाहिए। बहनोई के साथ साली क्या करती है, यह आड़ में खड़े होकर कौन देखता है ?

क्षितीश—ना मां, मैं तो यह जानता हूं कि भले मनुष्यों के घर में बड़े बहनोई को बड़े भाई की तरह और छोटे को छोटे भाई की तरह मानते हैं। मेरे लिए यह व्यवहार नूतन है।

सास—(आग होकर) हां, हां, हम सब तो बाज़ार की वेश्या हैं इसीलिए ऐसा करती हैं। तुम्हारी मां बहनें सती, और हम सब असतीं।

क्षितीश (भयभीत होकर विनय पूर्वक) मां, मुझे क्षमा करो, मैंने कोई बुरा काम तो किया नहीं केवल एक वेर उधर देखा था।

सास का क्रोध शांत नहीं हुआ, बोली—तो क्यों देखा ? ऐसा अविश्वासी प्राण तुम्हारे ऐसे ही मूर्खों का होता है। अच्छा जो वह इस समय अपने बहनोई के पैरवैर दाबती होती ?

क्षितीश का हृदय धड़कने लगा, परन्तु मुंह से वह कुछ भी न बोले सास महारानी उनके वंश, शिक्षा, तथा क्षुद्र हृदय आदि की व्याख्या करते करते उस घर से चली गई।

जान पड़ता है उन्हों ने जाकर कन्या से सब वृत्तान्त कहा और उसे अपने शयन घर में जाने के लिए आदेश किया। कारण, सास के जाने के थोड़ी ही देर बाद भाद्र मास के मेघ की तरह मुख भारी करके मझली बहू अपने शयन गृह में आई। पहले तो कुछ देर तक बैठी बड़बड़ाती रहीं, फिर क्षितीशचन्द्र से पूछा- क्या हुआ?

क्षितीश हंसे। उनकी हंसी शुष्क तथा विषादपूर्ण थी। बोले—होगा क्या?

मझली बहू भ्रकुटी चढ़ा कर बोली—तुम क्या देखने गये थे?

क्षितीश—अपनी श्राद्ध।

मझली—जो ऐसा हो तो सब झगड़ा ही न मिट जाय।

क्षितीश—मैं भी ईश्वर से रात दिन यही प्रार्थना किया करता हूं। परन्तु दुर्भाग्य के कारण मेरी प्रार्थना स्वीकार ही नहीं होती।

मझली—बातें बनाना खूब आती हैं, सब तरह से जलाते हो, हर बात में फूकते हो। तुम्हारे ऐसा जिसका स्वामी उसके ऐसी अभागी संसार में दूसरी नहीं।

क्षितीश—यह बात झूठ नहीं है। आखिर मैं ने किया क्या है? इतना क्रोध किस लिए?

मझली—ऊंह—ऊंह! "भात देने वाला कोई नहीं, नाक काटने वाले गुसांई" अपना सगा बहनोई—उनके पास बैठ कर दो दो बातें करने में, झांका ताकी हुई, आड़ में घंटों खड़े भी

हुए और उस पर मां को जो जी में आया कह सुनाया। क्यों, इतनी गर्मी क्यों? रहेंगे अन्नदास होकर और गर्मी इतनी दिखावेंगे।

छितीश—मैं ने तो गर्मी दिखाई नहीं। और अन्नदास क्यों, क्रीतदास, गुलाम। भगवान ने जब इस अवस्था में रक्खा है तो रहना ही पड़ेगा। अपने किये पापों का प्रायश्चित्त है।

मझली—जो जैसा हो उसे वैसे ही रहना उचित है। अपने कर्म्मफल आप नहीं भोगोगे तो क्या तुम्हारे लिए कोई दूसरा भोगेगा?

छितीश—यह तो ठीक ही है। अब रात अधिक होगई है, सोना वोना होगा या नहीं?

मझली—मैं नहीं सोऊंगी।

छितीश—तो जाओ बहनोई साहब को दो एक गाने और सुना आओ।

क्रुद्धा सिंहनी का मस्तक लक्ष्य करके पत्थर मारने से जिस प्रकार वह उछल कर खड़ी हो जाती है, उसी प्रकार मझली बहू भी उछल कर खड़ी होगई और चिल्लाकर बोली—"तो क्या मैं गाना गाती फिरती हूं। मैं क्या.................."

छितीशचन्द्र घबरा गये। जल्दी से मझली बहू का हाथ पकड़ कर बोले—चिल्लाओ नहीं, ईश्वर के लिए धीरे धीरे बोलो। मैं ने तो तुम्हें कुछ कहा नहीं। कहा भी हो तो क्षमा करो। यदि तुम्हारी मां सुनेगी तो आकर सैकड़ों सुनायेगी।

मझली—तो फिर यहां रहते क्यों हो ? मैं बुरी, मेरी मां बुरी, मेरा भाई बुरा—हमारा घर भर बुरा है—तो इन बुरों में क्यों रहते हो, अच्छों में क्यों नहीं चले जाते ?

क्षितीश ने इस बातका कोई उत्तर नहीं दिया। मझली बहू का स्वर क्रमशः सप्तम पर पहुंच रहा था इस कारण बोलने में कल्याण न देख चुप चाप बैठे रहे।

मझली बहू थोड़ी देर बक झक कर सो रही।

॥ आठवां परिच्छेद ॥

दूसरे दिन स्नान से लौट कर शीघ्रता पूर्वक स्नान करके क्षितीशचन्द्र आहार करने गये। सास ने उनके सामने भात की थाली रख कर कहा—जमाई घर में हैं, इतने सबेरे भात बन नहीं सकेगा, यह सोच कर कल रात ही को बना कर रख दिया था।

प्रफुल्ल मुख होकर क्षितीशचन्द्र बोले—अच्छा किया। कल भात न होने से काम पर नहीं जा सका।

"भात न होने से काम पर नहीं जा सके" इतनी बड़ी बात सास देवी को असह्य हुई। क्रुद्ध स्वर से बोलीं—सुनो जी, तुम्हारी बातें गंवारों की सी होती हैं। इसीलिए तुमसे और तुम्हारे मां, भाइयों से नहीं बनती। कब तुम्हें भात नहीं

मिलता ? अब यह कलंक का टीका लगाओगे। लोग सुनेंगे तो क्या कहेंगे ? क्या मेरे हरी के यहां भात भी नहीं ?

क्षितीशचन्द्र विनीत स्वर से बोले—ना, ना, मैं ने यह नहीं कहा। कल दादा आये थे इसलिए जल्दी नहीं बन सका था।

सास—यह देखो; तुम्हारी बात बात में पेंच होता है। राई आये हैं इसी से तुम्हें भात नहीं मिला ? हे भगवान, लोग सुनेंगे तो क्या कहेंगे। खाना, कपड़ा देकर पालो पोसो उस पर यह कलंक ! इसी को कहा है दूध पिला कर सांप पालना।

"जो बात कहते हैं वही उलटी हो जाती है" यह देखकर क्षितीश चुप हो रहे और भात खा, पानी पी कर अपने कमरे में चले आये। मझली बहू कमरे में उपस्थित थीं। कल रात से मझली बहू ने क्षितीश के साथ बोल चाल भी बंद करदी।

क्षितीशचन्द्र ने एक बीड़ा पान की प्रार्थना की परन्तु मझली बहू ने इस पर कुछ ध्यान ही नहीं दिया और बाहर चली गईं।

पान की आशा परित्याग करके क्षितीशचन्द्र एक फटा कुरता पहन और एक मैली चादर कांधे पर डाल, काम पर चल दिये।

रास्ते में छोटे साले राधाचरण से साक्षात हुआ। अनेक दिनों के उपरांत वह घर लौटा था। दोनों ने एक दूसरे की कुशल पूछी और अपने अपने रास्ते पर चले गये।

क्षितीशचन्द्र आढ़त पर पहुंचे। उन्हें देखते ही उनके मालिक ने डांटना फटकारना आरम्भ किया, बोले—कल चालान के माल की गाड़ियां स्टेशन पर गई थीं। तुम्हें उनके साथ जाने को कहा था परन्तु कल तुम आये नहीं। हमारी बड़ी हानि हुई। तुम्हारे ऐसे आलसी आदमी से हमारा काम नहीं चलेगा। आज तुम अपना हिसाब करलो कल से न आना।

क्षितीशचन्द्र सिर झुका कर चुप चाप काम करने लगे, मानो किसी दूसरे को कह रहे हैं, उनसे क्या मतलब।

बेर बेर बक झक कर मालिक महाशय चुप होगये परंतु उपसंहार में इतना कह दिया कि— फिर कभी ऐसा होगा तो गरदन में हाथ देकर दुकान के बाहर कर देंगे।

क्षितीशचन्द्र सोचने लगे कि जिसके पास रुपया नहीं उसको यह सब सहन करना ही चाहिए। परन्तु वहां यदि उनका कोई हितैषी व्यक्ति होता तो क्षितीश से कह देता कि "रुपये के लिए दिन रात ऐसे अपमान सहने की अपेक्षा—आत्म गौरव खो देने की अपेक्षा, मृत्यु श्रेष्ट है।" क्षितीश के इन सब अपमानों का कारण रुपया नहीं था वरन केवल उनकी भ्रष्ट बुद्धि ही थी।

नियत समय पर कार्य समाप्त करके क्षितीशचन्द्र दुकान से चले।

बाज़ार में एक दुकानदार की दुकान पर जाकर विश्राम किया। दुकानदार की वयस थोड़ी थी। वह शिक्षित था। क्षितीशचन्द्र के साथ उसकी मित्रता सी होगई थी। उस

दिन कलकत्ते से अनेक वस्तुओं का चालान आया था। अतएव क्षितीश ने क्रुद्धा स्त्री के मान भञ्जनार्थ एक शीशी सुगंधित तेल मोल लिया।

दुकानदार से कुछ देर गपशप करके क्षितीश घर लौटे।

॥ नवां परिच्छेद ॥

संध्या उत्तीर्ण हुए अनेकक्षण होगये। शुक्ल चतुर्थी का क्षीण चन्द्रमा आकाश में उदय होकर कौमुदी वितरण कर रहा है।

एक घर में दीपक जल रहा था। राधाचरण उस घर में बैठे मेघनाथ बध पढ़ रहे थे। पास राईचरण, हरेचरण की माता, मझली बहू और मुहल्ले की तीन चार स्त्रियां बैठी सुन रही थीं।

राधाचरण बहुत से पद पढ़ कर बोले—तुमलोग इनका अर्थ नहीं समझ सकोगे। मैं भी भली भांति नहीं समझा सकता अतएव वृथा परिश्रम करने से क्या लाभ—महाभारत पढ़ें।

राधाचरण की माता बोली—लोग तो कहते हैं कि तू हाकिम होगा और तू इसे समझा नहीं सकता?

राधाचरण—हर्गिज़ नहीं लाट होगा। यह बड़ी कठिन पुस्तक है, मा—इसका समझाना सहज काम नहीं है।

माता—अच्छा तू पढ़ता जा, राई समझाते जांयगे।

राधा—कौन, दे महाशय? अजी रामराम, दे महाशय क्या समझायेंगे। इन लोगों में यह विद्या कहां? रायमहाशय अभी आये नहीं, वे होते तो समझा देते।

माताको बड़ा आश्चर्य्य हुआ। जो राधाचरण की समझ में नहीं आया, जिसे इतने बड़े कमाऊ जमाई राईचरण नहीं समझा सकते उसे समझावेगा छः रुपये महीने का नौकर रायमहाशय उर्फ क्षितीश।

माता को इस बात पर विश्वास नहीं हुआ, बोली—राई हमारे पढ़े लिखे हैं। तू बोल तो सही वे बता देंगे।

राईचरण सिर खुझलाते हुए बोले—माया दया की बात है, इसका क्या समझाना। इसका अर्थ यही है कि मनुष्यको मनुष्य पर दया रखना चाहिए, शास्त्र यही कहता है।

राधाचरण हो हो करके हंस पड़ा। ठीक इसी समय क्षितीशचन्द्र वहां आकर उपस्थित हुए। राधाचरण बोल उठा—आप आगये? दे महाशय ने मेघनाथवध के एक पद के बड़े अच्छे अर्थ लगाये—सुनिए। यह कह कर उसने फिर वही पद पढ़ा और क्षितीश से उसका अर्थ समझाने के लिए कहा। क्षितीश ने बड़ी योग्यता पूर्वक उसके अर्थ समझा दिये। परन्तु सास देवी को अब भी विश्वास नहीं हुआ। वह समझी कि बड़े जमाई हर महीने खूब रुपया कमाते हैं तो भला इतने रुपये कमाने वाला व्यक्ति क्या कभी पढ़ने लिखने में

कः एक लम्बी सांस लेकर क्षितीश बोले—आज ही, आज
जम अंत है। आज से तुम सुखपूर्वक रहना। मझली बहू! प्रानों
लिख रधिक तुम को चाहा, हृदय से अधिक तुमको समझा।
होती, रे लिए, मां को, भाइयों को छोड़ा, घर वार छोड़ा, निज
ोड़ा। पराये द्वार पर पड़कर गुलामी की, अपमान सहे,
ां सहीं, तुम्हारे प्रेमजाल में फंस कर क्या क्या नहीं
साथ हं परंतु तुमने उसका प्रतिदान खूब दिया।
क्रोध रा
विचारे झली बहू आंखें रक्त वर्ण करके बोली—मेरे ही लिए
क्षितीश ड़ा। मैं ही तुम्हारी शत्रु हूं। तो तुम मेरे साथ क्यों
हुए उठ जहां सुख मिले वहां क्यों नहीं चले जाते।
कहा जम तीश—वहां? नहीं वहां नहीं जांयगे। संसार देखा,
था। शि मोह देखा। अब जहां रुपया है वहीं जांयगे।
पढ़ कर झली—जहां जी चाहे वहां चले जाओ, मुझे क्या?
ख्याल परा कर क्यों जलाते हो?

क्षितीश—यदि तुम्हें कष्ट होता है तो अब नहीं जगावेंगे।
जल का से सो रहो। परन्तु पहले एक बात सुन लो। तुम्हारे
पद्माश्रित तेल की न शीशी लाये थे, वह लेलो। जान
परंतु जः के इस जीवन में अब और कोई वस्तु नहीं दे सकेंगे।
पानी लातीश की आंखें जलपूर्ण होगईं। तेल की शीशी मझली
बहू के हाथ में दिदी
गये, वह तने आदर-आ काम नहीं है" कह कर मझली बहू ने
उनकी ओर फेंक दी। मझली बहू शय्या पर थी,
जाकर नीचे बैठे थे। शी शी आकर क्षितीश के मस्तक पर
जरा यह टी नहीं। परन्तु सिर फट कर रक्त धारा बहने लगी।

मझली बहू ने एक बेर देखा और करवट बदल कर पड़ रहीं। रक्त बंद करने का कोई प्रबंध न किया।

चितीशचन्द्र ने घड़े से पानी लेकर रक्त धोया। इसके बाद कुरता, चादर और टूटा छाता लेकर बोले—मझली बहू, ज़रा उठ कर द्वार खोलदो इस जीवन में अब कभी मिलन न होगा, यह मिलन ही अंतिम मिलन है। मझली बहू ने घूम कर देखा। चितीश की आंखें अश्रुभार से ढल ढल कर रही थीं और उनका समस्त अङ्ग विषादमय था। सिर से उस समय भी रक्त बह रहा था।

चितीशचन्द्र खड़े नहीं रहे। उस अंधेरी निस्तब्ध रात्रि में घर से बाहर होगये।

मझली बहू ने सोचा कि अभी लौट आवेंगे। कमरे में दीपक अपनी क्षीण ज्योति से जल रहा था। खिड़की द्वा मन्द मन्द वायु आकर उसे कम्पित कर रही थी। अ आते हैं, अब आते हैं, करती हुई मझली बहू बड़ी देर त प्रतीक्षा करती रही परंतु कोई नहीं आया।

"तो क्या अब नहीं आवेंगे, सच मुच चले। दादा ने जवाब ही दे दिया था मां ने भी गालियां दीं मैं हतभागिनी ने भी दुर्व्यवहार किये। शीशी फेंक क पात किया। इसलिए क्या अब नहीं आवेगा। तो मैंने से क्यों नहीं रोका। यदि मैं रोकती तो कभी न जाते

मझली बहू की आंखों में आगये। आंचल से आंसू पोंछ कर द्वार के पास गई, बा झांक कर देखा, चारों ओर अंधेरा, चारों ओर सन्नाट

मझली बहू द्वार बन्द क शय्या पर लेट रही।

दसवां परिच्छेद ।
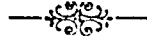
प्रातः काल उठ कर मझली बहू ने समस्त घर सूना पाया ।

हरचरण ने माता से पूछा—तुम्हारे छोटे जमाई कहां हैं ? खेत जांयगे या नहीं ?

भ्रूकुटी चढ़ा कर माता बोली—क्या जानूं, मुझे यह सब अच्छा नहीं लगता । राईचरण कल अप्रसन्न हो गये थे आज सवेरे जाने कहते थे—अब क्या कहते हैं ?

हर—कहेंगे क्या ? वे क्या ऐसा कर सकते हैं ? ऐसा आदमी होना कठिन है । परंतु न जाने कौन तपस्या के फलसे ये छोटे जमाई मिले ।

माता—भाग, मेरे फूटे भागों के फल से ।

हर—अब वे गये कहां ? दक्षिण खेत में जाना आवश्यक है ।

माता—ढूंढ देखो ।

हर—शिबू से पूछो ।

माता ने जाकर कन्या से पूछा—बड़े बाप के बेटे कहां हैं ?

वह प्रायः क्षितीश को " बड़े बाप का बेटा " कहा करती थी ।

शिबू ने अत्यन्त म्लानमुख होकर उत्तर दिया—कल रात को कहीं चले गये ।

माता—जांयगे कहां, घर ही गये होंगे, और कहां जायगे? जो गये हैं तो जाने दो, मुझे ये बातें अच्छी नहीं लगतीं।

अन्य दिन जब कोई चित्तारा को कुछ कहता तो मझली बहू को कुछ भी बुरा नहीं लगता था। परन्तु आज उन्हें माता की बात बड़ी बुरी लगी, बोली—जो गये तो बुराई क्या की? क्या सदा ही तुम्हारे घर पर पड़े रहेंगे?

माता ने कन्या की बात नहीं सुनी, जाकर पुत्र से बोली--कल रात को कहीं चले गये।

हरचरण अत्यन्त क्रुद्ध होकर बोले—देखा, कैसा नमक हराम है इन दिनों काम अधिक आ पड़ा था इसी स भाग गया।

राधाचरण भाई की बात सुन कर अत्यन्त दुखित हुए, बोले—कल तुम लोगों ने उन्हें जो जो बातें कहीं उन्हें सुन कर वे चले न जांय तो करें क्या? तुमने उन्हें जैसा तुच्छ समझ रक्खा है वैसे वे नहीं हैं, तुम लोग उन्हें जैसा दीन हीन समझते हो वास्तव में वे वैसे नहीं हैं, परंतु करें क्या। सदा दिन एक से नहीं रहते।

छल छल नेत्रों से राधाचरण के मुख की ओर देख कर मझली बहू ने यह बात सुनी। भीतर की ठंडी सांस भीतर ही दबा कर मन ही मन बोलीं—मैंने सैकड़ों अपराध किये परन्तु उन्हों ने मुझे कभी कोई कड़ी बात नहीं कही। सदा दिन एक से नहीं रहते।

मझली बहू ने राधा चरण को एकान्त में बुला कर कहा एक बात कहती हूं करोगे?

राधा—कहो क्या ?

मझली—मैं पैसे दूंगी, तू मुहल्ले के किसी आदमी को ससुराल भेजदे।

राधा—क्यों, राय महाशय की ख़बर जानने के लिए।

मझली—हां, रात को गये हैं—अच्छी तरह पहुँच गये कि नहीं यह ख़बर ले आवे।

राधा—अच्छा जाता हूं—पैसे तुम्हें देने नहीं पड़ेंगे मेरे पास हैं।

मझली—घर कोई आदमी न जाने। उस से कह देना कि ख़बर लेकर घरमें न आवे। तू उसे भेज देना और फिर जाकर हाल पूछ आना।

"ऐसा ही होगा" कह कर राधा चरण चला गया।

उस दिन आदमी मिला नहीं। दूसरे दिन एक आदमी भेजा गया। वह सन्ध्या को लौट आया और बोला—वे वहां नहीं गये।

राधाचरण ने यह संवाद अपनी भगिनी को जा सुनाया।

संवाद सुन कर मझली बहू बड़ी चिंतित हुई। मझली बहू पहले नहीं जानती थीं कि उनके चले जाने पर हृदय इतना विचलित होगा। हाय! जब सिर फट कर रक्त धारा बही थी तो मुझ हतभागिनी ने क्यों न पोंछा? जब छल छल नेत्रों से मेरी ओर देख कर विदा मांगी, उस समय मैंने पैर क्यों नहीं पकड़ लिये?

पहला परिच्छेद।

—०—

सन्ध्या के पश्चात् छोटी बहू जयन्ती की गोद के पास बैठी रो रही थी। आंखों से आंसू बह बह कर फूल से गालों को तर कर रहे थे।

जयन्ती बोली—यह क्या, बहन ? रोती क्यों है ? मैं तो जल्दी ही आऊंगी, रोना धोना काहे का ?

करतल से आंख रगड़ती हुई छोटी बहू बोली--दीदी ! जगत में मेरा कोई नहीं, तुम्हारे पास हूं, सो आज तुम भी चलीं। सास जी वृद्ध होगईं, बड़ी दीदी किसी सात पांच में नहीं, एक तुम्हारा आंचल पकड़े बैठी थी, अब तुम्हारे जानेसे मैं अकेली कैसे रहूंगी ?

जयन्ती—क्या करूं बहन, मेरे जाये बिना बनेगा नहीं, जितनी जल्दी होगा चली आऊंगी। जहां वह अच्छी हुई तभी मैं आजाऊंगी।

छोटी—जाये बिना बनेगा क्यों नहीं—वह तुम्हारे कौन हैं ? मौसी की सास, तो इतने दूर के सम्बंध में तो कोई जाता आता नहीं।

जयन्ती—जो नहीं जाते वे बुरा करते हैं। स्त्री का यह धर्म्म नहीं है बहन—यह मैं तेरे से पहले भी कह चुकी हूं। स्त्रियों को चाहिए कि सब का उपकार करें। जो शरण में आवे उसी की सहायता करें।

छोटी—तो जल्दी आना।

जयन्ती—हां हां जल्दी ही आजाऊंगी। छोटे देवर जी की चिट्ठी आवे तो मुझे ख़बर देना।

छोटी—ना दीदी, ऐसी आशा नहीं। पांचकौड़ी जब से कलकत्ते गया चार पांच चिट्ठियां भेज चुकी परन्तु उन्हों ने एक चिट्ठी तक न भेजी। और पांचकौड़ी की का अर्थ समझी थी?

जयन्ती—हां, वह रांड अभी चुड़ैल की तरह पीछे लगी हुई है।

छोटी—चुड़ैल का क्या दोष? आदमी उसके आगे आगे चले क्यों?

जयन्ती—(हंस के) तू वश करना नहीं जानती?

छोटी—हां, जो जानती होती तो तुम्हीं क्यों छोड़ के जाती? जयन्ती ने हंस के शांति का मुख चूम लिया और उठ कर भीतर चली गई। शांति भी पीछे पीछे गई।

उसी रात को एक बैलगाड़ी पर चढ़ के जयन्ती चली गई।

जहां पीड़ा, जहां यातना, जहां शोक, जयन्ती उसी स्थान पर जा, तन मन से लोगों की सेवा शुश्रुषा करती थी।

यही उसके जीवन का व्रत था। उसे संसार के और किसी झगड़ों से मतलब नहीं था केवल लोगों की सेवा ही करके मानसिक आनंद भोग करती थी।

जयन्ती चली गई, घर में बड़ी बहू, छोटी बहू, सास, रामसेवक और उनकी माता तथा निस्तार रह गईं।

सास वृद्धा, और शोक ताप द्वारा जर्जरित। अतएव वह कभी रसोई घर में नहीं जाती थी। बड़ी बहू पुत्र शोकातुर वह भी विशेषतः इधर नहीं जाती थी। रामसेवक की माता कुटुम्ब की लड़की, वह भी घर के किसी काम में हाथ नहीं लगाती थी। घर का सब काम निस्तार की सहायता से छोटी बहू को ही करना पड़ता था।

छोटी बहू इतना काम करने में कोई कष्ट अनुभव नहीं करती थी। प्रातः काल से उठ कर रात को एक प्रहर व्यतीत होने तक काम करने से भी दुखी नहीं होती थी। यह जयन्ती की शिक्षा—जयन्ती के उपदेश का फल था। जयन्ती ने बताया था कि—"स्त्री का जन्म काम काज करने ही के लिए होता है—सेवा शुश्रुषा ही उसका महा व्रत है"। छोटी बहू तन मन से जयन्ती के उपदेश का पालन करती थी।

शांति, स्वामी के दुर्व्यवहार, स्वामी के आदर्शन और अन्यान्य सांसारिक दुखों से अलित होने पर भी पति देवता के ध्यान में तन्मय रहती थी। यह शिक्षा भी शांति को जयन्ती ही ने दी थी। उसने समझाया था कि—"स्त्री स्वामी के सुख में विघ्न क्यों डाले? स्वामी जिस में सुखी हो स्त्री को वही करना चाहिए। रमणी का सुख क्या है? रमणी का सुख,

लगती और सोचती कि जन्मजन्मान्तर की तपस्या के फल आज उन्हें ऐसा पुत्र रत्न मिला है। परन्तु उनकी बुआ को उनकी इन बातों से विशेष भक्ति नहीं थी।

इसके बाद तेल की मालिश करवाते। इसमें भी आपके अमूल्य समय का बहुत सा भाग निकल जाता। मलिश करवा चुकने पर स्नान करने जाते। स्नान करने में इधर उधर तैर कर भी आप अपना बहुत सा समय व्यतीत कर देते थे। स्नान करके घर लौटते और कपड़े पहनकर कंघी चोटी करते। इसके पश्चात भोजन करके फिर निद्रा देवी की गोद में क्रीड़ा करने लगते।

सन्ध्या को उठ कर हाथ मुँह धोते, बाल संवारते और कपड़े बदल कर बाहर घूमने के लिए निकलते।

रामसेवक किसी भले मनुष्य के घर पर कभी नहीं जाते थे। संध्या के समय गांव के शोहदों की सभा लगती थी। आप उसी के सभापति बनते। नित्य उसी स्थान पर जाकर बैठते।

उस सभा में राजनीति, समाजनीति, धर्मनीति, विज्ञान तथा दर्शनादि सब विषयों की आलोचना होती थी।

जहां रामसेवक उपस्थित होते वहां केवल वही वक्ता बनते। उनके सामने कोई दूसरा मुंह नहीं खोल सकता था। जिस समय वे वक्तृता देते, सब लोग अवाक होकर उनकी बातें सुनते और अपूर्वज्ञान लाभ करते थे।

रामसेवक अपनी वक्तृता में कहते—हाईकोर्ट के जज महा मूर्ख हैं। कलकत्ते के स्त्री पुरुष गुलाब जल से शरीर धोते हैं। अंग्रेज़ों के लड़के पैदा होते ही मद्य में डाल कर

यही ... जाते हैं इसी कारण वे इतने श्वेत होते हैं। हाईकोर्ट ... जज आशुतोश वारिस्टर है। लाटसाहब ने दसहज़ार में उनका मस्तक मोल ले लिया है, उनके मरजाने पर चीरके देखेंगे कि उनमें कितनी बुद्धि है। रवीन्द्रनाथ ठाकुर पहले लिखना पढ़ना कुछ नहीं जानते थे। इसी दुख के कारण एक दिन नदी में डूबने गये उसी समय सरस्वती माता आकर उन्हें वरदान देगईं, उसी दिन से वे कवि होगये। उनका एक बड़ा दल है। उस दल के वे सरदार हैं इत्यादि इत्यादि। जब तक रामसेवक वक्तृता देते रहते थे तब तक लोग चकित नेत्रों से उनकी ओर देखते रहते। उनकी वक्तृता समाप्त होते ही, "वाहवा," "धन्य हो" आदि प्रशंसा सूचक वाक्यों की बौछार होने लगती।

इसके अतिरिक्त, उनके प्रतिष्ठित होने का कारण एक और भी था। किसानों के मुहल्ले में वे एक बड़े धार्मिक पुरुष समझे जाते थे। गले में रुद्राक्ष की माला, सिर पर बड़े बड़े बाल, जिनका संस्कार वे नित्य किया करते थे, और माथे पर एक बड़ा सुन्दर तिलक सुशोभित रहता था। डमरू भी वे बड़ा सुन्दर बजाते थे और कभी कभी "गौरा मेरी है" गाकर नाचा भी करते थे। धर्म शास्त्र की कथाएं कहने में भी बड़े कुशल थे। मारण, उच्चाटन, वशीकरण, झाड़ फूंक, औषधि आदि करने में भी बड़े चतुर थे।

वे जिस दिन धर्म्मशास्त्र की व्याख्या करने बैठते उस दिन श्रोतागण कम्पित तथा भक्ति पूर्ण हृदय से उनका व्याख्यान सुनते। किसी दिन योगशास्त्र की बातें कहते,

किसी दिन महाभारत की कथाएं सुनाते और अधिकतर ब्रज लीला का वर्णन किया करते। इस कारण, वृद्ध किसान उन का बड़ा सन्मान करते। कभी यदि कोई प्रतियोगी आजाता तो तर्क वितर्क भी होने लगता।

एक दिन, धन्नू नामक एक किसान का भानजा अपने
मामा के घर आया। संध्या को जब सब लोग जमा हुए तो धन्नू
ं रामसेवक का नाम सुन कर आया। धन्नू कृष्ण भक्त था।
ने वैराग्य भागवत, वृन्दावन विहार आदि दो चार भाषा
पुस्तकें देखीं थीं।

अ रामसेवक कृष्णकथा कहने लगे। उस समय उनकी
ांजा पीने के कारण रक्तवर्ण हो रही थीं। मुसकरा कर
जब ो "एक दिन श्रीमती राधे मथुरा के बाज़ारों में घूम
समझ उसी समय गोपाल जी गउओं को लिये यमुना तट
है। जि ोनों ने एक दूसरे के दर्शन किये। ठाकुर जी ने
दिन उन को देख कर यह गाया—"हे राधे काहे तुम्हारा
देख कर रामसेवक केवल पद कह कर ही चुप नहीं हुए
एव वह उ ारके गाने लगे। श्रोतागण, "वाहवाह", "ओहो"
रामसे ादि वाक्यों की बौछार करने लगे।
होती। कहने को उनकी बातों पर संतोष नहीं हुआ। उसने
लज्जा, जिसको ोच कर बोला—
ज्ञता है इत्यादि इत्यादि। ुए।

रामसेवक अपनी गञ्जिकामद पूर्ण अ
ऊपर कटाक्षवाण चला कर कहता—देखतो
हूं, जो खाजाऊंगा? शांति रामसेवक से बात चे

अज्ञान तिमिरांधस्य ज्ञानाञ्जन शलाकया।
चक्षुरुन्मीलितं येन तस्मै श्रीगुरवेनमः ॥

रामसेवक भला कब चूकने वाले आसामी थे। थोड़ी देर तक चिन्ता करके बोले—भाई, इन गूढ़ मंत्रों की व्याख्या क्या हर एक आदमी थोड़ा ही कर सकता है? गुरू की कृपा से हम कुछ कुछ बता सकते हैं। अज्ञान तिमिरांधस्य ज्ञानाञ्जन शक्ति क्या—है कि नहीं? अज्ञानी के निकट जो मन दस सेर ज्ञानी के निकट वही पूरा सोलह सेर है। का अर्थ तुम आप समझ गये होगे इसीप्रकार रामसेवक संध्या लीला हुआ करती थी।

रामसेवक के बहुत से शिष्य भी होगये थे। उन्होंने गांजा पीना सिखा दिया। घर में अन्न नहीं, महाजन नाओं के कारण चैन नहीं तथापि अपनी गाढ़ी त्यों गांजा देव के कारण फूकने लगे।

दूसरों का पाकर रामसेवक ने भी मात्रा व एक पी, नशे में चूर होकर घर लौटते और कभी कः पुरुष में घर पर बड़ा गोल माल करते। ड़े बड़े

सन्ध्या लीला समाप्त करके घर आते र माथे को बड़ी देर हो जाती। किसी दिन ग्यारह मरू भी नहीं आते। कभी कभी धर्म शास्त्र की कथा मेरी है" परन्तु रात को ा, उच्चाटन, वशीकरण, झाड़ फूंक, गरम ही मि भी बड़े चतुर थे।

शां न धर्मशास्त्र की व्याख्या करने बैठते उस था नहीं म्पित तथा भक्ति पूर्ण हृदय से उनका । किसी दिन योगशास्त्र की बातें कहते,

को बनाना पड़ता। उसकी सास का शरीर ठीक नहीं रहता था, प्रति दिन सन्ध्या के पूर्व उन्हें ज्वर हो आता था अतएव रात को वह रसोई घर की ओर मुँह करके भी नहीं बैठ सकती थी, आना तो दूर की बात रही। बड़ी बहू संध्या व्यतीत होते ही सो जाती—केवल शांति ही भोजन लेकर बैठी रामसेवक की प्रतीक्षा किया करती थी। यदि किसी दिन शांति के अनुरोध से निस्तार को दया आजाती तो वह रसोई घर के द्वार पर पड़ी रहती और जिस दिन दया न आती उस दिन संध्या पश्चात ही अपने घर चली जाती थी। शांति अकेली रसोई घर में बैठी रहती।

पहले तो शांति ऐसा करना दुखदाई न समझी। परन्तु जब रामसेवक की रसिकता अधिक बढ़ने लगी तब शांति समझी कि उसके ऊपर एक नई विपद का पहाड़ फटने वाला है। जिस दिन रामसेवक गांजे की मात्रा बढ़ा देते थे उस दिन उनकी रसिकता भी बढ़ जाती थी। उनकी लाल लाल आंखें देख कर शांति को उनके पास जाने का साहस न होता अतएव वह उनकी माता को बुला लाती।

रामसेवक की माता शांति के इस कार्य से बड़ी विरक्त होती। कहने लगती—मेरा दूध का बच्चा, उससे काहे की लज्जा, जिसके मन में पाप होता है वह सब को पापी समझता है इत्यादि इत्यादि।

रामसेवक अपनी गञ्जिकामद पूर्ण आंखों से शांति के ऊपर कटाक्षवाण चला कर कहता—देखतो मां, मैं क्या बाघ हूं, जो खाजाऊंगा? शांति रामसेवक से बात चीत नहीं करती

थी, उसके सामने लम्बा घूंघट निकाल कर आती। शांति के इस कार्य से रामसेवक उसकी खूब दिल्लगी उड़ाया करता था। शांति जिस समय अकेले में घूंघट ऊपर हटा कर काम काज किया करती उस समय दुष्ट आकर आड़ में खड़ा हो जाता और उसे घूरा करता। यदि हठात् शांति की दृष्टि उस पर पड़ जाती तो पापिष्ठ आंख से इशारा करता और हंस कर चुप चाप सरक जाता। यह देख कर शांति का कलेजा धड़कने लगता। वह शीघ्रता पूर्वक घूंघट निकाल कर भय से अपने कमरे में भाग जाती। सास से यह सब हाल कहने पर वह यह कह कर निश्चिंत हो जाती कि—बड़ी बहू से कहूंगी। जब बड़ी बहू से कहती तो वह बोलती—"छोटी बहू! तेरा मन बड़ा पापी है। रामा तो पेट के लड़के के समान है—हंसता है तो क्या हुआ? जा अपना काम कर।"

शांति और कुछ न कह सकती। उसकी आंखों से अश्रु धारा बहने लगती। मन ही मन प्रवासी पति को याद करके कहती—प्राणेश्वर, हृदय देवता, मुझे कब तक इस दुख में पड़ा रहने दोगे? मैं कितनी आशाएं किया करती थी कि तुम्हारा पढ़ना लिखना शेष होने पर जहां कहीं तुम्हारी नौकरी लगेगी मैं भी वहीं तुम्हारे पास रहा करूंगी। नित्य चरण सेवा कर के सुख से दिन काटूंगी। परन्तु नाथ! इस प्रकार मुझे पैर से क्या ठेल दिया। मैं लिखना पढ़ना नहीं जानती, गाना बजाना नहीं जानती परन्तु तुम्हारी सेवा में कभी त्रुटि न करती। क्यों मेरी सेवा शुश्रुषा से तुम्हारा जी न बहलता। यदि तुम्हारे मन में ऐसा ही था तो मुझे गाना बजाना लिखना पढ़ना सिखा देते, तुम्हारे लिए मैं क्या नहीं कर सकती?

हाय जीवन धन ! मुझे क्यों त्याग दिया ? यदि तुम्हीं ऐसा करोगे तो मैं किसकी हो के रहूंगी, संसार में मेरा कौन है ? हे धर्म्मराज, अब दया करके मेरी लज्जा रक्खो। स्वामी भूल गये परंतु तुम मुझे न भूलो। जितना शीघ्र हो सके अपने पास बुलालो।

परंतु उस अबला की यह दुख कथा किसीने न सुनी।

एक दिन सन्ध्या समय शांति को अकेला पाकर राम-सेवक ने कहा—मैं पापी नहीं हूं, मैं एक परम योगी और भक्त हूं। तुम मेरी सहचरी बनो, मेरे साथ रास लीला करो। अंत समय हम दोनों को ईश्वर के दर्शन होंगे और पुष्प विमान—।"

शांति आगे और कुछ न सुन सकी। रोती हुई अपने कमरे की ओर भागी। उस दिन की यह घटना भी उसने सास तथा जिठानी से कह सुनाई परंतु कोई संतोषजनक फल न हुआ। क्रमशः रामसेवक का साहस बढ़ने लगा।

॥ तीसरा परिच्छेद ॥
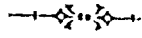
इस घटना के पश्चात एक दिन रामसेवक बहुत ही बढ़ गये। जिस समय रात को रामसेवक के आगे भोजन रख कर शांति लौट रही थी उसी समय रामसेवक ने शांति का आंचल पकड़ कर घसीटा, और मुख से ऐसी बात कही जिसे सुन कर शांति लज्जा और भय से मर सी गई। वह अपने कमरे में जा, फूट फूट कर रोने लगी।

रामसेवक की माता उसी समय वहां आकर उपस्थित हुई। शान्ति उन्हें पहले ही बुला आई थी परन्तु उन्हें आने में देर होगई थी। शांति को रोते देख कर बोली—क्यों जी रोती क्यों हो, आज क्या हुआ ?

शांति के कुछ कहने के पूर्व ही रामसेवक, जो माता के साथ साथ चला आया था, बोल उठा—इस घर में अब मेरा रहना नहीं होगा। मैं क्या इसका ससुर हूं। भोजन की थाली रखने का ढंग, मां, तुम, देखतीं तो कहतीं। दूर से खड़े होकर थाली पटकदी और चली गई। मैं ने केवल इतना कहा कि यदि इस तरह देना है तो इस देने से न देना ही अच्छा है। बस मैंने इतना कहा था कि रोने लगी और रोते रोते यहां चली आई।

रामसेवक की माता जल उठी, बोली—वाह री छोटी बहू वाह, मेरा लड़का क्या तेरे टुकड़ों पर पड़ा है ? उसकी बुआ-

अपनी बुआ उसका लड़का क्या मारा मारा घूमे। तू इसे देख कर इतना क्यों जलती है? न तुम्हारा खाये न तुम्हारा पहने। और लड़की इतना सतीपन भी अच्छा नहीं है।

शांति ने इसका कुछ उत्तर न दिया। दुख से उसकी छाती फटने लगी, पैर तले से पृथ्वी निकलने लगी। वह रोती रोती बड़ी बहू के पास गई। वह जानती थी कि सास से कहने म कोई फल न निकलेगा। बड़ी बहू उस समय गाढ़ निद्रा में थी। अत्यंत करुणा-कातर स्वर से शांति ने पुकारा—बड़ी दीदी, ज़रा उठ कर एक बात सुनो। बड़ी बहू की नींद नहीं टूटी। शांति ने तलवे सहला कर फिर पुकारा दीदी, दीदी, एक बात सुनो।

बड़ी बहू करवट बदल कर बोली—क्या है? जगाया क्यों?।

शांति ने रोकर सब हाल कह सुनाया। रामसेवक ने कहा था—सहज में न मानने से बलात्कार करूंगा, किसी की क्षमता नहीं कि मेरे मुख से ग्रास छीन ले। दो सौ किसान मेरे आधीन हैं, कहीं से लेजा कर कहीं फिकवा दूंगा, कोई जानने भी नहीं पावेगा। इस से यही अच्छा है कि मेरा कहा मान कर सुख पूर्वक रहो।

यह कह कर शांति ने बड़ी बहू के पैर पकड़ लिये और रोती रोती बोली-दीदी मेरी रक्षा करो, मैं तुम्हारी ही बहू हूं, तुम्हारी ही बहन हूं, तुम्हारे ही भरोसे हूं, अब इस समय तुम्हारे सिवा मेरा कोई नहीं।

जान पड़ता है कि कीचक-भीता द्रौपदी ने भी इसी प्रकार विराट-महिषी के चरण पकड़ कर शरण चाही थी।

बड़ीबहू भी सतीत्व गर्विता रमणी थी। सतीका अपमान सुनकर उन्हें भी दुख हुआ। वह बैठी कुछ चिंता कर रही थी—सहसा रामसेवक की माता की चीत्कार से घरगूंज उठा—"बाहरी लंका" कहती हुई वह बड़ी बहू के कमरे में आई और छोटीबहूकी ओर भीषण वक्रदृष्टि से देखकर बोली—बाहरी लंका लड़केको निकाल कर छोड़ेगी। मेरेबच्चेके पीछेही पड़गई है। वह अपनी बुआके घर आया है, भूखों मरकर नहीं आया, तेरी शरण नही आया। ओहो, इतना अपमान! (बड़ी बहूसे) ले बहू अब हमें विदा दो, अपने घर जांय, हमसे यह अपमान! नहीं सहा जाता. इत्यादि इत्यादि कहकर रामसेवक की माता ने उपसंहार में, जो रामसेवक से सुना था, कह सुनाया। बड़ी बहू ने सब सुनकर शांति काही दोष समझा। अतएव उन्होंने भी दो चार खरी खोटी कहकर शांति को विदा किया। शांति हताश होकर सास के पास गई परतु वह उस समय ज्वर में पड़ी हुईथी। वहां से लौटकर अपने कमरे की ओर आ रही थी उसी समय नराधम रामसेवक उसके पास पहुंच कर बोला—चाहे जहां जाओ बच्ची मेरे हाथ से नहीं निकल सकोगी। मुझे बाबा कहना ही पड़ेगा और मेरी इच्छा पूर्ण करनाही पड़ेगी। नहीं तो तुम्हारे बाप के बाबा भी आकर रक्षा नहीं करसकेंगे।

व्याध को देखकर जिसप्रकार हरिणी चञ्चल होकर भागती है उसीप्रकार शांति रामसेवक को देख अपने कमरे की ओर भागी। हांफते हांफते अपने कमरे में पहुंची और द्वार बंद करके शय्यापर गिर फूटफूट कर रोने लगी। रोते रोते मनही मन कहने लगी—प्रभो, हृदय देवता, रमणी

के रक्षा कर्ता, तुम इस समय कहां हो ? आओ देखो तुम्हारे ही घर में तुम्हारी दासी का सर्वनाश हुआ चाहता है। तुम्हारे ही घर में एक नारकी, नराधम, तुम्हारी शांति का सतीत्व बिगाड़ना चाहता है। हाय, क्या इस समय भी आकर रक्षा नहीं करोगे। मैं तुम्हारे सिवा किसी देवी देवता को नहीं जानती तुम्हीं मेरे भगवान हो। हाय! तुम इस समय भी नहीं आते।

शांति बड़ी देर तक शय्या पर पड़ी तड़पती रही। उसके हृदय में अनेक प्रकार के विचार आने लगे। उसने सोचा कि यदि वह पापिष्ठ जैसा कहता है वैसा ही करे तो फिर मेरी रक्षा कौन करेगा। यदि किसी दिन कुछ किसानों को लेकर मुझे उठवा ले जाय तो मुझे उनके हाथ से कौन छुड़ावेगा। हाय! उस समय मेरी क्या गति होगी।

शांति का शरीर मारे भय के कांपने लगा। माथे पर पसीना आगया वह सोने का उद्योग करने लगी परन्तु मारे चिन्ता और भय के नींद नहीं आई। उठ कर बैठ गई किन्तु फिर भी चैन न पड़ी। अंत को बहुत कुछ सोच विचार कर "घर से भाग चलना" स्थिर किया।

एक बेर मन में आया कि उसकी सास को बड़ा ज्वर है उसके चले जाने पर उनकी सेवा शुश्रुषा कौन करेगा। यह सोच कर उसका हृदय विदीर्ण होने लगा। आंखों से पुनः अश्रुधारा बहने लगी।

चलते समय अपनी वस्तुओं को देख कर बोली—रहो, तुम सब यहीं रहो, मैं जाती हूं, सदा के लिए जाती हूं, यदि

प्राणनाथ आवें तो उन से कह देना कि—"शांति हमें तुम्हारे लिए छोड़ गई है।"

यह कह कर शांति रोती हुई घर से बाहर निकली। चारों ओर सन्नाटा चारों ओर अंधकार। पथ पर पहुँच कर उसका कलेजा धड़कने लगा। चारों ओर घूम कर देखा। मारे डर के समस्त शरीर वायु में हिलते हुए पत्ते की तरह कांपने लगा। थोड़ी देर तक उसकी यही दशा रही। इसके उपरांत यह बात जाती रही। उसकी समस्त इन्द्रियां स्तब्ध हो गई, उसका बाह्य ज्ञान जाता रहा, और उन्मादिनी की तरह उसी पथ पर चलने लगी।

॥ चौथा परिच्छेद ॥
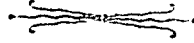
बाह्य ज्ञान—विरहिता, उन्मादिनी की तरह शांति समस्त रात चलती रही किस पथ से कहां जायगी, इसका कुछ ठीक नहीं था।

चलते चलते एक नदी के तट पर पहुँची। नदी को देख कर उसे अपनी अवस्था का कुछ कुछ ज्ञान हुआ। उसने समझा कि नदी पार किये बिना आगे जाने की राह नहीं।

ध्यान होने के साथ ही फिर भय का सञ्चार हुआ। वह एक वृक्ष के नीचे बैठ गई।

उसके कोमल पैर राह के कांटों से छिन-विछिन होगये थे, देह परिश्रम से नितांत अवसन्न होगई थी। बड़ी देर तक उस स्थान पर बैठी रोती रही। अंत को रोते ही रोते फिर अज्ञान होगई।

सहसा उस वृक्ष पर एक पक्षी चीत्कार कर उठा। उसकी चीत्कार से शांति को फिर ज्ञान हुआ। चौंक कर चारों ओर देखा। पूर्व ओर से आकाश में उषा का आगमन होने लगा था। उसने सोचा कि दिन के प्रकाश में वह क्या उपाय करेगी।

उसी समय एक मछुआ नदी से मछलियां पकड़ कर गाता हुआ चला। शांति के कान में गाने का शब्द प्रातः काल की मन्द मन्द वायु में मिल कर आया। उसके हृदय में बल का सञ्चार हो आया। उसने सोचा भय किसका? मृत्यु तो मेरे हाथ ही में है। इस शीतल स्निग्ध जल में कूद पड़ने से क्षण मात्र में सारे कष्टों का अंत होजायगा, सदा के लिए शांति मिल जायगी।

मनुष्य का कंठस्वर सुन कर शांति कुछ चंचल हो उठी। वह वहां से उठ कर उस दिशा के विपरीत, जिस दिशा से वह गान ध्वनि आरही थी नदी के किनारे २ चली। थोड़ी दूर चल कर वह एक श्मशान में पहुंची।

प्रातः काल की उदास वायु—सन्मुख नदी प्रवाह, ऊपर आकाश में ज्योतिहीन तारा समूह—शांति उस समय श्मशान में।

उसका हृदय उदासीन, तथा विषादमय—श्मशान में कुत्तों, श्रृगालों की भीषण चीत्कार, जो एक मृत देह के लिए आपस में लड़ रहे थे. चारों ओर मांस चर्म्महीन नर मुण्ड मानों यह कह रहे थे—देखो हमारे पास भी कभी यौवन था रूप था, धन था बल था परन्तु अब हमारी दशा देखो। सावधान, कभी किसी बात का अभिमान मत करना, अहंकार में न डूबना। देखो यह वह स्थान है जहां, ब्राह्मण, क्षत्री, शूद्र, वैश्य, राजा रंक सब की एक अवस्था, सब का एक परिणाम।

शांति उस दृश्यको देखकर भयभीत नहींहुई वरन् उसका रहा सहा भय भी जाता रहा। उस स्थान को छोड़ने की इच्छा नहीं होती थी। वह जानती थी कि इस स्थान पर अत्याचार नहीं, अविचार नहीं वरन् बड़े बड़े अत्याचारी, अविचारी नराधम, पापिष्ठ भी यहां आकर सीधे होजाते हैं। शांति को उस स्थान पर बहुत कुछ शांति मिली।

परन्तु सड़ीहुई मृत देहों की गंध से वह वहां अधिक समय तक न ठहरसकी। वह फिर आगे की ओर चलनेलगी।

क्रमशः पूर्व में सूर्यदेव उदय होने लगे। उनके साथही साथ शांति के हृदय में भय तथा चिन्ताभी उदय होने लगी। वह सोचने लगी कि अब इस प्रकाश में आत्मरक्षा कैसे करूंगी।

अंतको क्षोभ, भय तथा लज्जा से वह नदी तटपर बैठगई।

उसी समय किसीने पीछे से कहा—तुम कौन हो जी?

शांति चौंक उठी। पीछे फिरके देखा—मट्टी के घड़े हाथों में लिये दो प्रौढ़ा स्त्रियां खड़ी हैं।

उन्हें देखकर शांति उठकर भागने की चेष्टा करने लगी परन्तु भाग नहीं सकी। निर्बलता के कारण फिर गिरपड़ी। वह भयभीत होकर रोने लगी एक स्त्री बोली—डर क्या है बेटी, हम भी तो स्त्री हैं। बताओ तो कहां जाती हो ?

रुद्ध स्वरसे शांति—"मा, मैं बड़ी अनाथा हूं। कहां जाती हूं इसका कुछ ठीक नहीं। यमका घर ढूंढती हूं परन्तु मिलता नहीं।

वे स्त्रियां समझी कि सास ननद से लड़कर अथवा पति से झगड़ा करके अपने बापके घर भागी जाती है। राह भूल जाने से इधर आगई है।

एक बोली—तुम हमारेघर चलोगी। कोई डर नहीं है। बेटी, हमभी भले घर की हैं।

शांति ने स्वीकार किया। मन में सोचा—दिन में कहां जाऊंगी। राह में न जाने क्या विपद आवे। अभी इनके घर में जाकर रहूं फिर आगे जैसा होग देखा जायगा।

शांति उठकर खड़ी होगई। स्त्रियों ने नदी से जल लिया और शान्ति को लेकर अपने घर की ओर चलीं।

गांव के महाजन शम्भूराय प्रभात-भ्रमण के लिए बाहर निकले थे। राह में उन लोगों की उनसे साक्षात हुई।

शम्भूराय की वयस चालीस से कुछ ऊपर थी। जाति के भड़भूजे थे परन्तु बङ्गदेशमें आकर कान्यकुब्ज ब्राह्मण बनबैठेथे। गंगारामपूर गांव के समस्त किसानों के महाजन थे।

उन दोनों स्त्रियों के साथ शांति सी भुवन मोहनी को देखकर शम्भूराय चकित होगये। यह रूप, ऐसा सौन्दर्य्य,

इतना लावण्य। रोने से आंखों में लाल डोरे पड़े हुए, भय तथा लज्जा से मृदु समीरांदोलिता लतिका की तरह कम्पिता और त्रास कम्पिता हरिणी के समान चकित तथा चञ्चला।

शम्भूराय शांति को देखकर मरमिटे। स्त्रियों से पूछने लगे—दे बहू! यह कौन?

देबहू नम्रतापूर्वक बोली—क्या जानूं। घट के पास अकेली बैठी रो रही थी—अब घर लिये जाती हूं।

शम्भूराय शान्ति को बेर बेर सतृष्णा नयनों से देखते हुए चले गये ये भी अपने घर को ओर चलीं।

शांन्ति के सौन्दर्य ने शम्भूराय के हृदयको विद्ध कर दिया। वह घर जाकर शान्ति के ध्यान में मग्न होगये।

शम्भूराय का चरित्र बुरा न होने पर भी नितांत पवित्र नहीं था। इसके पूर्व रूप का ऐसा नशा उन्हे कभी नहीं चढ़ा था, कभी इतनी अशान्ति नहीं हुई थी। उन्हों ने सुबल की मां को बुलाकर सब हाल कहा और उसे दे महाशय के घर भेजा—सुबल की मा दे महाशय के घर जाकर पहले तो उनकी स्त्री से बात चीत करती रही तत पश्चात् शांति से मिलकर शम्भूराय की कृपा का हालकहा। उसने शान्ति को अनेक प्रकार के प्रलोभन दिखाये। रायसाहब की अगाध सम्पत्ति का हाल कहा और यहभी कहा कि शान्ति ही इस सब सम्पत्तिकी मालिक बनेगी इत्यादि इत्यादि। परन्तु शांति ने सुबल की मा और राय महाशय को गालियां सुनाने के अतिरिक्त और कोई उत्तर नहीं दिया। सुबल की मा अपना सा मुंह लेकर लौट आई और रायसाहब को सब हाल कह सुनाया। रायसाहब बड़ दुखित हुए परन्तु हताश नहीं हुए।

॥ पाचवां परिच्छेद ॥

प ! तुम्हें हम अच्छा कहें या बुरा ? तुम विश्वप्रिय, तुम स्वर्गवासी । नहीं तो स्वर्ग में तुम्हारा इतना आदर क्यों ।

तिलोत्तमा, रम्भा, मेनका, उर्व्वशी इत्यादि पर इतने व्याख्यान क्यों ? नंदन मरीचिका का इतना प्रलोभन क्यों ? तुम स्वर्गवासी होने ही से त्रिभुवन के यौवन। तुम्हारे कटाक्ष से मुनिगण ध्यान छोड़ कर अपनी तपस्या का फल तुम्हारे चरणों में अर्पण कर देते हैं। समस्त विश्व संसार तुम्हारे लिए लालायित रहता है। अतएव जब हम तुम्हें इस ओर से देखते हैं तो यही इच्छा होती है कि तुम्हें अच्छा कहें, तुम्हें प्रिय कहें। परन्तु जब हम यह देखते हैं कि मनुष्य तुम्हें हस्त-गत करने के लिए कितने पाप करता है कितने अत्याचार करने पर कटिवद्ध हो जाता है, यहां तक कि तुम्हारे फेर में पड़ कर ईश्वर को भी भूल जाता है तो उस समय यही जी चाहता है कि तुम्हें बुरा कहें अप्रिय कहें।

राय महाशय शांति के विरह में तड़पने लगे। उन्हों ने गोपालदे को बुलवाया। गोपालदे ही की गृहिणी ने शांति को आश्रय दिया था।

खेत से लौट कर गोपालदे महाजन राय महाशय के घर आये।

राय महाशय उन्हें एकान्त में लेगये। दोनों में बातचीत होती रही, कुछ मौखिक विवाद भी होता रहा। थोड़ी देर बाद दे महाशय बोले—अच्छा ऐसा ही होगा, आप महाजन हैं मालिक हैं, मैं आपकी इच्छा के विरुद्ध नहीं चल सकता।

दे महाशय चले गये परन्तु उनके मुख का भाव देखने से यह ज्ञात होता था कि वह अप्रसन्न होगये।

सन्ध्या के पश्चात दे महाशय और उनकी गृहिणी में बात चीत हो रही थी। उस घर में और कोई नहीं था। बात चीत बहुत धीरे धीरे हो रही थी। देमहाशय की गृहिणी भृकुटी चढ़ा कर बोली—यह कभी नहीं होगा।

दे—तो दोष क्या है, वह हमारी कौन है ?

गृ—कोई न हो, परन्तु हमारी शरण तो आई है।

दे—इतना धार्म्मिक बनने से संसार का काम नहीं चलता।

गृ०—छिः छिः यह तुम क्या कहते हो, क्या तुम्हारे हृदय में तनिक भी दया नहीं है ? आहा, लड़की का मुंह देखकर भी तुम किस जी से उसे बाघ के मुंह में देते हो ? सती की सहायता करना चाहिए और तुम उलटे उसका सतीत्व नष्ट करने में सहायता देते हो। हे भगवान, ऐसा करने से हमारी क्या दशा होगी ?

दे महाशय का अप्रसन्न मुख और भी मलीन हो गया बोले—क्या करूं, महाजन··· ·····

गृ०—(अधिकतर विरक्त होकर) महाजन जाय चूल्हे भाड़में, धर्म्म से बड़ा कोई नहीं।

दे—बड़ा तो नहीं परन्तु जब घरबार बिकवा लेगा तब

गृ०—राय महाशय बुड्ढे हो गये फिर भी ये बातें। अभी राय ठकुरानी के पास जाती हूं। सती सती की मर्यादा समझेगी !

दे—(घबराकर) अरे कहीं ऐसा अंधेर भी न करना, सर्वनाश होजायगा। सोते बाघ को जगाना ठीक नहीं है।

गृ०—तो क्या धर्म्म बेच खावे? बहुत करेंगे घरबार बिकवा लेगा, हम भीख मांग खांयगे. न होगा यह गांव छोड़ देंगें।

दे—एक भय और भी है।

गृ०—कौन भय?

दे—उन्होंने कहा था रात को तीन चार आदमी भेज कर—"।

गृ०—भेजेंगे तो भेजने देओ, देखें वे क्या कर लेते हैं, यह भी क्या मुसलमानों का राज है? झाड़ू लेकर डाढ़ी जारों का सारा विष झाड़ दूंगी। लेजाना कोई ठट्ठा नहीं है।

दे महाशय ने दीपक के क्षीण प्रकाश में देखा कि उनकी स्त्री के सर्व्वाङ्ग से विद्युत प्रभा सी निकल रही है। उन्हें और कुछ कहने का साहस नहीं हुआ, उठ कर बाहर चले गये। परन्तु महाजन के भय से उनका हृदय बड़ा चञ्चल हुआ। दे गृहिणी भी क्रोध में भरी हुई रसोई घर की ओर चली गई।

शांति उस समय उसी घर के पास वाले घर में बैठी रो रही थी। जिस समय स्वामी स्त्री में धीरे धीरे बात चीत हो रही थी वह कान लगा कर सारी बातें सुन रही थी।

उनके चले जाने पर शांति बड़ी देर तक बैठी सोचती रही। ततपश्चात् हृदय दृढ़ करके यह स्थिर किया कि, "यहां बैठने से काम नहीं चलेगा। जब अबुद्धि का काम किया ही है, सास से न कह कर. मुहल्ले वालों से सहायता न लेकर. घर के बाहर होगई, यह पाप किया, तो अब उसका प्रायश्चित करना ही पड़ेगा, और यह प्रायश्चित्त जीवन की आहुति दिये बिना नहीं होगा।

उसने विचारा—"मेरे यहां रहने से मेरा सर्वनाश हो सकता है। एक स्त्री की यह क्षमता नहीं है कि वह सिपाही पियादों के हाथ से मुझे छीन ले और यदि ऐसा हो भी तो इसके लिए उन्हें बड़ा कष्ट भोगना पड़ेगा। अतएव केवल अपने लिए एक परिवार के परिवार को क्यों कष्ट में डालूं। जब जीवन की आहुति दिये बिना छुटकारा नहीं तो फिर इनका सर्वनाश क्यों करूं। पास ही नदी है, मेरा काम बहुत सहज ही में बन जायगा।"

यह सोच कर उसने एक मुहूर्त्त भी बिलम्ब नहीं किया चुप चाप घर के बाहर होगई।

चांदनी रात थी। शांति नदी तट पर खड़ी होकर केवल इतना बोली "प्रभो, प्राणेश्वर जाती हूं। केवल एक बेर देखने की बड़ी इच्छा थी—परन्तु न पूरी हुई, इतना दुख साथ लिये जाती हूं" यह कह कर शांति नदी में फांद पड़ी।

थोड़ी ही दूर पर एक नौका चली जा रही थी। उस नौका पर से किसी ने चिल्ला कर कहा—मांझी! जल्दी देखो, नदी में कोई आदमी कूदा है, जल्दी करो, जल्दी—जल्दी—।"

॥ छठा परिच्छेद ॥
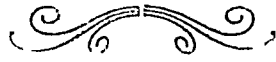
छोटी बहू घर त्याग कर कहीं चलीगई—कलंक से देश भर गया । छोटी बहू के नाम पर सब धिक्कार देने लगे । परन्तु इसकी खोज किसीने भी न की, यह कोई भी न समझा कि किस अत्याचार के कारण उसने यह कार्य किया ?

लोगोंने कुछ और ही समझा, कुछ और ही सुना रामसेवक और रामसेवक की माता ने समस्त ग्राम में यह प्रचार करदिया था कि—"छोटी बहू के मायके का एक लड़का छिपकर नित्यप्रति उसके पास आया करता था । पहले इस बात को कोई नहीं जानता था । रामसेवक के आने पर उसके आने में बड़ी असुविधा होने लगी क्योंकि रामसेवक बड़ी रात गये घर लौटता था । अतएव यहां सुविधा न देख छोटी बहू उसके साथ निकल गई ।

थोड़े दिन तक इस कल्पित कथा को लेकर गांव के लोग बड़ा आन्दोलन करते रहे । स्त्रियों में, पुरुषों में, घाट पर, पाठ शाला में, भले मनुष्यों की समाज में, भीतर, बाहर जहां देखो यही कथा, यही चर्चा । परन्तु चार पांच दिवस उपरांत इस आन्दोलन में बहुत कुछ कमी होगई । मुहल्ले के मुखिया विष्णु-सरकार बहुत कुछ सोच विचार करने पर भी इसका असली

कारण नहीं समझ सके। वह जानते थे कि शांति भले घरकी बेटी है। उसके बराबर लक्ष्मी बहू गांव में दूसरी नहीं। ऐसी सती लक्ष्मी किसी के साथ निकल जाय—पति भक्ति विसर्जन करदे? यह विश्वास योग्य बात नहीं।

वह संध्या को जलपान करके और एक लालटेन तथा लाठी लेकर जतीशचन्द्र के घर आये।

उस समय जतीशचन्द्र की माता का ज्वर जाता रहा था परन्तु निर्बलता के कारण उन्होंने शय्या नहीं त्यागी थी। शांति का इस प्रकार निकल जाना सुन कर वह रात दिन पड़ी रोया करती और अपने भाग्य को दोष दिया करती थी।

विष्णु सरकार उनके पास जाकर बोले—बहू कैसी हो?

जतीश की माता उन्हें देख फूट फूट कर रोने लगी।

विष्णु सरकार लाठी तथा लालटेन एक कोने में रख कर एक आसन पर बैठ गये और बोले—बहू! ज़रा बात तो बताओ, क्या है? क्रन्दनवेग को कुछ कम करके जतीश की माता बोली—मैं तो कुछ जानती नहीं, देवर जी।

किञ्चित विरक्त होकर विष्णुचन्द्र बोले—तुम नहीं जानती तो क्या मैं जानता हूं? तुम किसी ओर ध्यान नहीं रखतीं, किसी बात पर भली भांति विचार करके नहीं चलतीं अतएव किसी पर भली प्रकार शासन भी नहीं कर सकतीं, इसी कारण तुम्हारे घर की यह दशा होती जाती है। जो गृहिणी अपने घर की ओर ध्यान नहीं देती और सब पर पूर्ण तयः शासन नहीं करती उसका घर योंही नष्ट हो जाता है।

मालकिन ने एक ठंडी सांस ली। विष्णुचन्द्र बोले—मुझे तो ऐसा जान पड़ता है कि इसमें रामसेवक का कुछ लगाव अवश्य है।

मालकिन—किसी का हो, परन्तु अब मैं तो कहीं की न रही।

विष्णु—एक वेर धमकी घुड़की देकर रामसेवक से पूछना चाहिए।

मालकिन—ना देवरजी, ऐसा न करना, घरमें नहीं रहने पाऊंगी।

विष्णु—इसी प्रकार डर डर के तो तुमने घर का सत्यानाश कर दिया। चाहे जो हो, बिना पूछे काम नहीं चलेगा। जब तक ठीक ठीक कारण न मालूम हो, एक भले घर की लड़की को दोष नहीं दे सकते। यदि वह वास्तव में निर्दोष है, केवल किसी पापी के चक्र में फंसगई है तो ऐसा होनेसे उस पापी को दंड अवश्य मिलना चाहिए।

यह कहकर विष्णु सरकार ने निस्तार को पुकारा। निस्तार के आनेपर विष्णुचन्द्र ने पूछा—रामसेवक कहां है री?

निस्तार बोली—बापी के बाहर जाने को तैयार हैं।

विष्णु—अच्छा, ज़रा बुला तो दे।

निस्तार ने रामसेवक से जाकर कहा। रामसेवक पान चबाते हुए बड़े अहंकार पूर्वक आये।

विष्णुचन्द्र ने आंख चढ़ा कर रामसेवक को सिर से पैर तक घूरा और बोले—बैठो तुम से कुछ कहना है।

रामसेवक—जो कहना हो योंही झटपट कह दीजिए, मेरे पास बैठने का समय नहीं।

विष्णु—अब तुम्हीं इस घर के कर्त्ता धर्त्ता हो तुम को हर एक बात की ख़बर रखना चाहिए।

रामसेवक—अब यह बात कह कर जी न जलाइए भला मैं किस बात की ख़बर नहीं रखता? यह जो छोटी बहू भाग गई है तो क्या मेरी आंखों में धूल झोंक कर चली गई?

विष्णु—तो यह लोगबाग क्या बका करते हैं? अच्छा एक बेर जो तुमने देखा सुना हो कह जाओ।

राम—सुनोगे क्या? बहू की आदत अच्छी नहीं थी।

विष्णु—वह तो नहीं थी। परन्तु बात तो कहो, क्या थी?

राम—जब मैं बाहर से रात को घर लौटता था तो प्रायः रोज़ देखा करता था कि——————।

ठीक इसी समय रामसेवक की मां हांफते हांफते उस स्थान पर आई। विष्णु सरकार भी बड़े चलते हुए आदमी थे। "कहीं लड़के को कुछ सिखा पढ़ा न दे" यह सोच कर आप उनके अत्यन्त निकट हो गये।

विष्णु—हां तो तुमने क्या देखा?

रामसेवक की मां जल्दी से बोल उठी—हां जी, उसी ने क्यों? मैं ने भी कई दिन देखा था। ऊहू—याद करके अब भी जी कांपता है।

विष्णु—तुमने क्या देखा रामसेवक?

राम—एक लड़का—अधिक उम्र का नहीं, मेरे ही ऐसा।

विष्णु—अच्छा फिर ?

राम—मैं ने दो एक दिन उसे डांटा भी था।

विष्णु—वह छोटी बहू ही के लिए आता था, यह कैसे जाना ?

रामसेवक की मां बोल उठी—अजी, मैंने दोनों को बात करते देखा था।

विष्णु—यह बात घरके और किसी आदमी से कही थी ?

रामसेवक—निस्तार से कही थी।

विष्णुचन्द्र ने निस्तार को बुला कर पूछा। उसने स्पष्ट कह दिया कि—ना, ना, हमते कोऊ कौनो बात नहीं कहा।

रामसेवक की माता चीत्कार करके बोली—क्योंरी हरामज़ादी, झूठ बोलती है। उसी की बुआ का खायगी और उसी से ये बातें ? मेरे ही सामने तो उसने तेरे से कहा था।

निस्तार भला इन गिदड़ भपकियों में कब आनेवाली थी, वह उंगलियां नचा कर बोली—खाइत है तो का झूठ बोली ? बड़े सुखमां तो हन, बहुत होई न रहब। हैं, चली हुआं ते डांट बतावैं।

रामसेवक की माता कुछ नम्र होकर बोली—अच्छा अच्छा, तुम क्यों जाओगी हमीं सब को खटकते हैं हमीं चले जांयगे।

विष्णु—झगड़ा मत करो झगड़े का काम नहीं, जो मैं पूछूं वही बताओ। हां जी रामसेवक ! घर की नौकरानी से कहने के पूर्व तुमने यह बात और भी किसी से कही थी ?

राम—नहीं और तो किसी से नहीं कही।

राम—मां, कहें क्या ? कहने से लोग बुरा मानते हैं।

विष्णु—रामसेवक ! तुमने यह बात कभी अपनी बुआ से भी कही थी ?

राम—हां कही क्यों नहीं थी ?

विष्णु—हम उनसे पूछें ?

राम—आप से वह बात थोड़ेही करेगी।

विष्णु—क्यों ? हमारी बहू है हमसे बात क्यों नहीं करेगी।

रामसेवक की माँ बोल उठी—इसने तो कही थी, परन्तु वह लड़के के सोच में पड़ी थी, समझी हो या न समझी हो यह कौन कह सकता है ?

विष्णु—मालूम होगया—रामसेवक ! एक बात है।

राम—कहिए।

विष्णु—तुम्हीं इस घटना की जड़ हो।

राम—कौन, मैं ?

विष्णु—हां तुम। तुम्हारे ही अत्याचारों से वह अबोध बालिका आगा पीछा न सोच कर घर से निकलखड़ी हुई।

राम—खैर, ऐसा ही सही।

विष्णु—खैर ऐसा ही सही के भरोसे न रहना। यह मत समझना कि तुम सदा ऐसे ही मौजें उड़ाया करोगे। भगवान सबको देखते हैं। पाप किये जाओ, अंत में फल भोगना पड़ेगा।

"जब भोगना पड़ेगा, भोगेंगे" यह कह कर रामसेवक चलने लगा।

विष्णुचन्द्र बोले—सुनो रामसेवक ! अब भी सच्चा हाल कहदो। यदि बालिका भयसे भाग गई है तो उसकी खोज खबर करें।

रामसेवक घूम कर बोला—यह किस देश का चलन है कि भागी हुई बहू को फिर घर में रक्खे ?

यह कह कर रामसेवक चला गया। रामसेवक की माता ने भी पुत्र की बात का समर्थन किया।

विष्णुचन्द्र अपना सा मुंह लेकर चले गये।

जतीशचन्द्र की माता अपने स्वर्गवासी स्वामी तथा अपने पुत्र जतीश और दानीश का नाम ले ले कर रोने लगी।
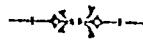
सातवां परिच्छेद।
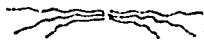
बादलों को छेद कर सूर्य की किरणें, खेतों, बागों, आदि पर पड़ीं। विस्तीर्ण क्षेत्र जन हीन शस्य हीन। कृषक गणों ने धान काट लिये थे। खेत धानों की जड़ों से अच्छादित। रौद्रताप से भूमि कठिन पत्थर की तरह होगई थी। प्रांत के मध्य में एक बड़ी झील, झील में अनेक प्रकार के फूल खिले हुए।

झील के पास से एक अंगरेज़ साइकिल पर जा-रहा था। हठात् एक पत्थर की ठोकर खाकर साहब बहादुर लुढ़क गये।

एक पथिक, थोड़ी ही दूर पर वृक्ष के नीचे, विश्राम कर रहा था। वह साहब को गिरता देख दौड़ कर आया। पथिक क्षितीशचन्द्र ने साहब के पास आकर देखा। चोट बहुत लगी थी, सिर फट कर रक्त धारा बह रही थी। साहब एक प्रकार से अज्ञान थे। साइकिल चूर चूर हो गई थी।

क्षितीश ने अपने वस्त्र से एक टुकड़ा फाड़ कर साहब का क्षतस्थान बांधा, और झील से पद्म पत्र में पानी लाकर कपड़ा तर किया और मुंह, आंखें भी धोदीं। अनेक क्षण उप-रांत साहब को ज्ञान हुआ। ज्ञान होते ही साहब उठ कर बैठ गये और चारों ओर देख भाल कर क्षितीश से अंगरेज़ी में बोले-तुम कौन ?

क्षितीश—(अंगरेज़ी में) मैं एक दरिद्र पथिक हूं। इस वृक्ष के नीचे बैठा विश्राम कर रहा था, हठात आपको गिरते देख यहां दौड़ आया। आप कौन हैं और कहां जाते हैं ? आपकी गाड़ी बिल्कुल चूर होगई है अब आप किस प्रकार जांयगे ?

साहब—मैं उड़ीसा के गांव देखने के लिए निकला था। इस देश में बड़ा अकाल पड़ा है उसी का समाचार लेने आया था। मैं कलकत्ते के एक समाचार पत्र का संवाददाता हूं। इस समय पुरी की ओर जा रहा था। आप कहां जांयगे ?

क्षितीश—मेरे जाने का कोई नियत स्थान नहीं है। मैं बड़ा दरिद्र हूं। नौकरी के लिए घर से निकला हूं।

साहब—आप बङ्गाली दिखाई पड़ते हैं। नौकरी के लिए इस देश में क्यों आये? यहां तो अकाल है। कलकत्ते नहीं गये क्या?

क्षितीश—कलकत्ते भी गया था परन्तु वहां भी कोई नौकरी नहीं मिली। कोई आत्मीय तथा मित्र न होने से वहां नौकरी नहीं मिलती।

साहब—इसी से आपकी बङ्गाली जाति संसार में अपने को उन्नति जाति कहती है? तुम्हारे ऐसे दरिद्र का काम केवल पचास रुपये महीने में सुख पूर्वक चल सकता है। यदि चार धनाढ्य मिल कर तुम्हें पन्द्रह पन्द्रह रुपये मासिक दिया करें तो तुम अपना परिवार पाल सकते हो। जो जाति अपने भाई की सहायता करना नहीं जानती, उसके दुख को अपना दुख नहीं समझती वह जाति कभी उन्नत जाति कहे जाने के योग्य नहीं।

क्षितीश—सन्ध्या होने को है। आपकी गाड़ी तो टूट ही गई। पुरी यहां से सात आठ कोस पर होगी। अतएव आप किस प्रकार वहां पहुंचेंगे।

साहब—मैं भी यही सोच रहा हूं। आप कहां जांयगे?

क्षितीश—मैं कह चुका हूं कि मैं इस देश में पूर्णतयः अपरिचित हूं ठीक नहीं बता सकता कि कहां जाऊंगा। इस सामने वाले गांव में आज की रात काटने का विचार है।

साहब—तो चलिए हम भी आपके साथ चलें। हमारी बात चीत इस देश के लोग नहीं समझते। इस देश में अभी अंगरेज़ी भाषा बहुत कम प्रचलित हुई है। आप के साथ रहने से हमको बड़ी सुविधा रहेगी। आपको हमारे साथ रहने में इन्कार तो नहीं।

क्षितीश—इन्कार कुछ नहीं। आप चालिए। परन्तु आपकी गाड़ी किस प्रकार जायगी।

साहब—गांव में पहुंच कर किसी मज़दूर द्वारा उठवा मगायेंगे।

क्षितीश—ठीक है, चलिए।

यह कह कर क्षितीशचन्द्र उठ कर खड़े होगये। साहब भी उठ खड़े हुए। साहब बहुतसा रक्त निकलजाने से कुछ दुर्बल होगये थे अतएव धीरे धीरे चलने लगे। क्षितीश भी साहब के साथ साथ गांव की ओर चले। संध्यापश्चात दोनों मनुष्य गांवमें पहुंचे। यह गांव नितांत मूर्ख लोगों का निवास स्थान था। वे लोग साहब को देखकर अत्यंत भय-भीत हुए। क्षितीश यद्यपि उड़िया भाषा भलीभांति नहीं जानते थे तथापि किसी न किसी प्रकार उन्होंने उनलोगों को समझा दिया कि वे दोनों बड़े कष्ट में हैं और एक रात के लिए उनके अतिथि रहेंगे। भयका कोई काम नहीं है।

एक टूटेफूटे घर में उनको स्थान दिया गया। क्षितीश साहब को वहां छोड़ एक मज़दूर सहित उनकी गाड़ी लेने गये। गाड़ी लेकर लौट आनेपर साहब के भोजन का प्रबंध किया।

कुछ दूध कुछ पके केले तथा अन्यान्य प्रकार के फल साहब के लिए लाये। स्वयं चिड़ुवे चवाकर, रात काटी।

दूसरे दिन पुरी जाने के लिए सवारी का प्रबंध कर दिया और एक मज़दूर पर गाड़ी लद्वाकर साथ कर दिया।

चलते समय साहब क्षितीश चन्द्र से बोले—बाबू, हम तुम्हारे सद्व्यवहार से बहुत सन्तुष्ट हुए। तुम भी हमारे साथ पुरी चलो।

क्षितीश—मैं यहां केवल नौकरी के लिए नहीं आया। इस देश के जगन्नाथ देव हमारे प्रधान देवता हैं, उनके दर्शन करूंगा, देशभी घूमूंगा और साथही साथ यदि कोई नौकरी चाकरी मिलगई तो अच्छी बात है नहीं तो फिर कलकत्ते लौट जाऊंगा।

साहब—अच्छा तो कलकत्ते पहुंच कर**नम्बर इसप्लेनेड स्ट्रीट में हमसे मिलना। आपका नाम, ग्राम ?

क्षितीश ने अपना नाम, ग्राम बताया। साहब ने उसे अपनी पाकेटबुक में लिख लिया।

छठा खण्ड
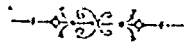
पहला परिच्छेद।
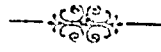
बहू बाज़ार स्ट्रीट में एक तिमंज़ले मकान के सन्मुख एक औषधालय है औषधालय देखने में बड़ा है। पांच छः मनुष्य काम किया करते हैं। द्वार पर साईनबोर्ड लगा है। उस पर लिखा है—मिस यूथिका दासेस एलोपेथिक स्टोर।

इस औषधालय में डाक्टर दानीशचन्द्र सर्वदा उपस्थित रहते हैं और रोगियों की परीक्षा बिना फ़ीस लिये ही करतेहैं।

घर की बीच वाली मंज़िल में दो हिस्से हैं। एक में यूथिका दानीश सहित रहती है, दूसरे में एक धनी मारवाड़ी सपरिवार वास करते हैं। पांचकौड़ी भी आकर इसी मकान में ठैहरा।

विभुक्षिता गृधिनी जिस प्रकार मांस खण्ड की ओर लालसामय वक्र दृष्टि से देखती रहती है उसी प्रकार यूथिका भी पांचकौड़ी को अपने प्रेम जाल में फंसाने की चेष्टा में रहती थी।

सन्ध्या समय मकान की छत पर ५—स्वेच्छा से तुमको पर यूथिका और पांचकौड़ी विराजमान थे।`।

यूथिका ने उस दिन अपूर्व श्रृंगार किया था.
उसने मन में दृढ़ प्रतिज्ञा करली थी कि—"आज या तूमुझे कौड़ी को अपना बनाऊंगी, या उसे वासी फूलों के माला भी तरह पैरों के तले मसल डालूंगी"।

यूथिका के सामने ही कुर्सी पर पांचकौड़ी वैठा था। वह धीर, स्थिर तथा गम्भीर था। उसकी गम्भीरता, वड़ी पवित्र, वड़ी मधुर, तथा वड़ी कठिन थी। यूथिका के सौन्दर्य के आगे ठैहरना कोई सहज काम नहीं।

वह नागिन की तरह पीठ पर लटकती हुई चोटी, वह चन्द्रमा को लज्जित करने वाला मुख, वह गुलाव के फूल से कपोल, वह रक्तवर्ण अधरोष्ट, वह नयनों के कटाक्ष रूपी वाण। ऐसे पुरुष विरले थे जो यूथिका के उस हृदयहारी सौन्दर्य, हृदय छीन लेने वाले रूप के आगे स्थिर रहते। उन्हीं विरले पुरुषों में से पांचकौड़ी भी एक था।

पांचकौड़ी क्या योगी है? ऐसी मोहनी मूर्त्ति के देखने से तो महायोगीश्वरों के भी आसन डोल जाते हैं। तो फिर पांच-कौड़ी कौन? पांचकौड़ी मातृ-उपासक शक्ति साधक।

इसी कारण पांचकौड़ी इस संज्ञाहीन अनंत सौन्दर्य को अपनी उपास्य देवी मातृमूर्ति का विकाश समझ कर मनही मन उसे प्रणाम किया करता था और यूथिका को मातृवत समझा करता था।

. शब्द है। मां के नाम से अद्र
है, हृदय पुलकित होकर नाचने भी लगता
नंदाश्रु से भर जाते हैं। मांको पुकारना सीखा है।
गन्ध स्पर्शमयी अनंत सौन्दर्य शालिनी मां को पहि-
लेया है, इसी कारण पांचकौड़ी आत्मजयी है। इन्द्रिय
ण जबतक रूप, रस, गंध, स्पर्श के कङ्गाल रहते हैं तब
तक नई नई वासनाएँ उत्पन्न हुआ करती हैं और मन में
वासनाएँ उत्पन्न होने से अपना फल प्रसव किये बिना नष्ट
नहीं होतीं; प्रकृति का यही नियम है। किन्तु यदि इस अनंत
प्रकृति को सर्वजनयित्री रूप में पहचान लिया जावे, हृदय से
मां कहकर पुकारा जावे, तो इन्द्रियों का कार्य शेष हो जाता
है। वह आत्म-विस्मृत जीवात्मा को जगत के विकार दिखा
देती हैं। मां को पुकारो तो देखोगे कि करुणामयी जननी
जिस पथ से आई है उसी पथसे लौट जायगी और जिसने
जीवन की चिन्ह-विहीन मरु भूमि में पथ खो दिया है उसको
फिर पथ दिखा देगी। इसी को शक्ति साधना कहते हैं। इसी
साधना के साधक को शक्ति साधक कहते हैं। पांचकौड़ी भी
इसी साधना का सिद्ध पुरुष था।

यूथिका बोली—सुनो पांचकौड़ी, मेरे हृदय की ओर
देखो, इसका प्रत्येक अणु परमाणु तुम्हारा हो गया है। मैं
तुम्हीं को चाहती हूं।

पांचकौड़ी—(गम्भीर स्वर से) मां, अन्याय वासना
क्यों? मैं तुम्हारी सन्तान हूं।

यूथिका—उफ़, यह पुरानी हठ छोड़ो। बहुत दिन हुए
कह चुकी कि मैं बंधन मुक्त कामिनी हूं। किसी के साथ मेरा

कोई सम्पर्क नहीं। मैं स्वेच्छाचारिणी हूं—स्वेच्छा से तुमको ग्रहण करती हूं। प्राणप्रिय तुम मेरे हो जाओ।

पांचकौड़ी—तुम मेरी मां हो।

यूथिका—फिर वही बात! यह न समझना कि तुम्हुम्हे दादा जान जायंगे, नहीं वे कदापि नहीं जान सकेंगे, हं भी दोनों अपनी वासना गोपन पूर्ण किया करेंगे।

पांचकौड़ी—मां, पुत्र से ऐसी बातें मत कहचकौड़ी को,

यूथिका—सुनो पांचकौड़ी, इस जीवन में हो?
रुदन कभी नहीं किया। इङ्गिलमान में सैन
जल गये। यह समझ बूझ कर भी तुम
तुम्हारे केवल एक बेर इतना कहने से
मेरा जीवन कृतार्थ हो सकता है।
कर पकड़वा दूंगी।
यह कह कर यूथिका आराग
कौड़ी के सामने घुटने टेक कर अ
ध किया है?
प्राण हरण करके उसे पैरों
यूथिका—(हाथ जोड़ कर
पर पानी फेरते हो, उसकी
रक्षा करो। मैं तुम्हारे बिना संस
ी विनती नहीं सुनते। इतना
नाथ! नारी हत्या मत करो। ह
क्या अपराध किया"। अब
कर रहूंगी, अपना तन मन धन
रहते हो? अबभी समय है
करके सुख पूर्वक जीवन व्यत
। समय निकल जाने से हाथ
नहीं सहा जाता, तुम्हारी विर
मेरे बनोगे? मेरे हृदय से लग
रक्षा करो, दया करो——।?

यह कह कर यूथिकार गम्भीरता तथा दृढ़ता पूर्वक
पांचकौड़ी उसी प्रकार गर

दृढ़ता पूर्वक पांचकौड़ी बोला—कदापि नहीं।

उन्मादिनी की तरह यूथिका उठ कर खड़ी हो गई।

पांचकौड़ी के मुख की ओर भीषण दृष्टि से देख कर बोली—अच्छा तो तैयार हो जाओ। यह न समझना कि मुझे जला कर सुख पूर्वक रह सकोगे। यह देखो,—तुम्हें भी जलना पड़ेगा।

यूथिका ने अपने पास से निकाल कर पांचकौड़ी को, एक वस्तु दिखाई। दिखा कर बोली—पहचानते हो?

पांचकौड़ी—पहचानता हूं।

यूथिका—हाल सुना है?

पांचकौड़ी—सुना है।

यूथिका—तुम्हीं को दोषी कह कर पकड़वा दूंगी।

पांचकौड़ी—मैं ने क्या अपराध किया है?

यूथिका—यूथिका का मन प्राण हरण करके उसे पैरों से ठुकराते हो, उसकी आशाओं पर पानी फेरते हो, उसकी प्रार्थना पर ध्यान नहीं देते, उसकी विनती नहीं सुनते। इतना कुछ करने पर भी पूछते हो "क्या अपराध किया"। अब देखूंगी तुम किस प्रकार सुख से रहते हो? अवभी समय है कहा मान जाओ, मेरे हो जाओ। समय निकल जाने से हाथ नहीं आवेगा। बोलो, प्रियतम मेरे बनोगे? मेरे हृदय से लग कर मेरी इच्छाएं पूर्ण करोगे?

पांचकौड़ी उसी प्रकार गम्भीरता तथा दृढ़ता पूर्वक बोला—कदापि नहीं।

यूथिका दांत पीस कर बोली—ऐं ! अब भी "नहीं" ?

पांचकौड़ी—मां के साथ पुत्र का व्यवहार सदा एकसा रहता है ।

अब यूथिका वहां नहीं ठैहरी, शीघ्रता पूर्वक नीचे उतर गई।

पांचकौड़ी बड़ी देर तक बैठा कुछ सोचता रहा । तत्पश्चात् एक गाना गुनगुनाता हुआ नीचे चला गया ।

दूसरा परिच्छेद ।
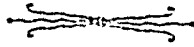
रमणी अनन्त की महिमा, विश्वकी गरिमा, सृष्टि का नैपुण्य । नारी, विलासियों का विलास, साधकों की साधना, योगियों का ध्यान, तपस्या की प्राण । स्त्री, स्नेह की मन्दाकिनी, पवित्रता में गोमुखी, दयादाक्षिण्य में भागीरथी प्रेमकी फल्गु । यही नारी सहिष्णुता में सीता पातिव्रत्य में सावित्री, तेजस्विता में द्रौपदी । रमणी गृहकार्य्य में गृहिणी सन्तान पालन में जननी, क्षुधा में अन्नपूर्णा । नारी की अपार महिमा भाषा में व्यक्त नहीं होसकती-व्याख्या में सम्पूर्ण नहीं होती ।

लिया। अब शीघ्र कोई उपाय करना चाहिए नहीं तो मान मर्य्यादा सब मिट्टी में मिल जायगी और जेल तो देखना ही पड़ेगा।

यूथिका—एक काम करो। तुम राना साहब की मां को एक चिट्ठी लिख दो और उस में यह लिखो कि "मैं पांचकौड़ी को अभी घर से निकाले देता हूं और आप मुझे इसके लिए क्षमा प्रदान कीजिए।" तुम केवल इतनी बात लिख दो, शेष मैं कह सुन लूंगी।

दानीश कुछ देर तक चिन्ता करने के उपरान्त बोले—यही ठीक है।

यूथिका—वे जान गये हैं, अब यदि पांचकौड़ी और यह हार दोनों छिपा दिये जांय तो भी केस चलेगा। वे मुझे गवाह नियत करेंगे, और मैं प्राण रहते कभी झूठ नहीं बोलूंगी। ब्रिटिश गवर्नमेण्ट का राज्य— पांचकौड़ी भाग के जायगा कहां ?

दानीश—अच्छा, चिट्ठी इसप्रकार लिखें कि कोई क़ानूनी पकड़ न हो।

यूथिका ने अपनी सम्मति दी। दानीश ने लिखा:—मेरे ऊपर दया करके क्षमा कीजिए। उसे अभी यहां से निकाले देते हैं। आपकी वस्तु भेजता हूं।

दानीश.

यूथिका पत्र और हार लेकर चली गई। दानीश ने पांचकौड़ी को बुलवाया।

बात यह थी कि उस मकान के दूसरे भाग में जो मार-वाड़ी रहते थे उनकी स्त्री का हार खो गया था। मारवाड़ी की स्त्री ने भय के कारण यह बात पति से नहीं बताई। दो तीन दिवस उपरांत मारवाड़ी को यह हाल मालूम होगया और उन्होंने अपनी स्त्री से पूछा। उनकी स्त्री ने यह कह कर बात बनाई कि—"मुझे मालूम नहीं था कि वह खोगया"। मारवाड़ी महाशय अपनी स्त्री के चरित्र पर विशेष विश्वास नहीं करते थे। कारण, उनका चरित्र स्वयं अच्छा नहीं था, नहीं तो उन की स्त्री लक्ष्मी रूपा थी। मारवाड़ी महाशय ने पुलीस में रिपोर्ट करदी थी। एक घर में रहने के कारण यह बात प्राय: सभी जान गये थे।

यह कुकर्म यूथिका का था। पांचकौड़ी को फंसाने के लिए उसने यह कार्य पहले ही से कर रक्खा था।

मारवाड़ी के घर में यूथिका आती जाती थी अतएव एक दिन घात पाकर हार चुरा लाई।

नौकर के साथ आकर पांचकौड़ी दादा के सामने खड़ा होगया।

नौकर को विदा कर के दानीश कर्कश कंठ से पांचकौड़ी से बोले—हमारे प्राण खाने तू यहां क्यों आया?

पाचकौड़ी—क्यों, मैं ने क्या किया?

दानीश—अब भी पूछता है क्या किया? पाजी, बदमाश, तेरे लिए हमारा सर्वनाश होने वाला है। हार किसका चुराया, बता।

पांचकौड़ी—हार मैंने नहीं चुराया।

दानीश—तो क्या मैंने चुराया है रे, मूर्ख ?

पांचकौड़ी—मैं आपके पैर छूकर कह सकता हूं कि मैंने नहीं चुराया। मैं ने वह हार यूथिका के पास देखा था।

दानीश—नमकहराम ! यूथिका ने तेरे साथ क्या क्या उपकार किये, वह तुझे पुत्र से अधिक समझती है, तेरे लिए दूसरों से क्षमा मांगने गई और तू कहता है कि यूथिका के हाथ में देखा था। नमकहराम, पाजी, कुत्ते, जा अभी मेरे घर से निकल जा!

अश्रुपूर्ण नेत्रों से दादाकी ओर देकर पांचकौड़ी बोला—यूथिका मेरी मां है, स्नेह क्यों नहीं करेगी ? मैं कल सवेरेकी गाड़ी से चला जाऊंगा। किन्तु दादा, मेरी एक बात ध्यान पूर्वक सुन लीजिए। आप बड़े भाई हैं आपका मंगल मेरा ही मंगल है। आप यूथिका का साथ छोड़िए। घर की लक्ष्मी तो अन्नाभाव से हाहाकार कर रही है और आप इस विषधरी के विष में जर्जरित हो रहे हैं।

दानीश ने इस का कोई उत्तर नहीं दिया, बकते झकते चले गये। पांचकौड़ी अपने कपड़े बांधने का प्रबन्ध करने लगा।

तीसरा परिच्छेद ।

आरवाड़ी महाशय का नाम जो कुछ हो, परन्तु सब उन्हें राजा साहब कहा करते थे अतएव हमभी उन्हें राजा ही साहब लिखेंगे ।

राजा साहब के आचार विचार आधुनिक ढंग के होने पर जातीयता-विवर्जित नहीं थे । उनके पिता स्वदेश से कलकत्ते आकर कुछ दिन कपड़े की फेरी करते रहे, ततपश्चात एक दूकान करली और अगाध धन कमाया, राजा साहब का जन्म कलकत्ते ही में हुआ था—कलकत्ते ही में उन्होंने अंगरेज़ी पढ़ी थी ।

उनकी वयस तीस वर्ष से अधिक नहीं थी । वे कोई व्यवसाय-वाणिज्य नहीं करते थे केवल पितृ-उपार्जित धन को सूद पर देकर अपना संसार चलाया करते थे । वह मकान उन्हीं का था । बड़े हिस्से में स्वयं रहा करते थे, छोटा यूथिका तथा दानीश को किराये पर दे रक्खा था ।

यूथिका के ऊपर उनकी प्रेम-दृष्टि पड़ी थी किन्तु यूथिका अब वह यूथिका नहीं रही थी । वह अब स्वेच्छा-चारिणी नहीं थी । उसके हृदय में वेदना उत्पन्न हो गई थी । वह एक के प्रेम जाल में फंस गई थी । यूथिका जानती थी कि राजा साहब उसे चाहते हैं परन्तु उसने कभी प्रेमभाव से उनकी ओर भूलकर भी नहीं देखा था । परन्तु आज यूथिका

अपनी इच्छा से राजा साहब के पास गई और राजा साहब को एकांत में ले जाकर उसके सन्मुख एक कुर्सी पर बैठ गई।

राजा साहब बोले—डाक्टर साहबा आज आपने किस लिए मेरा घर पवित्र किया ? आज मेरे बड़े सौभाग्य।

यूथिका—सौभाग्य दुर्भाग्य तो मैं जानती नहीं, राजा साहब. परंतु मैं आपको··· ·····कहते लज्जा आती है ······।

राजा—कहिए कहिए, आप रुक क्यों गईं ?

यूथिका—क्या कहूं, आप मुझे निर्लज्ज समझेंगे। परंतु जो हो, अब कहे बिना नहीं रहा जाता। बात यह है कि मैं आपको चाहती हूं।

राजा—(चकित होकर) ऐं, यह मैं क्या स्वप्न देख रहा हूं, या मेरे कान मुझे धोखा देते हैं ? डाक्टर साहबा, कहीं आप मेरी हंसी तो नहीं उड़ातीं ?

यूथिका—नहीं राजा साहब, न स्वप्न है, न धोखा है, न हंसी है। जो कुछ मैंने कहा वह अक्षर अक्षर सत्य है।

राजा—(आनन्द सागर में गोते खाते हुए) "चाहती हूं" आह, क्या मधुर शब्द हैं, आह, क्या अमृतधारा रूपी वाक्य है जिसने विरह अग्नि में जलते हुए हृदय को शीतल किया।

यूथिका—आज एक आवश्यक कार्यवश मुझे अपना प्रेम आप पर प्रकाशित करना पड़ा। आपका एक बड़ा अनिष्ट होने वाला है, आपको उसकी तनिक सूचना भी नहीं। प्रेम होने के कारण आपका अनिष्ट अपना अनिष्ट समझ कर मैं आपके पास आई हूं।

अब तो राजा साहब चकराये कि यह अमृतधारा में गरलविन्दु कहां से टपक पड़ा। अनिष्ट कैसा ? हे परमेश्वर ! कलेजा धड़कने लगा।

घबड़ाकर बोले—क्या अनिष्ट डाक्टर साहब।

यूथिका—उस बात के कहने से आपका कोमल हृदय व्यथित होगा।

राजा—क्या बात है ? कहिए मैं सुनने के लिए प्रस्तुत हूं।

यूथिका—आपको चाहती हूं, इसी लिए कहने आई।

राजा—तो कहिए तो क्या, हुआ.आपकी बातों से मेराजी घबड़ाने लगा।

यूथिका—आपकी स्त्री पवित्र रमणी—किन्तु तथापि अपने उद्दाम यौवन की लालसा के वशीभूत होकर डाक्टर साहब के भाई पांचकौड़ी से——।

राजा साहब उछल कर खड़े हो गये। उनका शरीर मारे क्रोध के थर थर कांपने लगा, भूमि पर पैर पटक कर कर्कश स्वर से बोले—यह बात आपसे किसने कही ?

यूथिका—सुनिए राजा साहब, मैं आपसे पहले ही कह चुकी हूं कि आपको हृदय से चाहती हूं, इसी लिए यह सस्वाद सुनाने आई। आप विचलित मत हूजिए, धैर्य रख कर सब बातें सुनिए।

राजा—कहिए कहिए आपको प्रमाण भी देना पड़ेगा, कहिए जल्दी कहिए—जल्दी——।

यूथिका—आपकी स्त्री ने अपना हार पांचकौड़ी को दिया है।

राजा—(अधिकतर उत्तेजित होकर) झूंठ बात, बिलकुल झूंठ, हार चोरी गया है।

यूथिका—यदि चोरी जाता तो आपकी स्त्री इतने दिन गोपन क्यों रखती ? यह देखिए।

यह कहकर यूथिका ने हार राजा साहब को दिखाया। राजा साहब की आंखों से आग बरसने लगी। दांत पीस कर बोले—ऐं यह धोका ? यह कपट ?

यूथिका—आप इतने उत्तेजित मत हूजिए। आप पुरुष हैं, स्त्रियों की तरह अधीर मत हूजिए। सुनिए पहले पूरी बात सुन लीजिए।

राजा—बस, बस, अब कुछ नहीं—— अच्छा कहिए।

यूथिका—इसलिए डाक्टर साहब ने आपको एक पत्र लिखकर क्षमा मांगी है। आपको क्षमा करना पड़ेगा, दया करनी पड़ेगी। यह कहकर यूथिका ने राजा साहब को पत्र दिया। राजा साहब ने पत्र पढ़ा और फाड़ कर फेंक दिया। अब उन का रहा सहा सन्देह भी जाता रहा। कर्कश कण्ठ से बोले—क्षमा ! नहीं, कदापि नहीं, बिना पांचकौड़ी का रक्त देखे मैं कदापि न मानूंगा।

यूथिका—अब आप फिर उत्तेजित होने लगे। राजा साहब, प्राणाधिक, मैं आपको हृदय से चाहती हूं, इसी लिए यह बात कही। परन्तु आप इतने विश्वलित मत होवें।

राजा—कुत्ता, सुअर, ऐसे आदमी को हतन करने में कोई पाप नहीं।

यूथिका—परन्तु आप पर विपद आने का डर है।

राजा—अब इस से अधिक विपद और क्या होगी ? जिसकी स्त्री दूसरे पर आसक्त, उसके लिए विपद स-म्पद क्या ?

यूथिका—डाक्टर साहब मुझे इतना चाहते हैं परन्तु मेरा हृदय सदैव आपके लिए व्याकुल रहता है।

राजा साहब—अब इस समय इन बातों पर विचार करने का अवकाश नहीं। समस्त हृदय ज्वाला पूर्ण हो गया है, बिना पांचकौड़ी का रक्त देखे यह ज्वाला नहीं बुझेगी।

यूथिका मनही मन आनन्दित हुई, कि वार खाली नहीं गया। ऊपर से गम्भीर होकर बोली—तो आप अब क्या करना चाहते हैं ?

राजा साहब—पांचकौड़ी का खून।

यूथिका—एक सामान्य बात के लिए आप आपदा क्यों बुलाते हैं। यह ब्रिटिश राज्य है।

राजा साहब—(जलकर) आप इसे सामान्य बात कहती हैं डाक्टर साहबा, यदि ऐसी बातें भी सामान्य हैं तो फिर संसार में असामान्य क्या है? मुझे सब कुछ स्वीकार है, फांसी चढ़ना भी स्वीकार है।

यूथिका—ना, ना ऐसा न कीजिए। आप उसे जेल पहुं-चवा दीजिए।

जसे ही जैसे यूथिका राजा साहब को ठण्ढा करने की बातें करती थी वैसे ही वैसे राजा साहब का क्रोध बढ़ता जाता था। और वैसी बातें कहने से यूथिका का उद्देश्य भी यही

था कि राजा साहब क्रोधान्ध होकर पांचकौड़ी का खून कर गुजरें।

राजा साहब बोले—जेल वेल नहीं, खून होगा खून। हमारा रक्त अभी बङ्गालियों के रक्त की तरह ठण्ढा नहीं हुआ है।

यूथिका उठकर खड़ी हो गई। उसकी आंखों से आग की चिन्गारियां सी निकलने लगी। बोली—तो ऐसाही सही। परन्तु आज ही यह कार्य्य समाप्त कर देना चाहिए। सुनिए राजा साहब, पांचकौड़ी ने मेरा सर्वनाश किया, मेरे साथ बलात्कार किया, मेरा सतीत्व नष्ट किया मेरे पास कुछ रुपये थे वह भी चुरा कर उड़ा दिये। उसकी मृत्यु से मुझे भी सुख है। उसके खून से मुझे भी शान्ति मिलेगी। परन्तु यह काम आप स्वयं न करके किसी दूसरे से करावें। कल वह घर चला जायगा। अतएव आज ही रात को कार्य्य शेष कर देना चाहिए। वह दवाखाने में सोता है, मैं उसका द्वार खुला रक्खूंगी।

राजा साहब कुछ नहीं समझे। राक्षसी का चक्र उन पर चल गया।

अपना मनोरथ पूरा होते देख यूथिका खुशी खुशी उनसे विदा हुई। यूथिका के चले जाने पर राजा साहब ने अपने अत्यन्त विश्वासी पाचक ब्राह्मण को बुलाया और उससे पांचकौड़ी की हत्या करने के लिए अनुरोध किया और दो सहस्र रुपयों का प्रलोभन भी दिया। साथ ही यह भी कह दिया कि—कार्य्य शेष करके और रुपये लेकर तुम सवेरे ही अपने देश चले जाना।

ब्राह्मण दो सहस्र रुपये का लोभ नहीं त्याग सका अतएव कुछ सोच विचार कर स्वीकार कर लिया।

चौथा परिच्छेद

दवाखाने का नौकर प्रातःकाल आकर द्वार खटखटाता था। द्वार खटखटाने से पांचकौड़ी जाग पड़ता और उठकर द्वार खोल देता। नौकर उस दिन भी उसी समय आया और द्वार पर धक्का मारा। धक्का लगते ही द्वार फट से खुल गया। नौकर विस्मित होकर भीतर गया और पांचकौड़ी की शय्या के पास पहुंचते ही चीत्कारकर उठा। पांचकौड़ी शय्या पर नहीं था। उसका बिछौना रक्त में भीगा हुआ था। शय्या से बहकर रक्त नीचे भूमि पर आ रहा था। यह भीषण दृश्य देख कर नौकर खून, खून, चिल्लाता हुआ बाहर आया। दानिश नौकर की चिल्लाहट सुनकर घबड़ा गये और घटना देखने के लिए दौड़कर वहां आये। दृश्य देख कर वे भी चिल्ला उठे। उनकी चीत्कार सुनकर पहरे वाला आकर उपस्थित हो गया। क्रमशः राजा साहब यूथिका और अन्य लोग आकर जमा हो गये। राजा साहब ने पांचकौड़ी का रक्त देखकर एक लम्बी सांस ली। यूथिका की आंखें बन्द हो गईं। उसके हृदय से करुण-विलाप ध्वनि निकली। अपने विदीर्ण हृदय को दोनों हाथों से थामकर मनहीमन बोली—"हाय! प्राणप्रिय पांचकौड़ी तुम कहां गये?

उसकी आंखों में आंसू नहीं थे, मुंह सूख गया था—वह उन्मादिनी की तरह हो गई थी।

यूथिका यह नहीं जानती कि पांचकौड़ी के मर जाने पर उसकी ज्वाला इतनी बढ़ जायगी। यूथिका यह नहीं समझती थी कि जिसके साथ प्रेम किया जाता है उस पर अभिमान, तथा क्रोध नहीं चलता। उसने पहले कभी प्रेम नहीं किया था। वह प्रेम का मूल्य, प्रेम की यथार्थता नहीं समझती थी, आज तक केवल दूसरों को अपने प्रेम में फंसाकर खेल किया करती थी, दूसरों के हृदय को पैरों से मसलना ही उसका उद्देश्य था। परन्तु पांचकौड़ी को वह वास्तव में चाहती थी। पांचकौड़ी के साथ उसका सच्चा प्रेम था। पांचकौड़ी उसका हृदय छीन कर चला गया। हाय! यह क्या सर्वनाश हो गया? यूथिका ने पांचकौड़ी का खून नहीं करवाया वरन् अपना खून करवाया, उसने अपना हृदय आप चीर डाला। रक्त—रक्त—रक्त! किसका रक्त? हृदयेश्वर पांचकौड़ी का रक्त, जीवन धन, जीवन प्राण का रक्त! उफ! कितना भीषण दृश्य! यूथिका खड़ी न रह सकी, बैठ भी न सकी। उसकी आंखों में संसार नरकाग्निमय हो गया। वह शीघ्रता पूर्वक वहां से चली गई।

दीनीश रोने लगे। व पूर्णतयः समझ गये कि राजा साहब के किसी नौकर ने उनके कनिष्ट सहोदर पांचकौड़ी का खून कर दिया है। रोतेरोते उन्होंने नौकर को थाने जाकर पुलीस बुलालाने के लिये कहा। थोड़ी ही देर बाद पुलीस इन्स्पेक्टर अपने दल सहित आ पहुंचे। उन्होंने घटनास्थल भली भांति

निरीक्षण करके एक रक्त से भरा हुआ छुरा ढूंढ़ निकाला। तत्पश्चात नौकर से पूछने लगे —तुम ने द्वार कब खोला ?

नौकर—सवेरे पांच बजे। हम रोज एही वखत बाबू का आयके बलावत रहे. हमरे बलावेंते उइ दरवज्जा खोल देत रहैं।

इन्सपेक्टर—बाबू रोज़ दरवाज़ा बंद करके लेटते थे।

नौकर—हां. काल जब हम रात का गयन तब हम बाबू का दरवज्जा बंद करत सुना।

इन्सपेक्टर दानीश के मुख की ओर देखकर बोला—खूनी घर ही का कोई मालूम होता है। इसके अन्दर ही अन्दर कोई छुरे से खून करके पुलीस की आंखों में धूल झोकने के लिए लाश उठा ले गया लेकिन खूनी एक नहीं कई हैं। एक आदमी ऐसी सफाई नहीं कर सकता।

तो क्या अब वह नहीं मिलेगा" यह कहकर दानीश वहीं ठसक कर बैठ गये।

इन्सपेक्टर साहब अपना कार्य समाप्त करके दस बजे के लगभग चले गये।

पुलीस की आज्ञा से नौकर ने वहां का रक्त धो दिया और बिछौना पुलीस अपने साथ लेगई।

दानीश का हृदय भाई के लिए छटपटाने लगा। उन्हें उस समय अपना ग्राम, घर याद आया, साथ ही साथ माता की याद भी आई। याद आते ही बालक की तरह रो पड़े। रोते रोते बोले-मां, मां, तुम्हारा प्यारा पञ्चू संसार में नहीं है। मां—हाय जब तुम्हें यह संबाद मिलेगा तो तुम्हारी क्या दशा

होगी। माँ, मेरी ही असावधानता से तुम्हारा नयनमणि चूर चूर हो गया।

इसी समय डाकपियन ने आकर दो पत्र दिये। एक घर से आया था दूसरा उनके परिचित कामारहाटी के ज़िमीदार रामप्राण बाबू का था। रामप्राण बाबू ने पोस्टकार्ड लिखा था, अतएव दानीश ने पहले वही पढ़ा। उन्होंने लिखा था—"पत्र देखते ही आप यहां आइए—हमारे घर में एक लड़की मरण शय्या पर पड़ी है। यहां आने पर फ़ीस मिल जावेगी। अन्य कार्य को छोड़कर पहले यहां आइए। यदि आप की कोई हानि होगी तो उसकी पूर्ति मैं कर दूंगा। आप की चिकित्सा से हमारे घर के आदमियों को लाभ पहुंचा है अतएव सब की श्रद्धा आप ही पर है। शीघ्र आइए।

तत्पश्चात दानीश ने घर का पत्र खोला। पत्र विष्णु सरकार के हाथ का लिखा हुआ था। उन्होंने लिखा था:—

'दानीश—अपने घर में केवल तुम्हीं सुशिक्षित हो। आत्मीय स्वजन तुम से अनेक आशाएं रखते थे। परन्तु तुम्हारा एकदम से अधःपतन हो गया। तुम्हारे साथ ही साथ तुम्हारा घर भी मिट्टी में मिल गया। इसके अतिरिक्त सर्वोपरि विपद यह हुई कि छोटी बहू घर त्याग के न जाने कहां चली गई। उनके इस प्रकार चले जाने से लोग अनेक प्रकार की बातें कहते हैं परन्तु मेरा दृढ़ विश्वास है कि वह सती है। केवल किसी अत्याचार के कारण उस ने घर छोड़ दिया है। तुम्हारी मां की अवस्था अति शोचनीय है। पत्र पढ़ते ही घर चले आओ। आते समय साथ में पांचकौड़ी को भी लेते आना"।

'विष्णु सरकार'

"शांति शांति, तू क्या असती निकली ? हा हतभागे दानीश, अब तू किस मुंह से शांति का नाम लेता है।"

दानीश ने मन ही मन उपरोक्त वाक्य कहे। इसके बाद मन में आया कि पांचकौड़ी को साथ ले जांयगे, परन्तु उसी क्षण याद आया कि पांचकौड़ी कहां ? दानीश चीत्कार करके बोले—"हाय पांचकौड़ी तू कहां है ?"

पांचवां परिच्छेद।
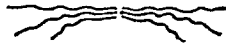
बज्रदग्ध वृक्ष की तरह दानीश बड़ी देर तक बैठे आकाश पाताल सोचते रहे। कभी अपने परिवार, कभी अपनी दुर्दशा, कभी पांचकौड़ी की मृत्यु, कभी शांति का गृह-त्याग इत्यादि इत्यादि का ध्यान करते रहे। तदुपरांत मन ही मन बोले—" हाय असह्य ताप, क्या करें, कहां जांय, क्या करने से यह भीषण ज्वाला शांति होगी। रामप्राण बाबू ही के घर जांय। रेल-भ्रमण, तथा बाहर की जलवायु आदि से जी बहल जायगा। वहां के लोगों से मिलने से कदाचित यह ज्वाला शांति होगी। दानीश उठ कर घर के अन्दर गये। ब्राह्मण ने भोजन प्रस्तुत कर रक्खा था। उन्हों ने स्नान किया, बेमन से नाम मात्र भोजन किया, इसके उपरांत नौकर को बुला कर पूछा—यूथिका ने स्नान भोजन किया।

नौकर बोला—नाहीं बाबू, उनकी भेज दी। पुलीस को यह
वह पञ्चू बाबू खातिर पड़े रोये रही हैं। हत्याओं में कोई गूढ़
पुलीस ने अनुसंधान
दानीश—कहां हैं? त्वरा उठे। दानीश
नौकर—नीचे वाले कमरा मां। जाइए। कारोनर
दानीश ने कपड़े पहने और यूथिका को देखने दो खून!
ऊपर गये। यूथिका की मूर्त्ति बड़ी भयंकरी हो रही थी। बाल बिखरे हुए, वस्त्र तितर बितर, आंखों से आग की चिनगारियां सी निकलती हुईं, वास्तव में वह उन्मादिनी सी होगई थी। वह स्थिर होकर नहीं बैठ सकती थी—न खड़ी हो सकती थी। कभी बैठती थी, कभी उठती थी, कभी टहलती थी।

दानीश के घर में प्रवेश करते ही वह उनके सामने आ खड़ी हुई और पागलों की तरह विकट हंसी हंस कर बोली—कहिए डाक्टर बाबू कैसे? छोटे भाई का रक्त पीकर अभी पेट नहीं भरा और पेट के लिए रुपये कमाने जाते हो। हाः हाः हाः पांचकौड़ी—हिः हिः हिः मैं उसका नाम लेने योग्य कदापि नहीं।

दानीश उसकी अवस्था देख अत्यन्त व्यथित हुए। बोले यूथिका! क्या तुम पांचकौड़ी से प्रेम करती थीं?

यूथिका बोली—प्रेम? किससे प्रेम? पांचकौड़ी से प्रेम! दूर, तुम पागल! मैं हीन—वह महत्। मैं पापी—वह पुण्यात्मा। मैं राक्षसी वह देवता। मैं क्या उससे प्रेम कर सकती हूं? उस से प्रेम करने के लिए स्वर्गीय पवित्र हृदय चाहिए। मैंने

"शांति शांति, तू क्य ना बनाने के लिए रोई चिल्लाई,
दानीश, अब तू किस मुंह से हुआ । और होता क्यों? वह
दानीश ने मन ही " , उसे अपने हाथों से बलि दिया परंतु
मन म आया कि पांच था एक दिन भी किसी से न कही।
जब याद आया कि सर चकराने लगा। गिरते २ संभलकर बोले
बोले—"हाय पं ।

काट कर यूथिका बोली—ना. ना. मैं नहीं. सब
.अ बकवाद। किन्तु जानती सब हूं—ठैरो—अपेक्षा करो
न दो—पांचकौड़ी का ध्यान करने दो—फिर सब कहूंगी।

ठीक इसी समय राजा साहब के घर में बड़ा गोलमाल हुआ। एक आदमी हांफता हुआ दौड़कर आया और दानीश से बोला—डाक्टर बाबू, डाक्टर बाबू, आप जल्दी—जल्दी, चलिए—चलिए। हमारे मालिक की—मालिक की स्त्री ने—ने-फांसी लगाली फांसी। बड़ी देर हुई—बड़ी देर—जान पड़त है मर गई—मर। दानीश चन्द्र राजा साहब के घर में दौड़ कर गये। वहां जाकर देखा बड़ी भीड़ थी। लाश उतार ली गई थी।

पुलीस ने दानीश से पूछा—डाक्टर बाबू इसकी हालत देखने से आप या बता सकते हैं? बड़े ताज्जुब की बात है। एक दिन और एक ही घर में दो खून? मालूम होता है ये दोनों खून एक ही वजह से हुए हैं।

दानीश देख सुन कर बोले—बाहर के लक्षण देखने से तो आत्महत्या जान पड़ती है। परन्तु कारोनर की विशेष परीक्षा से सब मालूम हो जायगा।

पुलीस ने लाश परीक्षा के लिए भेज दी। पुलीस को यह दृढ़ विश्वास हो गया था कि इन दोनों हत्याओं में कोई गूढ़ संबंध है और इसी सूत्र पर चल कर पुलीस ने अनुसंधान करना निश्चय किया। राजा साहब बड़े घबरा उठे। दानीश से बोले—डाक्टर बाबू अभी आप कहीं मत जाइए। कारोनर की रिपोर्ट देखकर जाइएगा। एक ही दिन में दो खून! हमारा मन इस समय बड़ा विचलित हो रहा है।

पुलीस इन्स्पेक्टर वहां उपस्थित थे। उन्होंने देखा कि राजा साहब बड़े घबराए हुए हैं। इन्स्पेक्टर को, उनकी दशा देखकर संदेह हुआ। उन्होंने सोचा कि सम्भव है राजा साहब की स्त्री और डाक्टर बाबू के भाई में कोई संवन्ध रहा हो और उस संबंध को जानकर राजा साहब ने किसी के द्वारा दोनों का खून करा दिया हो। परन्तु यह कि सोचकर, कारोनर की रिपोर्ट देखे बिना कोई बात स्थिर नहीं कर सकते, वह चले गये और दो तीन सिपाहियों को घर पर छोड़ गये।

दानीश के हृदय में घोर अशान्ति थी, परन्तु तथापि बड़े धैर्य पूर्वक कारोनर की रिपोर्ट की प्रतीक्षा करते रहे। अनेक क्षण उपरोक्त रिपोर्ट मिली। कारोनर ने आत्महत्या होना ही निश्चय किया था।

दानीश राजा साहब से विदा होकर स्टेशन पर पहुंचे और कामारहाटी का टिकट लेकर ट्रेन में बैठ गये। उस समय संध्या के चार बजे थे। उस गाड़ी में दानीश अकेले ही थे। सहस्र सहस्र चिन्ताओं ने आकर दानीशचन्द्र को घेर लिया। यूथिका क्या पागल हो गई? यूथिका कहती थी कि पांचकौड़ी

से पाप न करा सकी अतएव उसकी हत्या की। उफ़—क्या सर्वनाश। तो क्या मेरा भाई एक पापिष्ठा वेश्या के हाथ से मारा गया। हाय, मैं नराधम सब कुछ भूल कर इस वेश्या के प्रेम जाल में फंस गया। ओफ! कैसा सर्वनाश हो गया। मेरे ही दोष से मेरी स्त्री ने भी घर त्याग दिया। हृदय! यह सब देख सुन कर भी तुम विदीर्ण नहीं हो जाते। शांति—शांति! मैं अधम, मैं पापी, अपवित्र, इन्द्रियदास। परन्तु तुम तो हिन्दूकुल वधू थीं, तुम ने यह अनर्थ क्यों किया? तुम क्यों मुझे छोड़ कर चली गईं। क्यों मेरे हृदय को जला दिया? तुम कलङ्किनी क्यों बनी? तुम ने यह पातक कर्म्म क्यों किया?

इसी सोचविचार में गाड़ी कामारहाटी स्टेशन पर पहुंच गई। संध्या उत्तीर्ण हो गई थी। दानीश स्टेशन के बाहर आये। उनके लिए पालकी पहले ही से आगई थी अतएव उसी पर सवार हो क़सबे की ओर चले।

॥ छठा परिच्छेद ॥

रामप्राण बाबू की आर्थिक अवस्था अच्छी थी। ज़िमींदारी भी बहुत थी नक़द रुपये की भी कमी नहीं थी। ज़िमींदारी की वार्षिक आमदनी चालीस सहस्र रुपये थी। सूद की आमदनी बीस सहस्र वार्षिक।

रामप्राण बाबू के रहने का घर बहुत बड़ा था—प्रायः आधा क़स्बा घेरे हुए था।

रामप्राण बाबू कृतविद्य तथा धार्मिक थे, वयस सत्तर से कुछ अधिक। सन्तानों में दो पुत्र, दो कन्याएं जीवित थीं।

पुत्र हाईकोर्ट के वकील थे। कन्याएं भी विवाहिता तथा सन्तानवती थीं।

दानीशचन्द्र की पालकी रामप्राण बाबू के बैठक खाने के सम्मुख उतारी गई। दानीश पालकी से उतर कर बैठक खाने में गये। रामप्राण बाबू दानीश की प्रतीक्षा ही कर रहे थे। अतएव उन्हें देखते ही प्रसन्नता पूर्वक उठकर खड़े हुए और बोले—आशा थी कि आप दोपहर ही को आजायेंगे परन्तु जान पड़ता है किसी आवश्यक कार्य के कारण इतनी देर हो गई। खैर आइए पहले रोगी को देख लीजिए।

रामप्राण बाबू ने एक नौकर से आगे आगे लालटैन ले चलने को कहा और दानीश को लेकर अन्दर चले।

दानीश ने पूछा—रोगी को क्या रोग है? इसके पहले किसी को दिखाया था?

राम—रोगी नहीं, रोगिणी है।

दानीश—रोग क्या है?

राम—ज्वर और छाती में दर्द।

दानीश—किसको दिखाया था?

राम—एक यहीं के डाक्टर को।

दानीश—उन्होंने क्या बताया?

राम—पहले तो निमोनियां कहते थे, परन्तु कल संध्या को बोले कि हमको रोग ही का पता नहीं लगता; इसी कारण आप को पत्र लिखा।

दानीश—ज्वर की दशा कैसी रहती है?

राम—सारे दिन ज्वर का ताप एक सौ छः डिग्री रहता है। संध्या को कम होने लगता है और रात को बारह बजे तक एक सौ डिग्री पर आ जाता है। शेष रात में फिर बढ़ने लगता है। छाती में दर्द बहुत रहता है परन्तु ज्वर के समय कुछ कम हो जाता है। ज्वर कम होते ही फिर बढ़ जाता है।

दानीश—रोगिणी को ज्ञान है।

राम—ज्वर के समय बिल्कुल अज्ञान रहती है परन्तु कम हो जाने पर कुछ कुछ ज्ञान हो जाता है ?

इसी तरह की बातें करते करते रोगिणी के सुसज्जित कमरे के द्वार पर पहुंचे। रोगिणी की शैय्या के पास रामप्राण बाबू की स्त्री स्वयं उपस्थित थी। उसके अतिरिक्त और भी तीन चार स्त्रियां बैठी थीं। रामप्राण बाबू पुकार कर बोले—तुम लोग ज़रा हट जाओ, डाक्टर बाबू रोगिणी को देखेंगे।

रामप्राण बाबू की स्त्री तथा अन्य स्त्रियां एक पास वाले कमरे में चली गईं।

कमरे में खूब प्रकाश हो रहा था। रोगिणी का समस्त शरीर एक श्वेत चादर से ढका हुआ था।

रामप्राण बाबू ने पुकारा—बेटी कुछ ज्ञान हुआ ?

उनकी बात का कोई उत्तर न मिला। उन्होंने दूसरे कमरे की ओर (जिसमें स्त्रियां चली गईं थीं) देखकर कहा-- आज अभी तक होश नहीं आया क्या ?

रामप्राण बाबू की स्त्री एक दूसरी स्त्री से धीरे धीरे बोली—कह दो, संध्या को कुछ कुछ हुआ था, परन्तु पीछे दवा खाने पर फिर चुप हो गई। जान पड़ता है सो रही है।

दानीश बोले—तो आप में एक रोगिणी के पास आ जावें। हम नब्ज़ देखेंगे, छाती की परीक्षा करेंगे।

एक विधवा प्रौढ़ा स्त्री ने रोगिणी के पास आकर मुख पर से चादर हटाई।

उस तेज़ रोशनी में रोगिणी का व्याधि, विषाद क्लिष्ट मुख देख कर दानीश चौंक पड़े, उन्हें मूर्छा सी आने लगी, बड़ी कठिनता से स्वयं को संभाला।

प्रौढ़ा स्त्री ने रोगिणी को पुकारा—बेटी क्या सो रही हो।

रोगिणी वास्तव में सो रही थी। प्रौढ़ा के पुकारते ही उसने आंखें खोल दीं। आंखें खुलते ही देखा कि सामने उसकी जन्मजन्मांतर की आराध्या प्रतिमा, उसके हृदय देवता, उसके जीवन प्राण दानीशचन्द्र खड़े हैं।

रोगिणी शांति थी।

दानीशचन्द्र रामप्राण बाबू से बोले—महाशय, थोड़ी देर ठहरिये, मैं अभी रोगिणी को नहीं देख सकता, मेरा सर चकरा रहा है।

यह कह कर दानीशचन्द्र कमरे के बाहर हो गये।

छोटी बहू (शांति) उठने की चेष्टा करने लगी परन्तु निर्बलता के कारण फिर शैय्या पर गिर पड़ी। सब हां हां करके दौड़ पड़े। शांति उन्मादिनी की तरह बोली—"आज आज—मेरी शेष आशा—आशा—पूर्ण हो गई। अब—मैं—सुख—से—सुख से—मर सकूंगी। एक बेर और दिखादो—अभी अच्छी—तरह—नहीं दे।"खा

बहुतों ने सोचा कि आज लड़की का रोग बढ़ गया है इसीलिए अंड बंड बक रही है।

परन्तु संसार रस अभिज्ञ वृद्ध रामप्राण बाबू समझ गये कि इस लड़की और डाक्टर बाबू में कोई सम्बन्ध अवश्य है।

डाक्टर बाबू बारण्डे में जा पहुंचे थे। रामप्राण बाबू ने उन्हें पुकार कर कहा—डाक्टर बाबू! लौट आइए। रोगी की अवस्था ठीक नहीं है दवा शीघ्र देना चाहिए। परन्तु दानीश नहीं लौटे सीधे बैठक खाने में चले गय।

थोड़ी देर बाद दानीश फिर आये और रोगिणी की परीक्षा करके बैठक खाने लौट गये।

रामप्राण बाबू बोले—जब तक रोगिणी अच्छी न हो जाय आप को यहीं रहना पड़ेगा।

दानीश—क्षमा कीजिएगा, मैं अधिक समय तक नहीं ठहर सकता। कलकत्ते में मुझे कई रोगी देखना है प्रातः काल ही मुझे कलकत्ते पहुंचना है। कोई भय न कीजिए. आप की रोगिणी अच्छी हो जायगी। जल में डूबने से बहुत सा जल पी गई, कुछ तो निकल गया, कुछ रह गया। जितना रह गया उसी के विकार से ज्वर आने लगा। अब जो दवा दी है उस से ज्वर जाता रहेगा।

रामप्राण बाबू मुसकरा कर बोले—डाक्टर बाबू सच बताइये यह रोगिणी आप की कौन है?

दानीश—(कुछ सिटपिटाकर) मेरी? मेरी—तो—ओ··कोई—न—हीं।

राम—नहीं कोई तो अवश्य है। जान पड़ता है आप की स्त्री है।

दानीश—मेरी स्त्री ? आप ने कहां पाई ?

राम—कहा तो, कि बाहर से नाव पर चढ़ा आ रहा था। रात को हठात नदी में किसी के कूदने का शब्द हुआ। नाव फिरा कर उसी स्थान पर ले गया, वहां ढूंढने पर यह मृतावस्था में मिली। इसे नाव में रख कर यहां ले आया। लड़की अभी तक अज्ञान रही। अतएव कोई बात बता नहीं सकी। परन्तु अज्ञानता में जो कुछ कहती रही उस से विदित हुआ कि लड़की सती साध्वी है और उस ने यह कार्य किसी सांसारिक दुख के कारण किया है।

दानीश की आंखों से आंसू बरसने लगे। बोले—नहीं, स्त्री मेरी कोई नहीं।

इसी समय अन्दर से दासी ने आकर कहा—बाबू, आप तनिक भीतर आओ।

रामप्राण बाबू दानीश से बोले—आप जरा ठहरिए, मैं अन्दर हो आऊं फिर आप के जाने का प्रयत्न कर दूं।

यह कहकर रामप्राण बाबू भीतर चले गये।

रोगिणी के सिरहाने बैठी रामप्राण की स्त्री मुसकरा रही थी और अपना हाथ रोगिणी के सर पर फेर रही थी।

रामप्राण वहां पहुंच कर बोले—क्यों बुलाया ? तुम इस समय कुछ प्रसन्न मालूम होती हो। रोगिणी की अवस्था इस समय अच्छी जान पड़ती है, क्यों ?

गृहिणी बोली—बहुत अच्छी। डाक्टर बाबू की दवाने जितना लाभ नहीं पहुंचाया उतना उनके दर्शन ने पहुंचा दिया। यह लड़का कौन है जानते हो?

राम—कैसे जान सकते हैं?

गृहिणी—यह मेरी भानजी है—शांति

राम तुम्हारी कौन सी बहन की लड़की है?

गृहिणी—हम दो ही बहन तो थीं—कोई दस पन्द्रह थोड़ो ही थीं।

राम—हां, सागरमणि और नयनमणि।

गृहिणी—मेरी मां के कोई लड़का नहीं हुआ था। हम ही दो लड़कियां थीं। दीदी का विवाह शम्भूपूर हुआ था। वह थोड़ी ही वयस में विधवा हो गई थी। थोड़े दिनों ही पीछे वह मर भी गई। उसी समय मैंने इस शांति का नाम सुना था परन्तु देखा कभी नहीं था। तुम्हारे प्रताप से लड़की और जमाई दोनो को देखा। अब समझे, शांति मेरी भानजी और डाक्टर बाबू जमाई।

राम—शांति को होश आया है?

गृहिणी—हां, मेरे पूछने पर उसने अपनी मां का नाम गांव, ससुराल आदि सब बताई। (कुछ उदास होकर) क्या कहूं मेरे बाप के घर में कोई नहीं रहा—मेरे भाग।

राम—शांति से पूछा, कि वह नदी में क्यों कूदी थी? और जिस गांव की नदी में कूदी थी वह गंगारामपूर है और इनकी ससुराल शोणपूर है, यह गंगारामपूर कैसे आई?

शांन्ति करवट बदल कर उठने लगी। जान पड़ता था कि रामप्राण बाबू के प्रश्न का उत्तर देने के लिए उठती थी परन्तु गृहिणी ने उठने नहीं दिया। बोली—अभी बात करने से बिगड़ जायगा—कल सब सुन लेंगे।

शांति फिर लेट रही, कोई उत्तर न दिया।

रामप्राण बाबू कुछ सोचकर बोले—बड़े आनन्द की बात है किन्तु—गृहणी उत्सुक होकर बोली—किन्तु क्या ?

राम—डाक्टर बाबू के मन में बड़ा सन्देह है परन्तु मुझे दृढ़ विश्वास है कि हमारी बेटी शांति पवित्र है। खैर—जब ईश्वर ने यह मिलन किया है तो सब अच्छा ही अच्छा होगा।

यह कह कर रामप्राण बाबू बाहर चले आये।

दानीश उस समय चिन्ता सागर में मग्न थे। उनकी चिन्ता सीमाहीन थी। भ्रातृ शोक—अपने निष्फल अपवित्र प्रेम की तीव्र वेदना—और सर्वोपरि शांति की बात। वह मन में कह रहे थे—शांति, शांति, तुम मर क्यों न गई, तुम्हें मैंने क्यों देखा ? पञ्चू मर गया, तुम भी मर जातीं तो मैं भी सुख पूर्वक मर जाता। शांति—तुम क्या वास्तव में कलंकिनी हो ? नहीं नहीं, मेरा शांति अपवित्र नहीं, पापिष्ठा नहीं। मैं अपवित्र शांति पवित्र, साध्वी। किन्तु किन्तु वह घर से क्यों भागी ? घर में उसे कौन सा दुख मिला ?

इसी समय हंसते हुए रामप्राण बाबू आ पहुंचे। उनको देखकर दानीश का स्वप्न टूटा। घड़ी देखकर बोले—हमें इसी समय स्टेशन जाना चाहिए देर हो जाने से गाड़ी नहीं मिलेगी।

रामप्राण बाबू मुसकरा कर बोले—रात को तुम्हारा जाना नहीं होगा।

यद्यपि रामप्राण बाबू दानीश से हर बात में बड़े थे तथापि उन्होंने दानीश को कभी "तुम्हारा" "तुम" कहकर बात नहीं की थी। हठात इस प्रकार उन्होंने ने क्यों कहा?

दानीश कुछ विरक्त होकर बोले—नहीं महाशय मुझे जाना होगा।

रामप्राण बाबू हंसकर बोले—मेरी स्त्री तुम्हें छोड़ना नहीं चाहतीं, मैं क्या करूं जाओ उससे पूछ लो, यदि वह कह दे तो चले जाओ।

अब तो दानीश और भी चकराय कि यह बात क्या है? बुड्ढा सिड़ी हो गया है क्या? अभी तो अच्छा भला था। यह थोड़ी ही देर में क्या हो गया? इस घर में सब रोगी ही रोगी दिखाई पड़ते हैं।

दानीश रामप्राण बाबू का मुंह ताकने लगे।

रामप्राण बाबू बोले—तुम आश्चर्य मत करो। तुम अभी जानते नहीं हो परन्तु अब कानखोल कर सुन लो कि शांति हमारी स्त्री की भानजी है और तुम हमारे जमाई हो।

यह कह कर रामप्राण बाबू ने जो कुछ गृहिणी से सुना था वह सब कह सुनाया।

दानीश बोले—जी हां, सुना तो मैंने भी था कि मेरे श्वसुर कुल में मेरी एक मौसेरी सास है परन्तु विशेष कुछ नहीं जानता था।

रामप्राण बाबू हंसते हुए बोले—हम लोग भी तुम्हें नहीं जानते थे। अच्छा भीतर चलो।

दानीश—इस समय तो मुझे क्षमा कीजिए। मैं इसी ट्रेन से कलकत्ते जाऊंगा। अब मैं आप का सन्तान हूं यदि आप आज्ञा करेंगे तो रहना ही पड़ेगा। परन्तु—।

बाधा देकर रामप्राण बाबू बोले—तुम कोई सन्देह मत करो हमारा लड़की का चरित्र निष्कलंक है यह मैं शपथ पूर्वक कह सकता हूं। याद रक्खो कलंकिनी कभी जीवन त्यागने का साहस नहीं कर सकती। इसके आतिरिक्त जो अज्ञानावस्था में भी केवल पति का ही नाम रटे वह कैसे कलंकिनी हो सकती है? ऐसी सती संदेह योग्य कदापि नहीं।

दानीशचन्द्र एक लम्बी सांस लेकर बोले—ख़ैर—-यह बातें पीछे देखी जायंगी इस समय एक नई विपद आ पड़ी है?

रामप्राण बाबू कुछ घबरा कर बोले—कौन सी विपद?

दानीश—मेरा छोटा भाई मेरे ही पास रहता था, कल रात को उसका खून हो गया।

राम—(कांप कर) ख़ून?

दानीश—जी हां।

राम—उफ़, बड़ा दुख हुआ।

दानीश—अभी पुलीस की गड़बड़ नहीं मिटी अतएव मेरा जाना आवश्यक है।

राम—तो मैं अब तुम्हें नहीं रोक सकता। तुम्हारी सास से यह बात कहूं?

दानीश—गोपन कहियेगा,—रोगिणी सुनेगी तो शोका-तुर होवेगी और ऐसा होने से रोग बढ़ जाने का भय है।

रामप्राण—हां, यह तो ठीक है।

तत्पश्चात उन्होंने सौ रुपये दानीश की फीस देने के लिए मंगवाये दानीश बोले—अभी रहने दीजिये, इकट्ठे ले लूंगा।

रामप्राण बाबू मुसकरा कर बोले—लड़की यदि बाप के घर बीमार हो और जमाई फ़ीस ले तो कोई बुरी बात नहीं, यह प्रथा तो कलकत्ते के डाक्टरों में बहुत दिनों से प्रचलित है।

दानीश इसका कुछ उत्तर न देकर केवल मुसकरा दिये। पालकी आगई थी अतएव उस पर बैठ कर स्टेशन की ओर चल दिये।
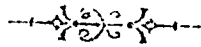
सातवां परिच्छेद ।

रामसेवक की माता ही इस समय घर की मालकिन है और रामसेवक घर के कर्त्ता धर्त्ता । बड़ी बहू पहले भी कुछ नहीं करती थी, अब भी कुछ नहीं करतीं । जगदीशचन्द्र की माता उन्मादिनी की तरह हो गईं यदि अच्छी भी होती तो भी किसी में न थीं । वह एकान्त में चुपचाप बैठी आकाश पाताल सोचा करती थीं । कभी नेत्र शुष्क, कभी अश्रुपूर्ण । जिस समय निस्तार स्नान करा देती, उस समय स्नान कर लेती थी । यदि निस्तार स्नान न कराती तो स्नान नहीं होता था । भोजनादि रामसेवक की माता ही बनाया करती थी। जिस समय और जो वह देती वही निस्तार माता को खिला देती थी । उन्हें खाने पीने तक की सुधि भी नहीं थी ।

दस बजे रामसेवक की माता भोजन बना रही थी । रामसेवक रसोईघर के द्वार पर पैर फैलाये बैठा माता के साथ गप्पें उड़ा रहा था । माता भोजन बनाती जाती थी और पुत्र के मुख से उसकी उन्नत कथा सुनकर पुलकित हो रही थी । बातें करते करते रामसेवक बोला—समझी मां, जब किसी की उन्नति का समय आता है तब उसका ऐसा ही होता है ।

माता गर्वित स्वर से बोली—तू, न जाने कितने ठाकुर कितने देवता मनाने से हुआ था, भगवान तुझे चिरंजीव रक्खें और तू अपने बाप का नाम चलावे, यही मेरी प्रार्थना है । ऐसी

म०—मैं झूठ नहीं कहता हूं मां, अब मेरी उन्नति का दर्र आ गया। इधर देखो, इतने थोड़े दिन की चिकित्सा से तुरन्त कितनी विख्याति हो गई। इस महीने में तीन चार रुपये भी कमा लिये। और किसान तो मेरे चेले हैं—जिस से जो कह देता हूं झट कर देता है। और एक ख़बर सुन।

माता—कौन सी ख़बर बेटा ?

राम—बद्रिनाथपूर के एक भलेमानस की लड़की है, अहा, लड़की क्या है परी का टुकड़ा है। अब सुनो, वे लोग उसका विवाह मेरे ही साथ करने कहते हैं।

माता—इस से अधिक आनन्द की बात और कौन है बेटा, परन्तु गहना, ख़रच पत्तर कहां से आयेगा ?

राम—ओहो ! बस यही तो तुम समझती नहीं। यदि अपने पास से गहना और खरच दिया तो फिर बात ही क्या है। अजी मेरा नाम सुनकर तो वे गहना भी देंगे और विवाह का दोनों ओर का खरच भी देंगे—और क्या ! और मैं भला इसके बिना कब विवाह करने वाला हूं—अजी राम राम। और सुना मां वह देंगे, झख मारेंगे, देंगे। और वह बिचारे क्या देंगे, मेरा नाम दिवावेगा। और जो कहीं लड़की ने मुझे देख लिया तो फिर किसी दूसरे के साथ विवाह करेगी नहीं। यह मनो तेल पिला पिलाकर जो बाल बढ़ाए सो किस दिन के लिए।

माता—हां बेटा, तेरे ऐसे बाल तो मैंने किसी के देखे नहीं।

राम—अजी मैं तो विशेष ध्यान नहीं देता नहीं तो न क्या क्या कर दिखाऊं।

माता—और उन्हें भी ऐसा वंश नहीं मिलेगा। मैंने जो करें। अब

राम—अजी वंश ? मैं कहता हूं ऐसा वंश और ऐसा लड़का यदि कोई मिल जाय तो टांग तले से निकल जाऊं।

ठीक इसी समय गांव का चपरासी हाथ में लट्ठ लिये आ पहुंचा और रामसेवक को पुकारा—मालिक, अरे ओ मालिक, तनिक बाहर आओ, दारोगा जी बुलावत हैं।

दारोगा का नाम सुनकर रामसेवक के देवता कूच कर गये, सारी गप्प हांकना भूले। कांपते हुए उठकर बाहर चले।

रामसेवक की माता पुत्र को पुकार कर बोली—अरे रामू, कपड़े पहनता जा रे।

राम—(विरक्त स्वर से) कपड़े नहीं पहनूंगा।

माता—अच्छा तनिक खड़ा हो जा, राई नोन उतार कर फेंक दूं और थोड़े बाल काट दे—तेरे ऐसे बाल नहीं देखे, कहीं नज़र न लग जाय।

चपरासी हंसकर बोला—काहे मां जी, बार काटै का होई।

रामसेवक की माता बोली—लड़के पर हाकिम हुकुम की नज़र पड़ी है, मेरा बेटा इतना नामजादा हुआ। जान पड़ता है कुछ विवाह की बात चीत करने आये हैं।

चपरासी बहुत हंसा। रामसेवक चला जा रहा था माता की बात सुन कर कुछ रुका। उसके रुकते ही चपरासी

[illegible]न में हाथ देकर एक धक्का मारा और बोला—अरे [illegible] चलौ, दरोग़ा तुम्हरे बाप के नौकर नाहीं हवैं जो घंटन तु[illegible] खड़े रहिहैं।

हाकिम के भावी जमाई के साथ ऐसा सद्व्यवहार होते देख रामसेवक की माता बड़ी चकराई और हाल देखने के लिए आकर द्वार पर खड़ी हो गई।

रामसेवक दारोग़ा के सामने ले जाकर खड़े किये गये। दारोग़ा जी ने आंखें लाल करके रामसेवक को सिर से पैर तक घूरा। रामसेवक का कलेजा धड़ धड़ करने लगा।

दारोग़ा ने पूछा—तुम्हारा नाम ?

राम—(कांप कर) रामसेवक।

दारोग़ा (एक कान्सटेबल से) लगाओ हथकड़ी।

यह सुनकर पांड़े जी ने झट झोली से हथकड़ी निकाल कर रामसेवक के हाथों में कस दी और गाल पर एक लप्पड़ मार कर अलग हो गया।

यह व्यापार देखकर रामसेवक की माता चिल्ला कर रोने लगी।

विष्णु सरकार दूर खड़े हुए यह दृश्य देखकर मुसकुरा रहे थे। एक चौकीदार जो गांव के कुछ भले मनुष्यों को बुलाने गया था, वह इसी समय उन्हें साथ लेकर लौटा।

उनमें से एक ने विष्णु सरकार से पूछा—क्या बात है ?

विष्णु सरकार हंसकर बोले—बात कुछ नहीं, इस घर की छोटी बहू कहीं चली गई। मेरा विश्वास है कि इस बद-

माश के अत्याचार के कारण ही उसने घर त्याग दिया। मैंने इससे बहुत पूछा परन्तु इसने असली बात नहीं बताई। अब मैंने विवश होकर दारोग़ा से सहायता ली। आप लोग यहीं रहिए आज यह असली बात अवश्य बतावेगा।

वह हंसकर बोला—अच्छा तो यह फंदा आप ही का रचा हुआ है?

विष्णु सरकार उन लोगों को लेकर दारोगा के पास आये और बोले—दारोग़ा साहब, यह बिचारा बड़ा भला आदमी है आप ने इसे क्यों पकड़ा? विष्णु सरकार की बात सुन कर रामसेवक चिल्ला कर रोने लगा। रोता २ बोला—देखिए साहब, यह जानते हैं, मैं कैसा भला आदमी, हूं आप ने मुझे क्यों पकड़ा?

द्वार पर से रामसेवक की माता भी बोली—मेरा बेटा बड़ा भला है। दुहाई दरोगा साहब की, उसे छोड़ दो।

दारोग़ा बोले—भला आदमी तो खून करता नहीं।

रामसेवक अत्यन्त भयभीत होकर कम्पित कंठ से बोला—ऐं खून? मैंने खून किया?

विष्णु सरकार हंसते हंसते बोले—इसने किसका खून किया है दारोग़ा साहब?

दारोग़ा—इस घर की छोटी बहू का।

रामसेवक—ऐं? यह क्या? मैंने उसका खून किया? वह तो भाग गई है साहब, मैंने खून कैसे किया?

दारोग़ा—चुप बे पाजी! जब फांसी के तख्ते पर झूलोगे बच्चा, तब जान पड़ेगा।

रामसेवक की माता चीत्कार कर उठी। बोली—हायरे हमारा क्या होगा रे, इस घर में क्यों मरने आये थे रे। हमारा कोई नहीं है रे।

रामसेवक भी अपनी मां के सुर में सुर मिलाकर बोला—हायरे हमारा क्या होगा रे—इस घर म क्यों मरने आए थे रे। हमारा कोई नहीं है रे।

विष्णु सरकार दारोग़ा की ओर देखकर मुसकराते हुए बोले—दारोग़ा साहब, सत्य ही इसका कोई नहीं। अच्छा, जो यह सच सच हाल कहदे तो इसे छोड़ दीजिएगा?

दारोग़ा हंसकर बोले—हां, यदि सब सच सच कह दे तो छोड़ देंगे, परन्तु यह बड़ा पाजी है सच कभी न कहेगा।

रामसेवक की मां रोते रोते बोली—इसके घर में कोई पाजी बदमाश नहीं है दरोगा साहब। वह बहू पाजी बदमाश थी उसी के पीछे यह सब हुआ।

विष्णु सरकार रामसेवक की माता को धमका कर बोले—तुम्हीं ने अपने लड़के को इतना पाजी बदमाश कर दिया। तुम्हारे ही दुलार से उसका अधःपतन हुआ। अब भी उसे सब सच सच कह देने दो, नहीं तो, किसी प्रकार नहीं बचेगा। (रामसेवक से) रामसेवक जो कुछ जानते हो सब सच सच कह दो, छोड़ दिये जाओगे। परन्तु यह याद रक्खो कि यदि कुछ भी झूठ—।

बाधा देकर रामसेवक रोता रोता बोला—सब कहता हूं, सब सच कहता हूं—मां तो कुछ फांसी जायगी नहीं, फांसी

तो मुझी को होगी। मां के कहने से क्या झूठ बोलूंगा ? और इसके अतिरिक्त मेरे गले में त्रिकंठि माला है।

दारोगा—अच्छा बोलो, सच बोलो, छोटी बहू कहां गई ?

राम—सच कहता हूं हुजूर--मुझे नहीं मालूम वह कहां गई, मैंने बहुत ढुढ़वाया परन्तु मिली नहीं।

दारोग़ा—ज़रा सा भी झूठ बोले और फांसी पर लटके, यह याद रखना। अच्छा, वह घर से क्यों भाग गई।

राम—मैंने हंसी में दो एक बातें कह दी थीं।

रामसेवक की मां बोली—मेरे लड़के को हंसी ठट्ठा अच्छा लगता है, मैंने बहुत कहा कि सब से हंसी ठट्ठा न किया कर, सब को तो हंसी अच्छी लगती नहीं। परन्तु मेरा लड़का अभी नासमझ है, और भलेमानस सब नासमझ होते हैं।

विष्णु सरकार फिर धमका कर बोले- तुम चुप न रहोगी क्यों? लड़के को फांसी पर चढ़वाने की इच्छा है क्या ?

रामसेवक की माता चुप हो गई।

दारोग़ा ने पूछा—हां जी रामसेवक—तुम ने क्या हंसी की थी ?

रामसेवक—वह मेरे साथ बात चीत नहीं करती थी इसी कारण इसके लिए मैं कभी कभी हठ करता था।

दारोग़ा—अच्छा, तो वह क्या कहती थी ?

राम—मेरी बुआ से कह देती थी। किसी दिन बुआ मुझे कुछ कहती सुनती भी थी,—किसी दिन उसी को डाटती थी। इसी कारण प्रायः वह रोया करती थी।

दारोग़ा—अच्छा फिर ?

राम—फिर साहब मैंने एक दिन कहा, परन्तु बिल्कुल हंसी में—शपथ करके कहता हूं बिल्कुल हंसी में कहा था—मैंने कहा कि मैं किसी दिन तुम्हारे सतीपन को बिगाड़ दूंगा। गांव के किसानों द्वारा उठवा ले जाऊंगा, फिर तुम्हें कोई नहीं रक्खेगा। तो साहब वह ऐसी पागल थी कि मेरे इतना कहने ही से उसी दिन रात को भाग गई।

दारोग़ा ने विष्णु सरकार के मुख की ओर देखा। विष्णु सरकार का मुख मारे क्रोध के लाल हो रहा था, कर्कश स्वर से बोले—सुनो रामसेवक! तुम आज तक गांव में क्या कहते फिरते थे, याद है कि नहीं ?

रामसेवक की मां फिर बोल उठी—तुम तो न जाने कैसे आदमी हो कुछ समझते ही नहीं,—क्या अपना दोष कोई कह देता है ? अब इस समय बिना कहे न बनते देख कह दिया।

दारोग़ा ने रामसेवक की मां को धमका कर चुप किया।

रामसेवक बोला—हां याद क्यों नहीं है ? मैं ने कहा था कि एक लड़के के साथ भाग गई है।

विष्णु—वह बात क्या झूठ है ?

राम—हां झूठ बात है।

विष्णु—कौन सी बात झूठ है ?

राम—पहले की बात।

विष्णु—पहले की बात झूठ है या पीछे की, इसका प्रमाण क्या है ?

राम—प्रमाण मेरी बुआ है। जिस दिन मैं उस से कुछ कहता था उसी दिन वह बुआ से जाकर कह देती थी।

विष्णु—बस करो, अब आगे कुछ कहने की आवश्यकता नहीं। यह कहकर विष्णु सरकार ने निस्तार को बुलवाया। निस्तार आकर द्वार पर खड़ी हो गई।

विष्णु सरकार ने पूछा—तु क्या यहां थी ?

निस्तार—हां हम सब सुना ह।

विष्णु—अच्छा बड़ी बहू से जाकर पूछो कि जो कुछ रामसेवक ने कहा वह सच है या झूठ ?

निस्तार चली गई। सब उत्सुकता पूर्वक उसके लौटने की प्रतीक्षा करने लगे।

थोड़ी देर बाद निस्तार लौट आई और बोली—बहू रानी कहती हैं कि हम जानित है, छोटी बहू रानी का कौनौ कसूर नाहीं है, रामसेवक के दिककरैं से उइ चली गईं। जो हम पहले सब खोज खबर राखित, तौ या सरबनास (सर्वनाश) न होत। यह सुनकर विष्णु सरकार लोगों से बोले—आप जानते हैं कि सती लक्ष्मी के नाम पर कलंक लगाया गया है। अब आप कान खोलकर सुन लें कि वह सती हैं। पापी के अत्याचार से अपनी रक्षा करने के लिए घर त्यागा है। सास से, बड़ी बहू से कहने में जब कोई भला न देखा—स्वामी से कहने का उपाय ही नहीं था—तब हताश होकर अपना अमूल्य धन बचाने के लिए घर से निकल गई।

बात सुनकर सब की आंखे भीग गई। दारोग़ा बाबू के कहने से रामसेवक की हथकड़ी खोल दी गई। सब लोग उसे धिक्कार देते हुए अपने अपने घर चले गये। रामसेवक भी रोता रोता घर के अन्दर चला गया।

आठवां परिच्छेद ।

अस्त होते हुए सूर्य की किरणें, वृक्षों, और मकानों पर पड़कर उन्हें स्वर्णावत कर रही थीं। वायु शीतल होने लगी थी।

दूसरे मुहल्ले के राय महाशय की लड़की शारदा ने आकर मझली बहू को पुकारा—अरी शिबू, कहां गई? बहुत दिनों से तुझे देखा नहीं, मैं कल सुसराल जाऊंगी, इसी से मिलने आई हूं।

मझली बहू अपने कमरे में दीपक प्रज्वलित करने का प्रबन्ध कर रही थी, शारदा को बुलाकर बोली—आजा बहन, यहां आजा, मैंने भी तुझे बहुत दिनों से नहीं देखा। सुसराल जायगी? स्त्री का महातीर्थ सुसराल ही है। बहन तेरे देखने में भी पुण्य है।

शारदा मुसकुराकर बोली—अरी तू सुसराल की भक्त कब से हुई। तू तो सुसराल के नाम से चिढ़ा करती थी। अरी तेरा तो मुंह भी बहुत उतर गया।

मझली—आ बहन, सब कहूंगी, पेट में जो आग भरी है वह सब कहकर दिखाऊंगी।

शारदा—बहन तेरा भाव देखकर मुझे डर लगता है, जल्दी बता क्या बात है।

मझली बहू ने शीघ्रता पूर्वक अपना काम समाप्त कर दिया और शारदा को लेकर एकांत में बैठी।

शारदा—तेरी दीदी आई है क्या ? मैंने सुना उसे एक महीना हो गया। मझली—हां दीदी के लड़का होने को है इसी कारण आई है। वह बड़े घर की बहू है। उठकर भी नहीं बैठती। मैं हत भागिनी, मेरा स्वामी दरिद्र—उसका उसके लड़के वालों का काम मुझी को करना पड़ता है। नहीं करती हूं तो सैकड़ों बातें सुनने में आती हैं माता जैसी जैसी बातें कहती हैं वह मैं तेरे से क्या कहूं। शारदा—मैं पहले नहीं जानती थी कि पति के चरणों तले ही रह कर स्त्री को सुख मिल सकता है। सवेरे से दस बजे रात तक काम करते मरती हूं कोई बात भी नहीं पूछता, यह भी खबर नहीं लेता कि शिबू ने खाया अथवा नहीं। हाय—मैं अभागिनी, मैं पापिनी नहीं जानती थी कि चाहे मां हो, बहन हो, भाई हो, कोई हो, इतना स्नेह इतना प्रेम किसी को नहीं होता जितना कि अपने पति को। हाय उन्होंने प्राण देकर मेरी दवा की, मुझे अच्छा किया, परन्तु मुझ हत्यारिणी ने उनकी सेवा का थोड़ा सा आदर भी नहीं किया। परन्तु अब समझी। उस दिन भारी ज्वर आया, दस दिन तक पड़ी रही किसी ने पानी तक को न पूछा, खाने पीने की क्या कहूं। अब यह दुख नहीं सहा जाता हाय ! क्या अब वे नहीं मिलेंगे ?

मझली वहू आंचल से मुंह ढाक बिलख बिलख कर रोने लगी। थोड़ी देर रो चुकने के उपरांत फिर रुद्ध कंठ से कहने लगी—सुन शारदा, मैं बड़ी हतभागिनी हूं, पापिनी हूं इसी से पाप की आग में जलती हूं। मेरी बात याद रखना—स्वामी और ससुराल यही स्त्री का संसार है, यही स्त्री के सुख हैं। स्वामी और स्वामी के घर वालों की सेवा शुश्रुषा करने से सब तीर्थों का फल मिलता है।

शारदा की आंखों में पानी भर आया। उसने पूछा—राय महाशय की कोई ख़बर नहीं मिली।

मझली—नहीं। ईश्वर उन्हें चिरायु रक्खे, मुझे वे प्राणों से अधिक चाहते थे। मैंने उनसे जो जो कहा वही उन्होंने किया। मेरे सुख के लिए, गर्मी, सरदी, आग, पानी सब सहे। मेरे कहने से माता, भ्राता सबों को छोड़ दिया। मैं सुख से हूं यह जानकर यहां कितने अपमान सहे। उसके बदले में मैंने क्या किया? उनकी सेवा शुश्रुषा करना तो दूर रहा—मैंने जो कुछ किया वह तेरे से क्या कहूं बहन, परन्तु हां जो कुछ किया उसका प्रायश्चित अब हो रहा है। शारदा! क्या वे अब नहीं मिलेंगे, क्या अब उस प्रकार कोई स्नेह, प्रेम, न करेगा? मैं उनकी ख़बर पाकर ही सुखी हो जाती। हाय! जिस समय छलछल नेत्रों से विदा मांगी थी तब——।

मझली आगे कुछ न कह सकी पुनः फूट फूट कर रोने लगी।

शारदा बोली—तूं ससुराल चली जा, वहां तुझे कुछ शांति मिलेगी।

मझली—शारदा, मेरे ही पापों से वह घर उजड़ गया। अब वहां जाकर क्या करूं।

शारदा—बहन, इतनी अधीर न हो, भगवान पर भरोसा रख वे दया करेंगे तो फिर सब कुछ हो जायगा, रायमहाशय घर आ जांयगे तू ससुराल चली जा।

मझली—मैं पापिनी भगवान का नाम किस मुंह से लूं। जिसने स्वामी को दुख दिया, जलाया वह भगवान का नाम

लेने की अधिकारी नहीं। जैसे मैंने कर्म किये वैसा फल भोगती हूं और अभी न जाने कब तक भोगूं।

इसी समय हाथ में एक पत्र लिये हरचरण हंसते हंसते घर के अन्दर आये। माता और भगिनी शिबू को बुलाया। माता के साथ उनकी बड़ी लड़की और शिबू के साथ शारदा आकर उनके पास खड़ी हुई।

हरचरण हंसते हुए व्यङ्ग स्वर से बोले—भाग्य फिरे मां, तुम्हारी छोटी लड़की को लेने के लिए उसकी ससुराल से गाड़ी और पत्र आया है।

हरचरण की माता भी हंसकर बोली—मेरे भाग! बड़े बाप के बेटे घर आये हैं क्या?

नहीं, पत्र सुनो—यह कहकर हरचरण पत्र सुनाने लगे। लिखा था:—

हरचरण—बेटा तुमने मेरे घर की दुर्दशा सुनी होगी। रामसेवक और उसकी माता यहां से चली गई। अभी तक रामसेवक की माता भला बुरा भोजन बना के खिला देती थी। अब एक झूठा भात बनाने वाला भी कोई नहीं! जितने दिन जीवित हूं जितने दिन पापों का फल भोगना है उतने, दिन तक तो पेट को देना ही पड़ेगा। परन्तु, करे कौन? बड़ी बहू पुत्र शोक में मुंह लपेटे पड़ी रहती हैं। इसी कारण गाड़ी भेजती हूं मझली बहू को अवश्य अवश्य भेज दो। निस्तार भी साथ आती है। क्षितीश, दानीश तथा पञ्चू की कोई खबर नहीं। जतीशचन्द्र जीवित हैं।

चिर आशीर्वादिका—तुम्हारी "माता"

हरचरण की माता गर्जन करके बोली—हां जायगी क्यों नहीं ? मेरी बेटी दासी कर्म्म करने जायगी। और यह निस्तार रांड कौन है, आने तो दो इसे।

शारदा बोली—चाची मां, भेज दो, भेजने में कोई बुराई थोड़ा ही है। सास भी तो माता के बराबर है, उनकी सेवा करना तो अच्छी बात है।

हरचरण की माता उच्च स्वर से बोली—वाहरी मेरी सेवा करने वाली, अभी तक थी कहां। अब मेरी बड़ी लड़की आई है आज कल में उसके लड़का होने को है अब मैं उसे ससुराल भेज दूं ? और यहां का काम कौन करेगा।

मझली बहू दृढ़ता पूर्वक बोली—मैं जाऊंगी।

माता—जायगी—अच्छा जा परन्तु, अब जो रोती हुई आई तो घर में न घुसने दूंगी यह याद रखना।

मझली बहू माता की बात का उत्तर न दे, मन ही मन बोली यदि वहां स्थान न मिलेगा, तो नदी में तो मिलेगा। इतने में निस्तार भी आ पहुंची।

रात बहुत गई देख शारदा ने मझली बहू से कहा—बिंदू, अब मैं जाती हूं।

मझली बहू ने उसकी ओर अश्रुपूर्ण नेत्रों से देखा। शारदा चलती बेर इशारे से कहती गई—जाना, किसी तरह न मानना।
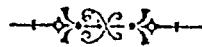
प्रथम परिच्छेद।

बहुत दिनों की अतृप्त आकांक्षा एवं निष्फल प्रयास क्लेश ने यूथिका के हृदय में जो वेदना उत्पन्न करदी थी, वह वेदना, पांचकौड़ी का वक्षरक्त पतित होने से और भी असह्य, सुतीक्ष्ण तथा भीषण हो गई। पांचकौड़ी बिना पागल हो जाना पड़ेगा, यह यूथिका नहीं जानती थी। यदि जानती तो पांचकौड़ी की हत्या कदापि न करवाती। उस समय उसने यह सोचा था कि पांचकौड़ी को संसार में न रखने से उसकी समस्त वेदनाओं का अन्त हो जायगा, उसकी सारी ज्वाला बुझ जायगी। उसने नहीं सोचा कि जिस आग में पांचकौड़ी जलेगा, उसी आग में उसे भी जल मरना पड़ेगा।

यूथिका किसी प्रकार स्थिर न हो सकी। नौकर ने स्नान करने के लिए अनुरोध किया, पाचक ने भोजन के लिए कहा, परन्तु उसने कुछ भी न किया। उसकी आंखें चढ़ी हुई, बाल बिखरे हुए और कपड़े तितर बितर थे।

दानीश के चले जाने पर यूथिका ने राजा साहब का संवाद जानने के लिए आदमी भेजा। उसन लौटकर उत्तर दिया कि राजा साहब की स्त्री ने फांसी लगाली।

यूथिका का उद्वेलित हृदय और भी उच्छ्वासित हो उठा। तीन पहर व्यतीत हो जाने पर नौकर ने बड़ी चेष्टा करके उसे थोड़ा भोजन खिलाया।

संध्या को यूथिका ने नौकर को थाने भेजकर पुलीस इन्स्पेक्टर को बुलाया।

उनके आने पर यूथिका उन्हें एकांत में लेकर बैठी। यूथिका की काली मूर्ति देखकर इन्स्पेक्टर ने सोचा—इस स्त्री ने या तो स्वयं खून किया है या खून का सारा हाल जानती है।

यूथिका गम्भीर होकर उदास स्वर से बोली—दारोग़ा बाबू, वह नहीं है—अब नहीं आवेगा, जिससे उसका हत्याकारी पकड़ा जाय आप वही कीजिए। मेरी बड़ी इच्छा है कि उसका हत्याकारी दंड पावे।

इंस्पेक्टर—मेरी भी यही ख्वाहिश है, मगर बिना कोई सूत पाये हुए खूनी को कैसे पकड़ें।

यूथिका—खून ही क्यों? मैं आप को हत्याकारी का संवाद तक बताती हूं।

इंस्पे०—अगर ऐसा हो तो खूनी अभी गिरफ्तार हो जायेगा। बतलाइए।

यूथिका—राजा साहब।

इंस्पे०—मारवाड़ी?

यूथिका—हां।

इंस्पे०—खुद।

यूथिका—या आप या किसी दूसरे से। उनको पकड़ने ही से सब भेद मालूम हो जायगा।

इंस्पे०—ज़रा हाल तो कह जाइए।

यूथिका—राजा साहब की स्त्री के साथ पांचकौड़ी का प्रेम था—राजा साहब जान गये और उन्होंने पांचकौड़ी का खून कर दिया या करा दिया। उनकी स्त्री ने लज्जा तथा क्रोध वश होकर आत्महत्या करली।

इंस्पे०—बखुदा, मेरा भी यही ख़याल था। मगर मजबूर इसलिए था कि बिला सुबूत गिरफ्तारी हो नहीं सकती।

यूथिका—सुबूत तो बहुत है।

इंस्पे०—ज़रा बतलाइए तो?

यूथिका ने प्रमाण सम्बंधी बहुत सी बातें इंस्पेक्टर को बताईं। उसकी बातों में अधिकांश झूठ ही था। उफ़ राक्षसी यूथिका ने पांचकौड़ी का खून कराने के लिए कितने मिथ्या-वाद किये और अब उसी के हत्याकारी को फंसाने के लिए फिर अनेक झूठ बोल रही है। सच है; मनुष्य के हृदय में जब एक बेर पाप प्रविष्ट हो जाता है तो वह क्रमशः बढ़ता ही जाता है, घटता नहीं।

सब बातें सुन कर इंस्पेक्टर बोला—मैं आप के कहने बमूजिब तहक़ीक़ात करूंगा और इन्शाअल्ला, जल्द ही खूनी को गिरफ्तार करके आप को खुश ख़बरी सुनाऊंगा। यह कह कर इंस्पेक्टर चला गया।

* * * * * * *

दानीश चन्द्र थोड़ी रात रहे कलकत्ते लौट आये। जिस घर में यूथिका सोया करती थी उस घर में जाकर देखा कि यूथिका उन्मादिनी की तरह एक पलंग पर पड़ी सो रही है। परन्तु उसकी निद्रा सुख की निद्रा नहीं थी। दानीश समझ गये कि यूथिका इस समय अनेक स्वप्न देख रही है—और वह सब स्वप्न भीषण तथा यन्त्रणा दायक हैं। यूथिका का मुख नीलवर्ण हो रहा था।

दानीशचन्द्र ने यूथिका को जगाया। वह शीघ्रता पूर्वक उठकर बैठ गई और उदास उन्माद नयनों से चारो ओर देखा। सामने दानीशचन्द्र को खड़ा देख भ्रुकुटी चढ़ाकर बोली—तुम, तुम तो पञ्चू नहीं हो—यदि पञ्चू नहीं तो यहां क्यों आये। हां आये, यूथिका से प्रेम करने आये हो, हाः हाः हाः प्रेम, प्रेम, सब झूठे। तुम इन्द्रियदास, गलियों के कुत्ते प्रेम क्या जानों? प्रेम पञ्चू जानता है—इसी से तो वह पवित्र, महत्। जाओ मेरे सामने से चले जाओ, अब कभी मेरे पास न आना, पञ्चू के ध्यान को न तोड़ना। पञ्चू, पञ्चू पञ्चू! आओ प्यारे आओ, क्या दासी से रुष्ट हो गये हां हां अवश्य रुष्ट हो गये होगे क्योंकि मैंने ही तुम्हारी हत्या की है, मैं ही ने——(दानीश की ओर देख कर) जाओ तुम यहां क्यों खड़े हो।

दानीश—यूथिका—क्या तुम वास्तव में पागल हो गई हो?

यूथिका—हाः हाः हाः पागल हो गई। ? नहीं, पहले पागल थी, अब पागल नहीं। जब तक उस स्वरूप को नहीं समझी तब तक पागल थी अब समझ गई हूं अब पागल नहीं। तुम, तुम, पागल हो, तुम सच्चे पागल हो, अब भी पागल हो,

पागल न होते तो अब भी कुत्ते की तरह मेरे पास दौड़ दौड़ कर न आते। क्यों आते हो? क्या प्रेम के लिए? हाः हाः हाः प्रेम, प्रेम, मैं प्रेम नहीं जानती थी, पञ्चू से प्रेम करना सीखा। परन्तु वह सिखाकर चला गया। कहां चला गया? बहुत दिनों तक उसका प्रेम गोपन रक्खा। तुम अज्ञान, अंधे उसे नहीं देख सके। वह पवित्र—शुद्ध, वह इस अपवित्र को क्यों ग्रहण करता। तुम्हारे ऐसे अन्धे भूल जाते हैं, वह क्यों भूले। पवित्र खून से नहा चुकी हूं—अब तुम्हें नहीं छूऊंगी। तुम पिशाच, राक्षस, इसी कारण पिशाची, राक्षसी के पीछे लगे घूमते हो। जाओ चले जाओ—अब कभी मत आना। हिः हिः हिः पञ्चू!

दानीश मन ही मन सोचने लगे—यूथिका सत्य कहती है। मैं यथार्थ में पिशाच हूं। मैं पवित्रता को छोड़ कर अपवित्रता के वश हो गया। स्वर्ग को छोड़कर नरक में जा गिरा, इसी कारण ईश्वर ने यह दंड दिया कि मेरी शान्ति ने मेरे हृदय में नरकाग्नि प्रज्वलित करने के लिए, कुल त्याग दिया। क्या शांति सत्य ही कलंकिनी है, पापिष्ठा है? नहीं नहीं उसने अत्याचार के कारण घर छोड़ा है। रामप्राण बाबू कहते थे कि पापी मरने का साहस नहीं कर सकता। यह बात सत्य है। अज्ञानावस्था में शान्ति मुझे ही पुकारती रही। रामप्राण बाबू शिक्षित, धार्मिक, दूरदर्शी, वे झूठ क्यों बोलेंगे? तब तो मेरी शान्ति मेरी ही है। हाय यूथिका ने मुझे भुला रक्खा था। मैं इन्द्रियदास, मैं उसका अत्याचार नहीं

समझ सका। पापिष्ठा ने मेरे भाई को पाप पथ पर लाना चाहा था। वह बुद्धिमान, वह समझ गया कि यह पाप है। उफ़ उसने पाप नहीं स्वीकार किया इसी कारण उसकी जान गई।

यूथिका अपनी रक्त वर्ण आंखें विस्फारित करके बोली— क्या सोचते हो ? मेरी बात ? नहीं, समझो कि यूथिका मर गई। मेरे पास अब मत आना। सुना है तुम्हारी स्त्री है, उसी के पास जाओ। दवा खाना मैं नहीं चाहती उसे भी तुम्हीं ले जाओ मेरे पास जो रुपये हैं उन्हीं सेमैं अपना जीवन चलाऊंगी। स्पष्ट कहती हूं मेरे पास मत आना। मेरे जले हृदय पर नमक न छिड़कना। जाओ चले जाओ अब कभी न आना (दांत पीसकर) यदि आओगे तो तुम्हारे लिए अच्छा न होगा जाओ मेरे सामने से हट जाओ। पञ्चू का ध्यान करने दो। पञ्चू, पञ्चू !

दानीश के जीवन का शुभ मुहूर्त आगया। उनको यूथिका राक्षसी दिखाई देने लगी। उन्हें यूथिका से घृणा हो गई। वे यूथिका के कमरे से चले गये और दवाखाने में रात व्यतीत करके प्रातःकाल कामारहाटी की ओर चल दिये।
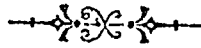
दूसरा परिच्छेद ।

कामारहाटी पहुंचते पहुंचते आठ बज गये । वहां पहुंच कर सुना कि शान्ति की अवस्था अच्छी है। अन्य दिन उस समय भारी ज्वर रहता था परन्तु उस दिन बिलकुल नहीं था । शान्ति बैठी सब के साथ बात चीत कर रही थी ।

उस दिन सुसराल में दानीश का वैसा ही आदर हुआ जैसा कि प्रायः जमाइयों का सुसराल में हुआ करता है और विशेषतः ऐसी सुसराल में जहां सास तथा स्वसुर दोनों, उदाराचित्त, शिक्षित तथा बुद्धिमान हों ।

इस मिलन में दानीश कोई सुख प्रतीत नहीं करते थे । कारण, प्रथम तो उनके हृदय में पांचकौड़ी की मृत्यु का शोक भरा हुआ था, दूसरे शांति के सतीत्व में भी उन्हें संदेह था । उस संदेह को वह मनमें दबाये हुए चिन्ता किया करते थे । कभी रामप्राण बाबू के वाक्य याद करके उनका संदेह क्षण मात्र के लिए जाता रहता था परन्तु फिर यह सोचकर कि रामप्राण बाबू के घर आने के पूर्व शांति कहां रही और किस दशा में रही ? उनका हृदय पुनः संदेह पूर्ण हो जाता था । रामप्राण बाबू ने संसार में रहकर बाल सफ़ेद किये थे अतएव दानीश की यह चिन्ता उनसे गोप न रही ।

आहारादि करके रामप्राण बाबू दानीश से बोले—बेटा, अब एक काम करना होगा ।

दानीश—क्या ?

राम—स्वामी, स्त्री का संबन्ध बड़ा पवित्र होता है। इस संबन्ध में विश्वास ही मूल वस्तु है—अविश्वास तथा संदेह का लेश मात्र भी रहने से सुख नहीं मिलता। अतएव हम एक प्रस्ताव करते हैं।

दानीश—कहिए।

राम—शांति का चरित्र पवित्र है, वह अपना सतीत्व बचाने के लिए जीवन विसर्जन करने तक को उद्यत हुई थी। परन्तु अभी तुम्हारे मन से संदेह दूर नहीं हुआ और जब तक यह संदेह दूर नहीं होगा शांति नहीं मिलेगी।

दानीश—आप ज्ञानी हैं आप का अनुमान असत्य नहीं हो सकता।

राम—अब तुम्हारे हितैषियों का कर्त्तव्य है कि वे तुम्हें शांति के पवित्र चरित्र का प्रमाण दें। इसलिए हम तुम्हें गंगारामपूर ले चलना चाहते हैं।

दानीश—वहां जाकर क्या होगा?

राम—शांति ने जो जो घटनाएं अपनी मौसी से कहीं, वे सत्य हैं या झूठ, इसका अनुसंधान करना होगा।

दानीश—आप हम दोनों के सच्चे हितैषी हैं अतएव आप जो ठीक समझें करें।

नदी में रामप्राण बाबू की सजी हुई नौका हर समय तैयार खड़ी रहती थी। रामप्राण बाबू ने उस पर आवश्यक

सामान लादने की आज्ञा दी। तत्पश्चात चार बलिष्ट सिपाही, एक नौकर, और एक पाचक ब्राह्मण को लेकर दानीश सहित नौका पर सवार हुए। मांझियों ने नौका खोल दी और डांड चलाना आरम्भ किये।

दानीश और शांति का साक्षात अभी नहीं हुआ था। रामप्राण बाबू तथा उनकी स्त्री ने यह परामर्श किया था कि जब तक प्रमाण देकर दानीश का संदेह दूर न कर दिया जाय उस समय तक इनका मिलन न किया जाय, क्योंकि जब तक हृदय में संदेह रहेगा उस समय तक इस मिलन में कोई सुख प्रतीत न होगा। शांति की चिकित्सा क़सबे के डाक्टर दानीश के परामर्शानुसार करने लगे।

तीसरा परिच्छेद ।

कारहाटी से गंगारामपूर नदी पथ द्वारा जाना होता है। दो दिन चलकर तीसरे दिन संध्या को नौका गंगारामपूर पहुंची। रामप्राण बाबू दानीश तथा दो सिपाहियों को लेकर किनारे पर उतरे।

गोपाल दे का घर ढूंढ कर वहां पहुंचे। दे महाशय उस समय हुक्का गुड़गुड़ा रहे थे। हठात लाल पगड़ी जमाये सिपाहियों के साथ दो भले मनुष्यों को देखकर डर गये और जल्दी से हुक्का छोड़ उनके पास आ खड़े हुए।

रामप्राण बाबू ने पूछा—तुम्हारा नाम क्या है जी ?

दे—गोपालचन्द्र दे।

राम—कई दिन हुए एक लड़की तुम्हारे यहां आई थी ?

दे—(सिटपिटाकर) जी नहीं तो, नहीं—हम—गरीब—।

झूठ मत बोलो—कोई भय की बात नहीं है। परन्तु झूठ बोलोगे तो विपद में पड़ोगे।

गोपालचन्द्र दे रुआसे होकर बोले—महाशय, उस लड़की के पीछे हमारा सर्वनाश उपस्थित है।

राम—क्यों क्या हुआ ?

दे—सुनिए, रायमहाशय ने प्रतिज्ञा की है कि विना मेरा सर्वनाश किये नहीं छोड़ेंगे।

राम—पहले बात तो बताओ क्या है ?

दे—वह लड़की एक दिन सवेरे नदी के किनारे बैठी रो रही थी मेरी स्त्री ने उसे देखा और अपने साथ घर ले आई। राह में रायमहाशय ने लड़की को देखा। उनका स्वभाव अच्छा नहीं। बड़े आदमी होकर न जाने ऐसा स्वभाव क्यों है ? उन्होंने एक स्त्री को हमारे घर भेजा। मेरी स्त्री वह बातें सुनकर जल उठी। लड़की बड़ी भली, सती लक्ष्मी थी, वह रोने लगी और रायमहाशय को बुराभला कहने लगी।

दानीश एक ठंडी सांस भर, हट के दूर खड़े हुए।

दे—स्त्री ने लौट कर राय महाशय से हाल कहा, उन्होंने मुझे बुलाकर कहा कि—लड़की हमें दे दो, नहीं दोगे तो तुम्हारे लिए अच्छा न होगा। साथ ही यह भी कहा कि तुम सहज में न दोगे तो आदमी भेजकर पकड़वा मंगावेंगे। मैंने घर आकर सब हाल अपनी स्त्री से कहा। उस लड़की पर दया करके मेरी स्त्री ने उसे देना स्वीकार नहीं किया। फिर तो महाशय वह लड़की कहीं चली गई।

राम—तुम ने कहा कि उस लड़की के पीछे तुम्हारा सर्वनाश होने वाला है। यह क्या बात ?

दे—दूसरे दिन राय महाशय बोले—तुम्हीं ने उसे कहीं छिपा दिया। इसके उपरांत महाशय उन्होंने हमारे ऊपर एक झूठी नालिश करदी।

राम—खैर— तुम डरो मत—हम कामारहाटी के राम-प्राण चौधरी हैं। उस पापी से अभी नहीं मिलेंगे। तुम्हारे मुकद्में का फैसला भी हमीं कर देंगे और उस पापी को दंड भी देंगे।

रामप्राण बाबू को प्रायः सभी जानते थे अतएव गोपालदे ने उन्हें बहुत झुककर प्रणाम किया और बैठाने की अनेक चेष्टाएं करने लगा परन्तु वे बैठे नहीं और नौका की ओर चले। थोड़ी दूर चलकर रामप्राण बाबू दानीश से बोले—तुम ने कभी गंगारामपूर का नाम सुना था? हमें जान पड़ता है कि तुम्हारा गांव यहां से बहुत दूर नहीं है। शांति एक रात ही में वहां से यहां आ गई थी।

दानीश—एक रात में? यह आप ने कैसे जाना?

राम—शांति कहती थी।

दानीश—मैं लड़कपन से कलकत्ते ही में रहा हूं अतएव इधर के गांव नहीं पहचानता।

रामप्राण बाबू ने चपरासी को भेजकर गोपालचन्द्र दे को बुलवाया।

उसके आने पर पूछा—यहां से शोणपूर कितनी दूर है?

दे—शोणपूर? यह पास ही तो है, तीन चार कोस होगा।

राम—नौका पर जाने से कितनी देर लगेगी?

दे—अभी चल दीजिएगा तो आधी रात तक पहुंच जाइएगा।

रामप्राण बाबू सब के साथ नौका पर सवार होगये, और मांझियों से शोणपूर चलने के लिए कहा।

चौथा परिच्छेद ।

प्राय: तीन बजे रात को नौका शोणपुर पहुंची। रामप्राण बाबू, दानीश तथा दोनों चपरासी उतर के दानीश के घर की ओर चले।

चारो ओर सन्नाटा था। कभी कभी द्वारों पर पड़े हुए कुत्ते उनके पैरों की आहट पा, चौंक कर भोंकने लगते थे।

बहुत दिनों के बाद दानीश ने अपनी मातृभूमि के दर्शन किये। घर का सदर द्वार बन्द था। दानीश किवाड़ों पर धक्का मार चिल्लाकर बोले—मां?

घर में उस समय दीपक जल रहा था। दानीश की माता. बड़ी बहू मझली बहू, निस्तार, सब जाग रहीं थीं। उस समय वे विजया दशमी पर गंगा स्नान करने जाने की तैयारियां कर रहीं थीं। विष्णु सरकार अपनी स्त्री, कन्या, भगनी आदि को गंगा स्नान के लिए ले जा रहे थे अतएव उन्हीं के साथ ये सब भी जाने वाली थीं। जतीश उस समय निद्रित थे। सहसा चिर परिचित मधुर स्वर के "मां" शब्द को सुनकर गृहिणी के कान खड़े हुए। जिस प्रकार वत्सहारा गऊ अपने वत्स का शब्द सुनकर व्याकुल हो जाती है उसी प्रकार दानीश की माता व्याकुल होकर बोली—देख तो री निस्तार मेरा दानीश आया है क्या?

इतने में फिर वही "मां" शब्द घर में गूंज गया।

जयन्ती बोली—हां दानीश ही तो हैं।

निस्तार ने दौड़कर द्वार खोला। दानीश सब को लेकर अन्दर आये। निस्तार ने सब के बैठने के लिए आसन बिछा दिये। दानीश ने जाकर माता को प्रणाम किया। माता हाहाकार करके रो उठी। दानीश भी रोने लगे माता रोई शचीश और छोटी बहू के लिए दानीश रोये पांचकौड़ी के लिए। परन्तु पांचकौड़ी के खून का हाल नहीं बताया। माता ने सोचा कि दानीश शचीश और शांति के लिए रोते हैं। शेष में उन्होंने पांचकौड़ी की बात पूछी। दानीश ने कम्पित कंठसे उत्तर दिया—अच्छा है। गोलमाल सुनकर जतीश भी जाग पड़े और उठकर उस स्थान पर आये। रामप्राण बाबू का परिचय पाकर उनकी यथोचित प्रतिष्ठा की और अपना सब हाल कहकर आंसू बहाने लगे। सब सुनकर रामप्राण बाबू बोले—तुम्हारी ही असावधानी से तुम्हारे घर का यह हाल हुआ। संसार में धैर्य, विवेचना तथा दृढ़ता पूर्वक कार्य न करने से ऐसा ही परिणाम होता है। खैर—जो हुआ सो हुआ, अब सावधान रहना।

जतीशचन्द्र लम्बी सांस लेकर बोले—बुझे हुए दीपक में तेल डालने से क्या लाभ?

उसी समय विष्णु सरकार भी एक मांझी को लेकर आ पहुंचे। घर में दानीश को तीन चार भले मनुष्यों के साथ आया देख सोचे कि अब इनको घर में ताला लगाकर जाने की आवश्यकता नहीं।

विष्णु सरकार को देखकर जतीशचन्द्र उनसे बोले—चाचा जी, यही कासारहाटी के जिमींदार बाबू रामप्राण चौधरी हैं।

विष्णु सरकार चकित होकर बोले—यह यहां कहां ?

जतीश—यह दानीश के मौसेरे ससुर हैं।

विष्णु—ठीक। मैं तो यह हाल पहले जानता नहीं था। आज हमारे बड़े सौभाग्य, जो उन्होंने गांव को अपनी चरण रज से पवित्र किया। परन्तु एक दुख का—।

रामप्राण बाबू विष्णुचन्द्र की बात का तात्पर्य समझ, बाधा देकर बोले—हमारी लड़की हमारे ही घर गई है उसके लिए कोई दुख की बात नहीं। मैं इसी लिये यहां आया हूं.यह सुनकर सब आनन्दित होगये। रामप्राण बाबू ने साराहाल कह सुनाया। सुनकर विष्णु सरकार ताली बजाकर बोले—धर्म्म की जय जो धर्म्म की रक्षा करता है, धर्म्म भी उसकी रक्षा करता है।

तत्पश्चात विष्णु सरकार ने रामसेवक के अत्याचार का सारा वृत्तान्त कह सुनाया।

रामप्राण बाबू दानीश की ओर देखकर बोले—सुना ?

दानीश ने मस्तक नीचा कर लिया, कोई उत्तर न दिया। सब लोग रामसेवक के नाम पर धिक्कार करने लगे।

विष्णु सरकार जतीशचन्द्र से बोले—केवल अपनी मां को गङ्गा स्नान के लिए हमारे साथ भेजदो, तुम लोग तो आज चल नहीं सकोगे।

रामप्राण बाबू बोल उठे—सब चलेंगे। यही तो उपयुक्त समय मिला है। कलकत्ते जाते हुए कामारहाटी रास्ते ही में पड़ता है। हम भी नौका ही पर आये हैं। आज प्रात:काल तक

चल देना उचित है। घर पहुंच कर एक दिन खूब आनन्द होगा। तत्पश्चात यदि कलकत्ते जाना चाहें तो चले जाइएगा, नहीं तो कामारहाटी ही में बिजयादशमी कीजिएगा वहां भी गंगा हैं।

सब ने रामप्राण बाबू के परामर्श को ठीक समझा। कुछ जलपान करके सब लोग नौका पर सवार हुए। आगे पीछे दो नौका कामारहाटी की ओर चलीं।

पांचवां परिच्छेद।

प्रातःकाल दोनों नौकाएं कामारहाटी पहुंचीं। सब लोग उतर के रामप्राण बाबू के घर पहुंचे। वह बड़े आनन्द का दिन था। शांति उस समय आरोग्य हो गई थी। सब के आने का समाचार सुन, आकर एक एक के चरणों पर गिरी और जयन्ती से लिपट कर खूब रोई। जयन्ती भी आंसू न रोक सकी। रामप्राण की स्त्री ने सब को आदर पूर्वक लिया परन्तु दानीश के हृदय में अब भी आनन्द नहीं था। पांचकौड़ी का शोक उनका हृदय विदीर्ण किये देता था। उनको इस बात की चिन्ता अधिक रहती थी कि जब उनकी माता को यह हाल मालूम होगा तब न जाने क्या सर्वनाश हो जाये।

दानीश माता के पास से उठकर बाहर आने लगे। माता ने उन्हें पुकार कर पूछा—बेटा यहां से कलकत्ता कितनी दूर है?

दानीश—बहुत दूर नहीं, क्यों?

माता—पञ्चू को बुला लो, बहुत दिनों से देखा नहीं।

दानीश—बुला लूंगा।

माता—अच्छा, चितीश की कोई खबर मिली?

दानीश—नहीं। कलकत्ते में कई जगह पूछताछ की परन्तु पता नहीं लगा। जान पड़ता है वे अभी कलकत्ते नहीं आये।

माता ने छलछल नेत्रों से कहा—मेरा, वेटा संसार में है या नहीं कौन जाने?

दूर से मझली ने माता की बात सुनकर आंचल से आंखें पोछीं। दानीश बैठकखाने में चले गये।

वहां जाकर चितीश की बात सोचने लगे—हाय, क्या चितीश भी जीवित नहीं? किन्तु पांचकौड़ी का हाल सुनकर मां क्या करेगी,—उनकी क्या दशा होगी? उफ़, विचार करने ही से छाती फटती है।

रामप्राण बाबू के अंगरेज़ी समाचार पत्र आये रक्खे थे नौकर ने वह सब लाकर दानीश को दिये।

दानीश एक पत्र खोलकर पढ़ने लगे। सहसा एक स्थान पर दृष्टि पड़ते ही वह चौंक पड़े। उस समाचार को उन्होंने कई बेर पढ़ा। तत्पश्चात पत्र हाथ में लेकर बैठकखाने के प्रधान कमरे में आये। वहां रामप्राण बाबू, जतीश, विष्णु सरकार आदि बैठे थे।

दानीश, रामप्राण बाबू के हाथ में पत्र देकर बोले—देखिए एक आश्चर्यजनक समाचार देखिए। यह कहकर

उन्होंने उङ्गली से वह स्थान बताया जहां वह समाचार छपा हुआ था। रामप्राण बाबू ने उस समाचार को ध्यान पूर्वक पढ़ा और बोले—क्षितीशचन्द्र तुम्हारे कौन हैं।

दानीश—मझले दादा।

जतीशचन्द्र क्षितीश का नाम सुनकर समझे कि उसी के विषय में कोई भला बुरा समाचार है। उन्होंने उत्सुक होकर पूछा क्षितीश को क्या हुआ रे?

दानीश ने समाचार पढ़कर सुनाया। लिखा था:—गतांक में हम बड़े दुख के साथ हमारे सहकारी सम्पादक मि० जान स्टोन की मृत्यु का संम्वाद छाप चुके हैं। उन्होंने विवाह नहीं किया था। सदा कर्म्मवीर होकर अपना कर्तव्य पालन करते रहे। उनके उपार्जित धन की संख्या अस्सी सहस्र है। मृत्यु काल पर वे एक वसीयत कर गये हैं। उनका धन और वसीयत उनके पटार्नी के पास कलकत्ते में हैं। अस्सी सहस्र में से चालीस सहस्र लण्डन के दरिद्र—आश्रम को दिये हैं। वे जिस समय उड़ीसा के अकाल में दुर्भिक्षातुर प्रजा को देखने गये थे, उसी समय एक दिवस एक खेत के निकट साइ-किल पर से गिरकर बड़ी चोट खाई थी। उसी समय निस्वार्थ भाव से एक बङ्गाली बाबू ने उनकी सेवा शुश्रुषा की थी। उनके यत्न और चेष्टा से उन्होंने पुनः जीवन पाया था अतएव उन्हीं बंगाली बाबू को बीस सहस्र रुपये देगये हैं। उन बङ्गाली बाबू का नाम क्षितीशचन्द्र राय, है और निवास स्थान शोलापूर। शेष २० सहस्र में से १० सहस्र दुर्भिक्ष समिति को और १० सहस्र मिशनरी फण्ड को दे गये हैं। ईश्वर उनकी आत्मा को शांति प्रदान करे।

सब सुन चुकने पर जतीश बोले—क्षितीश कहां है, क्या वह रुपये ले गया ?

दानीश—इसके पढ़ने से इन बातों का पता नहीं चल सकता। मैं दोपहर की गाड़ी से कलकत्ते जाऊं और एटार्नी के पास जाकर पूछूं कि चितीश रुपया ले गये कि नहीं। यदि ले गये होंगे तो वहां से उनका पता ठिकाना मालूम हो जायगा।

जतीश—हां अवश्य चल, मैं भी चलूंगा।

इसी समय नौकर ने आकर कहा—एक भले मानुस बाहर खड़े हैं वे डाक्टर बाबू से मिलना चाहते हैं।

रामप्राण बाबू ने पूछा—क्या कोई परदेशी है ?

नौकर—हुजूर यह तो मुझे मालूम नहीं।

राम—अच्छा भीतर बुलालो।

नौकर—मैंने बुलाया था, वे नहीं आये बोले मिलकर अभी चले जांयगे।

दानीश उठकर बाहर आये। सदर द्वार के निकट एक भले मनुष्य पीठ फेरे खड़े दानीशचन्द्र की प्रतीक्षा कर रहे थे।

दानीश पास जाकर बोले—आप कौन हैं, महाशय ?

भले मनुष्य ने घूमकर दानीश की ओर देखा। दानीश उनका मुख देखते ही दौड़कर उनके चरणों पर गिर पड़े और गद्गद् कंठ से बोले—मझले दादा, हमें छोड़कर आप कहां चले गये थे ?

चितीशचन्द्र के नेत्र अश्रुपूर्ण हो गये। बोले—बहुत दूर दूर घूमे। रुपये के अनुसंधान के लिए गये थे परन्तु कहीं नहीं

मिला। अन्त में कलकत्ते आये वहां बहू बाज़ार में तुम्हारे नाम का साइनबोर्ड देखकर यह जानने के लिए कि तुम हो या नहीं, भीतर जाकर पूछा। पूछने पर ज्ञात हुआ कि तुम्हीं हो। परन्तु वहां एक और भीषण संवाद सुना। सुना कि पञ्चू का किसी ने खून कर दिया। हाय! क्या सर्वनाश हो गया?

दानीश—दादा चुप रहिए। मां, जयन्ती, बड़े दादा आदि सब यहां आये हैं—उनको अभी यह दुर्घटना नहीं मालूम। यदि वे लोग सुनेंगे तो अभी हाहाकार मच जायगा और मां तो प्राण ही दे देगी।

क्षितीश—मां यहां कैसे आई?

दानीश—इस घर के मालिक, रामप्राण बाबू मेरे मौसेरे सुसर हैं। चलिए—सब सुनिएगा, बड़ी बड़ी घटनायें हो गईं। आप ने यहां का पता दवाख़ाने ही से पाया होगा?

क्षितीश—हां। एक कम्पाउण्डर ने कहा कि डाक्टर बाबू कांसारहाटी रामप्राण बाबू के यहां रोगी देखने गये हैं। यह सुनकर मैं इधर चला आया।

दानीश—दादा! आप क्या उड़ीसा की ओर गये थे?

क्षितीश—केवल उड़ीसा ही क्यों? भारत के अनेक स्थान घूम आये।

दानीश—उड़ीसा के किसी गांव में कोई साहब साइकिल पर से गिर पड़े थे?

क्षितीश—हां, उन्हें मैंने ही उठाया था। फिर दोनों उसी गांव में रात भर रहे थे! प्रातःकाल उन्हें पुरी भेज दिया था।

दानीश—वह साहब मर गये।

क्षितीश—ऐं मरगये ? राम राम बड़े भले आदमी थे। मेरे ही दुर्भाग्य से मर गये। उन्होंने मुझे कलकत्ते में नौकरी देने कही थी। कलकत्ते आकर मैंने तेरी खबर पाई। साहब से मिलना नहीं हुआ। आज कल करते करते सहसा यहां चला आया। जान पड़ता है साहब से तेरा परिचय था, उन्हीं ने बातों में यह हाल भी बताया होगा।

दानीश—नहीं, वे मरते समय आप को बीस सहस्र रुपये दे गये हैं। मैंने यह ख़बर आज ही पत्र में देखी है। उसी में उड़ीसा की घटना भी लिखी है।

क्षितीश—धन्य उनकी उदारता! इस दरिद्र की बात मरती बेर भी याद रही।

दानीश—आइए भीतर आइए। बड़े दादा, विष्णु चाचा सब बैठकखाने में हैं। मां आप के लिए बड़ी कातर हो रही है। खापीकर दोपहर को हम आप कलकत्ते चलकर रुपये लाने का प्रबन्ध करेंगे।

क्षितीशचन्द्र दानीश के पीछे पीछे चले। दानीश बैठक के द्वार पर पहुंचते ही आनन्द पूर्वक बोले—बड़े दादा! देखिये मझले दादा आगये।

क्षितीश!—यह कह कर जतीश उछल कर खड़े हो गये। क्षितीशचन्द्र दौड़कर बड़े भाई के पैरों पर गिर पड़े। जतीश ने उठाकर उन्हें हृदय से लगा लिया और आनन्दाश्रु विसर्जन किये रामप्राण बाबू तथा विष्णुचन्द्र सरकार भी इस मिलन से

अत्यन्त हर्षित हुए। समस्त बैठकखाना आनन्द-प्रभा पूर्ण हो गया। तदुपरांत चितीश ने अन्दर जाकर माता के चरणों में प्रणाम किया। माता ने भी आनंदाश्रुपूर्ण नेत्रों से पुत्र के सिर पर हाथ फेरकर आशीर्वाद किया।

रामप्राण बाबू जैसे बुद्धिमान तथा सद्विवेचक थे, वैसी ही उनकी स्त्री भी थी। वह सोची कि इतने दिनों के विरह पश्चात स्वामी-स्त्री की मिलनाकांचा बड़ी प्रबल होगी। अतएव इन दोनोंको एक दूसरे से मिलने का सुयोग देना आवश्यक है।

चितीश जिस समय माता, दानीश की सास, बड़ी बहू आदि को प्रणाम करके लौट रहे थे उसी समय एक दासी ने आकर उनसे कहा—आप तनिक भीतर आओ।

चितीश—मुझे बुलाती हो? जान पड़ता है तुम भूलती हो।

दासी आंखें चलाकर तथा उंगलियां नचाकर बोली—बाबू बड़े घरन मां रहित हैं, भूलब का ठट्ठा है? आप आओ, आपै का बलावत हैं।

क्षितीश कमरे के अन्दर गये। कमरे में पहुंचते ही मझली बहू दौड़कर उनके पैरों पर गिर पड़ी और रोती हुई बोली—क्या मुझे क्षमा नहीं करोगे?

चितीश—मझली बहू—, तुम? तुम हमसे चमा क्यों मांगती हो? तुम्हारे दादा की अवस्था अच्छी है—मैं दरिद्र हूं तुम्हें तो मेरे पास आने में भी घृणा आती होगी।

मझली—नाथ! मैं स्त्री, बुद्धिहीना—मैं पहले कुछ समझती बूझती नहीं थी। मैं नहीं जानती थी कि स्त्री का सुख स्वामी के चरणों तले ही रहता है। स्वामी की प्रसन्नता

तथा अप्रसन्नता के ऊपर स्त्री का इष्टानिष्ट निर्भर है। मैं तुम्हारी आश्रिता, सेविका, मुझे क्षमा करो। एक बेर उसी स्वर से कहो कि क्षमा किया।

क्षितीश—ये सब बातें तुम्हें किसने सिखाई?

मझली—नहीं प्राणनाथ, यह मुझे किसी ने नहीं सिखाया। यह सब मेरे हृदय की बातें हैं। मैंने तुम्हारे अभाव का दुख अच्छी तरह भोगा, ससुराल का महात्म समझा। इसी कारण वहां से यहां चली आई। ससुराल आने के पुण्य ही से मुझे तुम्हारे दर्शन मिले।

क्षितीश—परन्तु मैं तो वही दरिद्र क्षितीश हूं।

मझली—तुम मेरे राजराजेश्वर, हृदय देवता हो। एक कपड़ा फाड़कर दोनों पहनेंगे, एक बेला भोजन करके रहेंगे, इसमें भी सुख है, इसमें भी मान है।

अनेक दिनों का दबा हुआ प्रेम-स्रोत फिर बह चला—क्षितीश उस स्रोत के वेग को नहीं रोक सके। पत्नी को हृदय से लगाकर उसके गुलाब से गालों पर मिलन चिन्ह मुद्रित कर दिया।

छठा परिच्छेद ।

सी दिन दानीश और क्षितीश कलकत्ते जाकर समाचार पत्र के आफिस में पहुंचे । वहां पहुंच कर एटार्नी के आफ़िस का पता मालूम किया, और वहां जाकर अपना परिचय दिया ।

एटार्नी ने, कलकत्ते के एक विख्यात रईस की शिनाख्त लेकर २० सहस्र की चेक काट दी ।

दानीश की इच्छा हुई कि दवाख़ाने की अवस्था भी देखते चलें । परन्तु फिर सोचा कि ऐसा न हो कि कहीं यूथिका आकर दादा के सामने उन सब बातों की आलोचना करने लगे । यदि ऐसा हुआ तो बड़ा लज्जित होना पड़ेगा अतएव इस समय न चलना ही ठीक है । फिर वहां से अकेले आकर देख जांयगे ।

संध्या की गाड़ी से दोनों भाई कामारहाटी पहुंचे । स्टेशन पर उतरे तो देखा कि आकाश में काले बादल एकत्रित हो रहे । चारों ओर अन्धकार होने लगा ।

रामप्रशाद बाबू ने उनके लिए स्टेशन पर दो बलिष्ट घोड़े भेज दिये थे । दोनों जल्दी से घोड़ों पर सवार होकर तेजी से दौड़ाते हुए चले । घोड़े हवा से बातें करते जा रहे थे, तथापि वे वृष्टिपात के पूर्व घर नहीं पहुंच सके ।

कामारहाटी में प्रवेश करते ही बड़े ज़ोर की वृष्टि होने लगी । विवश होकर उन्हें एक मंदिर में आश्रय लेना पड़ा । मेघ गर्ज्जन तथा वृष्टिपात क्रमशः बढ़ने लगा । वायु भी बड़े

जोर से चलने लगी। अनेक क्षण उपरांत वृष्टि थमी, हवा का वेग भी कम हुआ परन्तु मेघ गर्ज्जन तथा विन्दुपात नहीं रुका।

क्षितीश और दानीश उस समय भी बैठे पांचकौड़ी की मृत्यु पर शोक वार्ता कर रहे थे। सहसा किसी ने बाहर से पुकारा—भीतर कौन हैं, ज़रा द्वार खोल दो—मैं बड़ा दुखित हूं। उस कंठस्वर को सुनकर क्षितीश ने चकित तथा भयभीत होकर दानीश की ओर देखा और धीरे धीरे बोले—दानी, यह गला तो पञ्चू का जान पड़ता है।

दानीशचन्द्र ने शीघ्रता पूर्वक जाकर द्वार खोला। द्वार पर जो दृश्य देखा उससे उनका हृदय कांपने लगा। क्षितीश भी भयभीत तथा विस्मित होकर हिलते पत्ते की तरह कांपने लगे। उन्होंने देखा कि—द्वार पर पांचकौड़ी शचीश को गोद में लिये खड़ा है। दोनों जल में भीगे हुए हैं।

दानीशचन्द्र कम्पित कंठ से बोले—पांचकौड़ी हम क्या तुम्हारी प्रेतमूर्ति देखते हैं? तुम क्या परलोक से हम से मिलने आये हो। दानीश की बात सुनकर पांचकौड़ी खिलखिला कर हंस पड़ा। बोला—नहीं दादा. मैं कलकत्ते से ख़बर सुनकर आया हूं। कलकत्ते में सुना कि आप इस गांव में आये हैं इसी से वहां से यहां आया। गोद में मेरा खोया हुआ शचीश है। मैं बहुत भीग गया हूं। मेरा शचीश भी भीगा है। आप इसे कोई सूखा कपड़ा पहना दीजिए।

पांचकौड़ी मंदिर के अन्दर आया और शचीश को गोद से उतार कर कपड़े निचोड़ने लगा। दानीश ने डरते डरते शचीश के शरीर में हाथ लगया—शचीश दौड़कर क्षितीश से लिपट गया, दानीश को वह विशेष नहीं पहचानता था।

उस समय क्षितीश और दानीश समझे कि आगुन्तक द्वय छायामूर्ति नहीं वरन् अस्थिमांस पूर्ण पार्थिव देह धारी मनुष्य हैं।

दानीश बोले—पांचकौड़ी, प्राणाधिक, मैं क्या स्वप्न देखता हूं।

पांचकौड़ी—नहीं दादा, स्वप्न नहीं। मैं मरा नहीं—घटना सुनिए:—यूथिका ने मेरी हत्या कराने के लिए षड़यन्त्र किये। राजा साहब ने अपने पाचक ब्राह्मण को दो सहस्र रुपये देना स्वीकार करके मेरी हत्या का भार उसको सौंपा। उस ब्राह्मण ने दो हज़ार रुपये लेना और मनुष्य हत्या भी न करना स्थिर किया। रात को उसने मुझे आकर जगाया और सारा हाल कहा। हाल कह कर मुझे कुछ दिनों तक छिपे रहने का परामर्श दिया। और यह भी कहा कि अगर मैं छिपा न रहूंगा तो यूथिका के हाथ से छुटकारा नहीं मिलेगा। मैंने सब सुनकर उसकी बात स्वीकार की। उसने मुझे दवाख़ाने से निकाल कर एक बकरी को काटा। और उसका रक्त मेरी शय्या पर डालकर बकरी की देह लिये बाहर चला गया।

दानीश—उफ, क्या सर्वनाश! वह ब्राह्मण कहां है?

पांचकौड़ी—वह राजा साहब से रुपये लेकर दूसरे दिन अपने देश चला गया।

दानीश—खैर, यह सब पीछे सुनेंगे। पहले तू यह बता कि शचीश को कहां पाया। मैंने तो सुना था कि शचीश की देह श्मशान में फेकदी गई थी।

पांचकौड़ी—कहता हूं सुनिए—मैं उसी रातको शियालदह स्टेशन गया, एक बेर मन में आया कि घर चलूं—,परन्तु फिर सोचा कि घर में जाकर भी अनेक प्रकार की अशांति, होगी थोड़े दिन देश भ्रमण कर आओ। परन्तु कहां जाऊं? स्टेशन से चलकर नदी की ओर गया। वहां पहुंचकर नदी किनारे टहलने लगा। उसी समय एक भले मनुष्य के साथ बातचीत हुई। वह बांदा तक जाने वाले थे, नौका ढूंढ़ते फिरते थे। मैंने भी उनके साथ जाने की इच्छा प्रकट की। उन्होंने सहर्ष स्वीकार किया। थोड़ी देर में एक नौका किराये कर के हम दोनों बांदा की ओर चले।

आपने संग्रामपूर का नाम सुना है? उसी स्थान पर जशोहर के राजा प्रतापादित्य से दिल्ली सम्राट का युद्ध हुआ था और उस युद्ध में दिल्ली की सेना पराजित हुई थी। हम जिस दिन संग्रामपूर से आगे चले उस दिन आज ही कैसी वृष्टि हुई थी। उसी दुर्योग में हमारी नौका डूब गई। वह आदमी मांझी लोग न जाने डूब गये या बच गये, मुझे कुछ पता नहीं, मैं तैर के बाहर निकल आया। जहां मैं निकला वह एक भीषण जंगल था। चारों ओर जंगली जीव जन्तु चीत्कार कर रहे थे। यह देख सुनकर मैंने जीवन की आशा परित्याग करदी। थोड़ी ही दूर पर रोशनी दिखाई पड़ी। उसे देख मन में कुछ आशा हुई। फिर थोड़ी देर में घंटे बजने का शब्द सुनाई पड़ा, मैंने समझ लिया कि यहां मनुष्य रहते हैं।

मैं उसी रोशनी की ओर चला। पास जाकर देखा एक मन्दिर बना हुआ है। मन्दिर के भीतर दीपक जलरहा था।

दीपक के प्रकाश में देखा, कि मन्दिर में काली की मूर्ति है और मूर्ति के आगे एक सन्यासी पद्मासन लगाये बैठे थे। आगे धूनी जल रही थी, उससे धुआं निकलकर समस्त मन्दिर को सुगन्धित कर रहा था। मैंने माता के चरणों में प्रणाम किया।

दानीश—शचीश को कहां पाया? पहले यह बतला।

पांचकौड़ी—वही तो कह रहा हूं, सुनिए—बड़ी देर बाद सन्यासी की समाधि टूटी। सन्यासी ने पूजा करके मेरी ओर दृष्टि फेरी और मुझ से मेरा परिचय पूछने लगा। मैंने सारा हाल कह सुनाया। मंदिर के पास एक और घर था, सन्यासी के पुकारने पर एक आदमी आया। उससे सन्यासी ने एक सूखा वस्त्र मंगवाकर मुझे पहनने को दिया। सन्यासी ने प्रसाद दिया वही खा पीकर रात को वहीं सो रहा।

दूसरे दिन सवेरे उठकर सन्यासी से विदा मांगने गया। उनके पास जाकर देखा, कि शचीश उनकी गोद में बैठा है। मैं तो काठ हो गया। शचीश मेरी ओर देखते ही, "छोते काका" कहकर दौड़ा और मुझ से लिपट गया। मैंने उसे गोद में उठालिया। वह "घर जाऊंगा" कहकर रोने लगा। यह घटना कैसी आश्चर्यजनक है यह आप स्वयं अनुमान करलें। जिस शचीश की देह को मैं अपने हाथ से श्मशान में फेंक आया था—वही शचीश फिर "छोते काका" कहकर घर चलने के लिए रो रहा है। मैं सोचने लगा कि शचीश यहां कैसे आया।

मैं विस्मत तथा गद्गद होकर सन्यासी के चरणों पर गिर पड़ा और उन्हें सारी कथा कह सुनाई। सन्यासी हंसकर

बोले—इच्छामयी माता, किस इच्छा से क्या करती है, यह समझ में नहीं आता। तुम लोग जिस दिन इसे श्मशान में फेंक गये थे उस दिन मैं श्मशान में बैठा एक मंत्र सिद्ध कर रहा था। मुझे एक शव की आवश्यकता थी अतएव तुम लोगों के चले जाने पर मैं इस बालक की शव को लेने गया। शव को देखने पर ज्ञात हुआ कि बालक अभी पूर्णतयः नहीं मरा, अपान वायु उसके शरीर में वर्तमान है। सर्पदष्ट रोगी—विष से मृतक तुल्य हो गया था—तुम सब लोग यही समझे कि मर गया। जिस प्रकार डोर में बंधा हुआ पक्षी आकाश में उड़ जाने पर भी डोर द्वारा फिर नीचे उतारा जा सकता है उसी प्रकार अपान वायु की सहायता से प्राण आकर्षित किये जा सकते हैं अर्थात शरीर में अपान वायु रहने से मनुष्य फिर जीवित हो सकता है। मैं सर्प की औषधि जानता हूं। इस बालक को मैंने वही औषधि पिलाई और थोड़ी ही देर बाद यह जीवित हो गया। एक बेर सोचा कि ढूढ कर बालक को उनके माता पिता को दे दूं—फिर यह समझ कर, कि वे लोग इसका मोह त्याग चुके होंगे, मैंने इसे अपने ही पास रख लिया। मुझे भी एक बालक की आवश्यकता है। मैं माता का सेवक हूं, मेरी मृत्यु पर दूसरे सेवक की आवश्यकता होगी। मैं इस बालक को दीक्षा देकर माता का सेवक बना जाऊंगा।

मैंने उनके चरणों पर लोट कर कहा—प्रभो, यदि शचीश को जीवन दिया है तो इसे घर ले जाने की आज्ञा दीजिए, यह बालक हमारे घर का दीपक है, इसके बिना हमारा घर अंधकार-मय है।

सन्यासी हंस पड़े। बोले—माया मुग्ध मानव—अब भी इतनी भ्रान्ति, कौन किसका है ? शचीश जब गया तब रख नहीं सके, और लौट आया, तब बुलाया नहीं था। फिर इतना अहंज्ञान क्यों ?

मैं निरुत्तर हो गया और करुण दृष्टि से सन्यासी का मुख ताकने लगा।

सन्यासी बोले—अच्छा ले जाओ। मां की यही इच्छा है। मैं भी जाऊंगा।

मैंने पूछा—प्रभो आप कहां जायेंगे ?

सन्यासी बोले—परलोक—आज ही रात को देह त्याग करेंगे। हमारे इस जन्म की आयु शेष हो गई। शचीश को पालन किया है अतएव इसे कुछ धन देना चाहते हैं।

मैं बोला—शचीश आप का दास है—जो इच्छा हो कीजिए। परन्तु आप की देह त्याग की बात सुनकर बड़ा दुख हुआ। मेरी इच्छा थी कि आप की सेवा में रहकर कुछ ज्ञानोंपदेश लेता।

सन्यासी—मैं तुम्हें अभी दीक्षा दूंगा और मां की सेवा का भार तुम्हीं को सौंप जाऊंगा। माता की यही इच्छा है।

मैं—आप की बात सुनकर अत्यन्त आनन्द हुआ। परन्तु मैं दो बातें पूछना चाहता हूं।

सन्यासी—पूछो।

मैं—प्रथम यह कि आप की बात से ज्ञात हुआ कि मृत्यु आप की इच्छा पर निर्भर है अतएव यदि आप कुछ दिन और देह त्याग न करें तो अच्छा है।

सन्यासी—नहीं, नहीं, मृत्यु हमारी इच्छा पर निर्भर नहीं है। अरिष्ट* द्वारा मृत्यु का आगमन जाना है। मृत्यु होने पर जीवात्मा स्मृतियान के पथ से न जाकर देवयान के पथ से जाय, इसके लिए योगावलम्बन करना होता है। संध्या पश्चात हम यही करेंगे और क्या पूछते थे?

मैं—आप से दीक्षा लेकर माता की सेवा करूं यह मेरे लिए परम सौभाग्य की बात है, किन्तु प्रभो, आप की तरह मेरे पास कोई ऐश्वर्य्य नहीं—अतएव इस भीषण जंगल में मैं कैसे रहूंगा।

सन्यासी—माता की इच्छा है कि उनकी मूर्ति गृहस्थों के घर में रहे अतएव तुम इस मूर्ति को ले जाकर अपने घर में स्थापित करना। अच्छा चलो, तुम्हें शचीश का धन दिखा दें। यह कहकर सन्यासी ने मुझे साथ लिया और जंगल में घुसे। थोड़ी दूर जाकर एक बड़े पुराने वृक्ष की जड़ के पास खोदकर पीतल के सात कलसे दिखाये और बोले—इसमें से पांच देवता के हैं और दो हमारे। हमारे दो तो शचीश को देना, और पांच देवता के कार्य में लगाना।

---

* मरने के पहले मनुष्य के स्वभाव में वैपरीत्य आजाता है, इसके साथ ही साथ विविध प्रकार के शारीरिक तथा मानसिक अथवा परिवर्तन हो जाते हैं। इस विकार अथवा परिवर्तन को सर्व साधारण नहीं समझ सकते। परन्तु जो सिद्ध हैं, जो योगी हैं वे तत्काल ही समझ जाते हैं। इन्हीं मरण-सूचक विकारों को शास्त्रीय भाषा में "अरिष्ट" कहते हैं।

तत्पश्चात उन्हें फिर दबाकर भूमि पूर्ववत कर दी और मंदिर लौट आये।

मंदिर लौट आने पर सन्यासी ने मुझे स्नान करने की आज्ञा दी। स्नान करचुकने पर माता के चरणों के निकट बैठ-कर सन्यासी ने मुझे दीक्षा दी—मैंने नया जीवन पाया। तदुपरांत मेरा नाम, ग्राम, पिता का नाम आदि पूछकर सन्यासी कहीं चले गये। संध्या के कुछ पूर्व लौट कर सन्यासी ने मुझे एक रेजिस्टर्ड दान पत्र दिया। उस में उन्होंने मुझे काली मूर्ति तथा सात कलसी धन, का दान देना लिखा था।

संध्या पश्चात सन्यासी ने आरती की और अपने हाथों से माता का भोग बनाकर उनके आगे रक्खा। इसके उपरांत मेरे गुरू—माता के सेवक, वही सन्यासी पद्मासन लगाकर बैठ गये। दो पहर रात व्यतीत हो जाने पर मैंने देखा कि उन की पवित्र आत्म देह त्याग करके मातृधाम को चली गई है।

दूसरे दिन प्रातःकाल मैंने उनकी पवित्र देह का सत्कार किया। इसके बाद मुझे यह चिन्ता हुई कि इस धन, और मातृमूर्ति को घर कैसे ले जाऊं। अंत को मैंने पुलीस से सहायता मांगी। अपना दान पत्र दिखाकर उस मंदिर तथा मातृमूर्ति की रक्षा का भार पुलीस को सौंप दिया और स्वयं शचीश को लेकर कलकत्ते आया। वहां सुना कि आप कामारहाटी गये हैं। यूथिका अपनी माता के घर चली गई। राजा साहब को पुलीस बड़ा कष्ट दे रही थी अतएव उनके कष्ट निवारणार्थ मैं पुलीस में गया और स्वयं को जीवत प्रमाणित करके राजा साहब का कष्ट दूर किया।

सब कथा आप से कह दी अब आप जो ठीक समझिए वह कीजिए।

चितीश—मैं भी आज ही आया हूं—क्या सन्यासी का गुप्त धन तूने पुलीस को दिखा दिया।

पांचकौड़ी—नहीं।

क्षितीश—केवल मैंही यहां नहीं हूं, मा, बड़े दादा, जयन्ती, बड़ी बहू, मझली बहू, छोटी बहू, निस्तार, विष्णु चाचा, उनकी स्त्री आदि सब हैं।

पांचकौड़ी—क्यों ?

चितीश चन्द्र ने समस्त वृत्तांत कह सुनाया। सुनकर पांचकौड़ी हंसपड़ा बोला—माता जगत् को न जाने किस किस प्रकार नचाया करती है, उनकी महिमा वही जानें। तो अब चलिए पुत्रहारा जननी की गोद में उसका प्यारा पुत्र देकर उसको नवा जीवन दें।

पांचकौड़ी ने शचीश को गोदमें लेलिया। तीनों भाई मंदिर से निकल कर रामप्राण बाबू के घर पहुंचे।

शचीश को पाकर और समस्त घटना सुनकर जो आनन्द मंगल उस परिवार में हुआ वह हमारी लेखनी के बाहर है। पाठक उसकी कल्पना स्वयं करलें।

रामप्राण बाबू ने उसी रातको दो नौकायें तैय्यार करवा दीं।

जतीशचन्द्र, चितीशचन्द्र तथा पांचकौड़ी काली मूर्ति तथा वह सात कलसी धन लेने के लिए सन्यासी के आश्रम की ओर चले।

चलते समय शचीश "छोते काका के छंग जाऊंगा" कहकर पांचकौड़ी से लिपट गया। शचीश की माता बोली—"पांचकौड़ी! तुम इसे लेजाओ—शचीश मेरा नहीं तुम्हारा ही है। एक बेर अपना कहकर खो बैठी थी—तुमने मरे को फिर जीवन दिया, अबमैं इसे अपना नहीं कहूंगी। वह सब का है।

परन्तु पांचकौड़ी यह सोचकर कि शचीश को कष्ट होगा उसे नहीं ले गया।

यह सब देख सुनकर रामप्राण बाबू बड़े पुलकित हुए। दो दिन तक उस घर में मिलन महोत्सव रहा। विष्णु सरकार उस महोत्सव के प्रधान मुखिया रहे।

चार पांच दिवस उपरांत विष्णु सरकार बोले—तो अब हम लोग घर जावे। गंगास्नान तथा एक विछिन्न सम्भ्रान्त परिवार का सुख-सम्मिलन हो गया, यह बड़े आनन्द की बात हुई।

रामप्राण बाबू साश्रुनेत्रों से बोले—जगदीश्वर की कृपा से इस परिवार का ऐसा सुख सम्मिलन होगा, इसका ध्यान स्वप्न में भी नहीं था। ऐसी असम्भव घटना मनुष्य की कल्पना में भी नहीं आ सकती। सब मां की इच्छा से हुआ। ख़ैर—आप लोगों को भी घरबार का काम होगा अतएव अब हम आप को अधिक नहीं रोक सकते।

रामप्राण बाबू ने उसी दिन दो नौकाएं तैयार करवा दीं। प्रातःकाल गंगास्नान करके आहारादि कर चुकने पर सब लोग विदा होने लगे। जतीश की माता रामप्राण और उनकी स्त्री से बोली—सुना है कि पांचकौड़ी कालीमूर्ति लाकर घर में प्रतिष्ठा करेगा अतएव मेरी यह प्रार्थना है कि आप सब उस उत्सव में पधार कर घर पवित्र कीजिएगा।

रामप्राण बाबू ने स्वीकार किया।

शांति चलते समय अपनी मौसी से लिपट कर रोने लगी। मौसी ने उसका माथा चूमकर आशीर्वाद दिया। दानीश ने रामप्राण बाबू को प्रणाम किया। रामप्राण बाबू ने दानीश को एक रेजिस्टर्ड दानपत्र दिया। दानीश चकित होकर बोले—यह क्या।

रामप्राण बाबू बोले—कन्या जमाई का यातुक पत्र तुम्हारे गांव की ओर के कई गावों में हमारी ज़िमींदारी है। मालगुज़ारी अदा करके उसकी वार्षिक आमदनी पांच सहस्र रुपये हैं। ये गांव मैंने तुमको दहेज में दिये और यह कागज़ उन्हीं का दानपत्र है।

दानीश विस्मय, चकित, तथा कृतज्ञ नेत्रों से रामप्राण बाबू के मुख की ओर देखने लगे। विष्णु सरकार उसी स्थान पर खड़े थे। बोले—जैसे आप महत्व हैं वैसे आप के कार्य भी महत्व हैं।

रामप्राण बाबू हंसकर बोले—मैं महत्व कैसे? यदि किसी राह चलने वाले को देता तो आप ऐसा कह सकते थे। मेरे पुत्र सब कमाते खाते हैं उनकी मुझे कुछ चिन्ता नहीं। मेरी आमदनी चालीस सहस्र वार्षिक से भी अधिक है। पच्चीस सहस्र तो दोनों पुत्रों के लिए रख लिए। दोनों लड़कियों को दस सहस्र शांति को पांच सहस्र। जो कुछ बचा वह मेरे लिये यथेष्ट है।

ततपश्चात सब अश्रुपूर्ण नेत्रों से नौकाओं पर सवार होकर शोणपूर की ओर चले।

—✧✧—
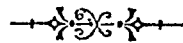
सातवां परिच्छेद ।

णपूर का वह असंस्कृत अवसन्न घर आज आनन्द कोलाहल से प्रतिध्वनित हो रहा है। समस्त घर का संस्कार हो गया, समस्त घर ने शुभ्रोज्वल कान्ति धारण करली। चारों भाई एक प्राण होकर घर का प्रवन्ध कर रहे हैं। पांचों वधू एक होकर घर का काम काज करती हैं। स्वामियों के हृदय स्त्रियों के प्रेम से भरे हुए और स्त्रियों के स्वामियों के प्रेम में डूवे हुए।

पांचकौड़ी के विवाह के लिए सब हठ करने लगे। परन्तु पांचकौड़ी ने स्वीकार नहीं किया बोला—माता ने जब कामिनी रूप त्याग करके अपने असली रूप में दर्शन दिया तो अब विवाह करने की क्या आवश्यकता है? मैं विवाह नहीं करूंगा। मां की सेवा में अपना समस्त जीवन व्यतीत करूंगा।

शचीश को जो दो कलसे धन मिला था उससे उसके पिता ने ज़िमींदारी मोल लेना आरम्भ की।

पांच कलसे मां के थे। पांचकौड़ी ने उन से एक वड़ा सुंदर मंदिर वनवाया। मंदिर में अतिथिशाला, दरिद्रवास, चिकित्सालय आदि भी वनवाए। स्वयं गेरुए वस्त्र धारण किये, रुद्राक्ष माला गले में डाली, अङ्ग में विभूति मली, सिर पर जटा धारण की। मां की स्थाई सेवा के लिए कुछ जिमींदारी भी मोल लेकर मंदिर में लगा दी और स्वयं दरिद्र अतिथि, तथा माता की सेवा करके आनन्द पूर्वक जीवन व्यतीत करने लगा।

उनके विच्छिन्न परिवार-विशेषतः शचीश की मिलनस्मृत अक्षय रखनेके लिए उस मंदिर पर स्वर्ण अक्षरोंसे खुदवा दिया।

"मिलन मंदिर"

* * * * * * *

एक वर्ष उपरान्त मिलन मंदिर का महोत्सव आरम्भ हुआ। उस उत्सव पर रामप्राण बाबू और उन की स्त्री आईं। इसके अतिरिक्त जहां जहां आत्मीय तथा कुटुम्बी थे सब बुलाये गये। हरचरण, उनकी स्त्री तथा उनकी माता भी आईं।

हरचरण और उनकी माता क्षितीश से अपना दुर्व्यवहार याद कर कर के अत्यन्त लज्जित होते थे।

रामप्राण बाबू काली भक्त थे अतएव वे उस दृश्य को देखकर मोहित हो गये। मिलन मंदिर में महामेघ प्रभा दिगम्बरी मुक्तकेशी कराल वदना लोलरसना चतुर्हस्ती काली की प्रतिष्ठित मूर्ति के सन्मुख पद्मासन लगाये पांचकौड़ी—उसके केश जटाबद्ध, शरीर पर गेरुए वस्त्र, अङ्ग में विभूति, गले में रुद्राक्ष की माला, माथे पर रक्त चन्दन का तिलक। पांचकौड़ी के दक्षिण ओर पुष्पपात्र, वाम ओर पूजा द्रव्य, चतुर्दिक घृत प्रदीप प्रज्वलित। यज्ञधूप तथा धूनी की सुगंधि से समस्त मंदिर सुवासित। बाहर पण्डित गणों में से कोई पाठ करता था, कोई भजन गाता था, कोई हवन करता था, कोई जप, कोई पूजा, और कोई प्राणायाम करता था। दीन, दरिद्रों से घर भरगया था। चारो वधू भोजन बनानेमें व्यस्त चारो भाई दरिद्रों को भोजन बांटने में लगेहुए। इसी प्रकार उस महामहोत्सव में कई दिन बड़े आनन्द पूर्वक व्यतीत हो गये। क्रमशः समस्त आत्मीय तथा कुटुम्बी अपने अपने घर चले गये।

२२

आज रामप्राण बाबू जायेंगे। उन्होंने चारो भाइयों और वधुओं को बुलाकर कहा—अब हम घर जाते हैं। तुम्हारे साथ बड़े सुख में था परन्तु क्या करूं वहां जाये बिना भी नहीं बनता। जो हो—अब तुम से कुछ बातें कहता हूं सब ध्यान पूर्वक सुनो। देखो तुम लोगों ने अपना अपना स्वार्थ सिद्ध करने की चेष्टा करके इस घर की कैसी दुर्दशा की। लोग समझते हैं कि भाई भाई अलग अलग रहकर ही सुखी हो सकते हैं-यह बात बिल्कुल मिथ्या है। पांच तृण इकट्ठा करके उनसे एक हाथी को बांध सकते हैं परन्तु, अकेले तृण से एक चिड़िया भी नहीं बंध सकती। यह न समझना कि तुम्हारे उस ईर्षा द्वेष स्वार्थपरता के कारण ही आज तुम्हारी यह उन्नति हुई है। नहीं ऐसा कदापि नहीं। ऐसा हो सकता है कि कोई सोच बैठे कि यदि हम लोग छिन्न भिन्न न होते तो आज हमारी यह उन्नति न होती। परन्तु यह धारणा भ्रांति मात्र है। तुम ने जो पाप किये उसका उपयुक्त फल पाया। जब उन पापों का प्रायश्चित हो गया तब जो जिसके भाग्य में था वह उसने पाया।

शचीश ने मरके तुम लोगों को यह बता दिया—कि किसी के लिए धन सञ्चय करना वृथा है, क्योंकि जिसके लिए करते हैं वह एक मुहूर्त में उन्हें छोड़कर चला जा सकता है, उसे कोई नहीं रोक सकता। जो जिसके भाग्य में होता है वह उसे आप से आप मिल जाता है। देखो शचीश दो कलसे पागया। तुम लोगों ने क्या वे उसके लिये सञ्चित करके रक्खे थे? पांचकौड़ी तुम्हारे वंश का तिलक है। उसी के

संयम-बल से आज साक्षात मां दुर्गा तुम्हारे घर में विराजमान हैं।

यह कहकर रामप्राण बाबू ने सब से विदा मांगी। सब ने साश्रुनयनों से उन्हें प्रणाम किया। रामप्राण बाबू सब को आशीर्वाद देते हुए अपने गांव की ओर चल दिये।

आठवां परिच्छेद।
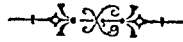
जयन्ती ने स्थायी भाव से देवी मंदिर का भार अपने ऊपर ले लिया। यद्यपि मंदिर में अनेक दास दासी थे तथापि जयन्ती सब कार्य स्वयं करती थी।

पांचकौड़ी मां काली की उपासना नित्य किया करता था परन्तु एक पुजारी ब्राह्मण भी नियुक्त कर दिया गया था।

एक दिन पांचकौड़ी ने दानीश से कहा—छोटे दादा! माता की इच्छा से पांच सहस्र वार्षिक आमदनी की सम्पत्ति पाई है। वासना बड़ी बुरी वस्तु है, इसको जितना बढ़ाइए गा उतना ही बढ़ेगी। अब नौकरी चाकरी करने की कोई आवश्यकता नहीं। माता के कुछ रुपये लेकर कलकत्ते जाइए और मंदिर के चिकित्सालय के लिए औषधियां तथा यंत्र लाकर यहीं पीड़ित सन्तानों की सेवा शुश्रूषा कीजिए।

दानीश ने स्वीकार किया और कलकत्ते जाने का प्रबन्ध करने लगे।

संध्या पश्चात कमरे में अकेला पाकर शांति मुसकुराकर पति से बोली—रात की गाड़ी से कलकत्ते जाना होगा क्या ?

दानीश भी मुसकुराकर बोले—हां कुछ रोक टोक है क्या ?

शांति—रोक टोक नहीं, भय है।

दानीश—किस का ?

शांति—कल के पानी का, सुना है कल का पानी बड़ा अच्छा होता है।

दानीश—अच्छा तो होता है परन्तु उसका अन्तर सार-शून्य होता है। परन्तु ऐसा न हो कि नदी का जल अपना कुल छोड़कर कहीं इधर उधर चला जाय।

शांति—(मुसकुरा चंचलता से) जब समुद्र उसकी ओर मुंह फेर कर देखता भी नहीं तब वह कुल छोड़कर समुद्र से मिलने के लिए बाहर होता है, न जाता तो कौन लाता। समुद्र को कल के, जल के लोभ से छुड़ाने की शक्ति किस में थी।

दानीश ने हंसकर शांति का मुख चूम लिया।

शांति बोली—कब आओगे ?

दानीश—कल रात की गाड़ी में।

शांति—अपना दवाख़ाना उठा लाओगे न ?

दानीश—अवस्था देखकर लौट आऊंगा—और यदि हो सका तो उठा भी लाऊंगा।

शांति—(मृदु हास्य करके) वहां जो रोगी है उसे औषधि देओगे ?

दानीश—(हंसकर) नहीं नहीं, वह रोगी डाक्टरी औषधि नहीं चाहता, वह केवल पांचकौड़ी को चाहता है—अच्छा गाड़ी का समय हो गया, जाता हूं।

दानीश विदा हुए। शांति की आंखों में पानी भर आया, वह जल्दी से जाकर शय्या पर लेट रही।

गाड़ी प्रातःकाल कलकत्ते पहुंची। दानीश उतरकर वहू बाज़ार स्ट्रीट पहुंचे। उनका दवाखाना खोला ही जा रहा था। नौकर ने सलाम किया। एक कम्पाउण्डर भी आ गया।

दानीश ने कम्पाउण्डर से दवाखाने की दशा पूछी। उस ने कहा—आप आये नहीं—दो तीन पत्र भी लिखे, परन्तु उत्तर नहीं मिला। तब मैंने अन्यान्य कर्मचारियों को विदा कर दिया और केवल इस नौकर को रखकर औषधालय का काम चलाया। हम लोगों का खर्च निकाल कर सौ रुपये लाभ हुए। आपने सुना होगा, यूथिका बीबी उसी समय यहां से चली गई थीं।

दानीश ने औषधालय का निरीक्षण किया। देख सुनकर यह मालूम किया कि उस औषधालय से मिलन मंदिर के चिकित्सालय का कार्य भली प्रकार चल सकता है। अतएव कम्पाउण्डर तथा नौकर से उन्होंने चलने के लिए पूछा। उन्होंने स्वीकार किया। तत्पश्चात वे लोग दवाएं पैक करके स्टेशन भेजने का प्रबन्ध करने लगे।

यह सब प्रबन्ध करके दानीश एक गाड़ी पर सवार होकर गंगास्नान करने चले। स्नान करके लौटती बेर जब गाड़ी पर चढ़ने लगे तब उन्होंने देखा कि गंगा तट पर एक पगली बैठी है। उसके चारों ओर अनेक बालक बालिकाएं खड़ी उसे छेड़ रही हैं। दानीश ने उसे देखते ही पहचान लिया—वह यूथिका थी।

यूथिका उन्मादिनी—उसकी आंखें रक्तवर्ण तथा अनल-वर्षी, उसका चम्पक सदृश वर्ण मलीन हो गया था। कोमल देह सूखकर कर्कश हो गई थी। साथ ही साथ साहित्य ज्ञान सङ्गीतज्ञान—रूप, रस, शब्द, स्पर्शज्ञानादि सब विलुप्त हो गये थे।

दानीश उसके पास गये परन्तु, यूथिका ने नहीं पह-चाना। गंगातट पर यूथिका को इस दशा में देख दानीश के हृदय में तत्व-ज्ञान उदय हुआ। वह सोचने लगे—कहां गया वह प्रेम? जिस रूप को देखकर, जिस गाने को सुनकर मुग्ध हुए थे, जिन गुणों के कारण यूथिका से प्रेम हुआ था, उन गुणों का स्थायित्व कहां गया? यूथिका के पास रूप था, गुण था, यौवन था, आखों में कटाक्ष, बातो में मधुरता थी। इसी कारण इसे प्राण से भी अधिक चाहते थे। परन्तु, अब रूप गया, गुणगया साथ ही साथ हमारा प्रेम भी विदा हो गया। तो, क्या प्रेम का स्थायित्व नहीं?

गंगा तट की वायु ने सनसनाहट द्वारा मानो इसबात का उत्तर इस प्रकार दिया—रूप जड़, गुण भी जड़ और आत्मा चैतन्य। फिर भला जड़ चैतन्य को कैसे आकर्षित